

मूल, त्रिकोण, गृह और नवमांशमें ग्रहोंके स्थानसम्बन्धी बल होते हैं। बुध और गुरुको पूर्व (उदय-लग्न)में, रवि और मङ्गलको दक्षिण (दशम भाव)-में, शनिको पश्चिम (सप्तम भाव)-में और चन्द्र तथा शुक्रको उत्तर (चतुर्थ भाव)-में दिक्‌सम्बन्धी बल प्राप्त होता है। रवि और चन्द्रमा उत्तरायण (मकरसे ६ राशि)-में रहनेपर तथा अन्य ग्रह वक्र और समागममें (चन्द्रमाके साथ) होनेपर चेष्टाबलसे युक्त समझे जाते हैं। तथा जिन दो ग्रहोंमें युति होती है, उनमें उत्तर दिशामें रहनेवाला भी चेष्टाबलसे सम्पन्न समझा जाता है॥ २८-२९॥ चन्द्रमा, मङ्गल और शनि ये रात्रिमें, बुध दिन और रात्रि दोनोंमें तथा अन्य ग्रह (रवि, गुरु और शुक्र) दिनमें बली होते हैं। कृष्णपक्षमें पापग्रह और शुक्लपक्षमें शुभग्रह बली होते हैं। इस प्रकार विद्वानोंने ग्रहोंका कालसम्बन्धी बल माना है॥ ३०॥ शनि, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्रमा तथा रवि—ये उत्तरोत्तर बली होते हैं। इस प्रकार यह ग्रहोंका नैसर्गिक (स्वाभाविक) बल है॥ ३० १/२॥

(वियोनि जन्म-ज्ञान—) (प्रश्न, आधान या जन्म-समयमें) यदि पापग्रह निर्बल हों, शुभग्रह बलवान् हों, नपुंसक (बुध, शनि) केन्द्रमें हों तथा लग्नपर शनि या बुधकी दृष्टि हो तो तात्कालिक चन्द्रमा जिस राशिके द्वादशांशमें हो, उस राशिके सदृश वियोनि (मानवेतर प्राणी)-का जन्म जानना चाहिये। अर्थात् चन्द्रमा यदि वियोनि राशिके द्वादशांशमें हो तब वियोनि प्रणियोंका जन्म समझना चाहिये। अर्थवा पापग्रह अपने नवमांशमें और शुभग्रह अन्य ग्रहोंके

नैसर्गिक मित्र और तात्कालिक शत्रु है, अतः सम हुआ। शुक्र नैसर्गिक शत्रु और तात्कालिक मित्र है, अतः सम हुआ। शनि नैसर्गिक शत्रु और तात्कालिक भी शत्रु है, अतः शनि सूर्यका अधिशत्रु हुआ। इसी प्रकार इन दोनों चक्रोंसे सब ग्रहोंकी पञ्चधा मैत्री देखकर ही उन्हें परस्पर मित्र, शत्रु या सम समझना चाहिये।

१. पक्षिद्रेष्काणका वर्णन आगे (अन्तमें) किया जायगा।

२. सारांश यह कि जलचर-राशिका अंश हो तो जलके और स्थल-राशिका अंश हो तो स्थलके वृक्ष जानने चाहिये।

नवमांशमें हो तथा निर्बल वियोनि राशि लग्नमें हो तो भी विद्वान् पुरुष वियोनि या मानवेतर जीवके ही जन्मका प्रतिपादन करें॥ ३१-३३ १/२॥

(वियोनिके अङ्गोंमें राशिस्थान—) १ मस्तक, २ मुख, गला (गर्दन), ३ पैर, कंधा, ४ पीठ, ५ हृदय, ६ दोनों पार्श्व, ७ पेट, ८ गुदा-मार्ग, ९ पिछले पैर, १० लिङ्ग, ११ अण्डकोश, १२ चूतड़ तथा पुच्छ—इस प्रकार चतुष्पद आदि (पशु-पक्षी)-के अङ्गोंमें मेषादि राशियोंके स्थान हैं॥ ३४॥

(वियोनि वर्ण-ज्ञान—) -लग्नमें जिस ग्रहका योग हो उस ग्रहके समान और यदि किसीका योग न हो तो लग्नके नवमांश (राशि-राशिपति)-के समान वियोनिका वर्ण (श्याम, गौर आदि रंग) कहना चाहिये। बहुत-से ग्रहोंके योग या दृष्टि हों तो उनमें जो बली हों या जितने बली हों, उनके सदृश वर्ण कहना चाहिये। लग्नके सप्तम भावमें ग्रह हो तो उस ग्रहके समान (उस ग्रहका जैसा वर्ण कहा गया है वैसा) चिह्न उस वियोनिके पीठ आदि अङ्गोंमें जानना चाहिये॥ ३५॥

(पक्षिजन्म-ज्ञान—) ग्रहयुत लग्नमें पक्षिद्रेष्कोण^१ हो अथवा बुधका नवमांश हो या चरराशिका नवमांश हो तथा उसपर शनि या चन्द्रमा अथवा दोनोंकी दृष्टि हो तो क्रमशः शनि और चन्द्रमाकी दृष्टिसे स्थलचर और जलचर पक्षीका जन्म समझना चाहिये॥ ३६॥

(वृक्षादि जन्म-ज्ञान—) यदि लग्न, चन्द्र, गुरु और सूर्य—ये चारों निर्बल हों तो वृक्षोंका जन्म जानना चाहिये। स्थल या जल-सम्बन्धी वृक्षोंके भेद लग्नांशके अनुसार समझने चाहिये^२।



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

I creator of
hinduism
server!



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

I creator of
hinduism
server!

उस स्थल या जलचर नवांशका स्वामी लग्नसे जितने नवमांश आगे हो उतनी ही स्थल या जलसम्बन्धी वृक्षोंकी संख्या जाननी चाहिये ॥ ३७-३८ ॥ यदि उक्त अंशके स्वामी सूर्य हों तो अन्तःसार (सखुआ, शीशम आदि), शनि हो तो दुर्भग (किसी उपयोगमें न आनेवाले कुर्कुस, फरहद आदि खोटे वृक्ष), चन्द्रमा हो तो दूधवाले वृक्ष, मङ्गल हो तो काँटवाले, गुरु हो तो फलवान् (आम आदि), बुध हो तो विफल (जिसमें फल नहीं होते ऐसे) वृक्ष, शुक्र हो तो पुष्पके वृक्षों (गेंदा, गुलाब आदि)-का जन्म समझना चाहिये । चन्द्रमाके अंशपति होनेसे समस्त चिकने वृक्ष (देवदारु आदि) तथा मङ्गलके अंशपति होनेपर कड़ए वृक्ष (निम्बादि)-का भी जन्म समझना चाहिये । यदि शुभग्रह अशुभ राशिमें हो तो खराब भूमिसे सुन्दर वृक्ष और पापग्रह शुभ राशिमें हो तो सुन्दर भूमिमें खराब वृक्षका जन्म देता है । इससे अर्थतः यह बात निकली कि यदि कोई शुभग्रह अंशपति हो और वह शुभराशिमें स्थित हो तो सुन्दर भूमिमें सुन्दर वृक्षका जन्म होता है और यदि पापग्रह अंशपति होकर पापराशिमें स्थित हो तो खराब भूमिमें कुत्सित वृक्षका जन्म होता है । इसके सिवा, वह अंशपति अपने नवमांशसे आगे जितनी संख्यापर अन्य नवमांशमें हो, उतनी ही संख्यामें और उतने ही प्रकारके वृक्षोंका जन्म समझना चाहिये ॥ ३९-४० १ ॥

(आधान-ज्ञान—) प्रतिमास मङ्गल और चन्द्रमाके हेतुसे स्त्रीको ऋतुधर्म हुआ करता है । जिस समय चन्द्रमा स्त्रीकी राशिसे नेष्ट (अनुपचय) स्थानमें हो और शुभ पुरुषग्रह (बृहस्पति)-से

देखा जाता हो तथा पुरुषकी राशिसे अन्यथा (इष्ट=उपचय॑ स्थानमें) हो और बृहस्पतिसे दृष्टि हो तो उस स्त्रीको पुरुषका संयोग प्राप्त होता है॑ । आधान-लग्नसे ससम भावपर पापग्रहका योग या दृष्टि हो तो रोषपूर्वक और शुभग्रहका योग एवं दृष्टि हो तो प्रसन्नतापूर्वक पति-पत्नीका संयोग होता है ॥ ४१-४२ ॥ आधानकालमें शुक्र, रवि, चन्द्रमा और मङ्गल अपने-अपने नवमांशमें हों, गुरु लग्नसे केन्द्र या त्रिकोणमें हो तो वीर्यवान् पुरुषको निश्चय ही संतान होती है ॥ ४३ ॥ यदि सूर्यसे ससम भावमें मङ्गल और शनि हों तो वे पुरुषके लिये तथा चन्द्रमासे ससममें हों तो स्त्रीके लिये रोगप्रद होते हैं । सूर्यसे १२, २ में शनि और मङ्गल हों तो पुरुषके लिये और चन्द्रमासे १२, २ में ये दोनों हों तो स्त्रीके लिये घातक होते हैं । अथवा इन (शनि-मङ्गल)-में एकसे युत और अन्यसे दृष्टि रवि हो तो वह पुरुषके लिये और चन्द्रमा यदि एकसे युत तथा अन्यसे दृष्टि हो तो वह स्त्रीके लिये घातक होता है ॥ ४४ ॥

दिनमें गर्भाधान हो तो शुक्र मातृग्रह और सूर्य पितृग्रह होते हैं । रात्रिमें गर्भाधान हो तो चन्द्रमा मातृग्रह और शनि पितृग्रह होते हैं । पितृग्रह यदि विषम राशिमें हो तो पिताके लिये और मातृग्रह सम राशिमें हो तो माताके लिये शुभकारक होता है । यदि पापग्रह बारहवें भावमें स्थित होकर पापग्रहसे देखा जाता और शुभग्रहसे न देखा जाता हो, अथवा लग्नमें शनि हो तथा उसपर क्षीण चन्द्रमा और मङ्गलकी दृष्टि हो तो गर्भाधान होनेसे स्त्रीका मरण होता है । लग्न और चन्द्रमा दोनों या इनमेंसे एक भी दो पापग्रहोंके बीचमें हो

१. जन्मराशिसे ३ । ६ । १० । ११ ये उपचय तथा अन्य स्थान अनुपचय कहलाते हैं ।

२. आशय यह है कि चन्द्रमा जलमय और मङ्गल रक्त एवं पित्त प्रकृतिका है । इसलिये ये दोनों रजोधर्मके हेतु होते हैं । जिस समय स्त्रीके अनुपचय-स्थानमें चन्द्रमा हो, उस समय यदि उसपर मङ्गलकी दृष्टि होती है तो वह रज गर्भधारणमें समर्थ होता है । यदि उसपर गुरुकी भी दृष्टि हो जाय तो उस स्त्रीको पुरुषके संयोगसे निश्चय ही सत्युत्रकी प्राप्ति होती है ।

तो गर्भाधान होनेपर स्त्री गर्भके सहित (साथ ही) या पृथक् मृत्युको प्राप्त होती है। लग्न अथवा चन्द्रमासे चतुर्थ स्थानमें पापग्रह हो, मङ्गल अष्टम भावमें हो अथवा लग्नसे ४, १२ वें स्थानमें मङ्गल और शनि हों तथा चन्द्रमा क्षीण हो तो भी गर्भवती स्त्रीका मरण होता है। यदि लग्नमें मङ्गल और सप्तममें रवि हों तो गर्भवती स्त्रीका शस्त्रद्वारा मरण होता है। गर्भाधानकालमें जिस मासका स्वामी अस्त हो, उस मासमें गर्भका स्नाव होता है; इसलिये इस प्रकारके लग्नको गर्भाधानमें त्याग देना चाहिये ॥ ४५—४९ ॥

आधानकालिक लग्न या चन्द्रमाके साथ अथवा इन दोनोंसे ५, ९, ७, ४, १० वें स्थानमें सब शुभग्रह हों और ३, ६, ११ भावमें सब पापग्रह हों तथा लग्न और चन्द्रमापर सूर्यकी दृष्टि हो तो गर्भ सुखी रहता है ॥ ५० ॥ रवि, गुरु चन्द्रमा और लग्न—ये विषम राशि एवं विषम नवमांशमें हों अथवा रवि और गुरु विषम राशिमें स्थित हों तो पुत्रका जन्म समझना चाहिये। उक्त सभी ग्रह यदि सम-राशि और सम-नवमांशमें हों अथवा मङ्गल, चन्द्रमा और शुक्र—ये सम-राशिमें हों तो विज्ञनोंको कन्याका जन्म समझना चाहिये। अथवा वे सब द्विस्वभाव राशिमें हों और बुधसे देखे जाते हों तो अपने-अपने पक्षके यमल (जुड़वीं संतान)-के जन्मकारक होते हैं। अर्थात् पुरुषग्रह दो पुत्रोंके और स्त्रीग्रह दो कन्याओंके जन्मदायक होते हैं। (यदि दोनों प्रकारके ग्रह हों तो एक पुत्र और एक कन्याका जन्म समझना चाहिये।) लग्नसे विषम (३, ५ आदि) स्थानोंमें स्थित शनि भी पुत्रजन्म-कारक होता है ॥ ५१—५३ ॥

क्रमशः: विषम एवं सम-राशिमें स्थित रवि और चन्द्रमा अथवा बुध और शनि एक-दूसरेको

देखते हों, अथवा सम-राशिस्थ सूर्यको विषम-राशिस्थ मङ्गल देखता हो या विषम-सम राशिस्थ लग्न एवं चन्द्रमापर मङ्गलकी दृष्टि हो अथवा चन्द्रमा सम-राशि और लग्न विषम-राशिमें स्थित हो तथा उनपर मङ्गलकी दृष्टि हो अथवा लग्न, चन्द्रमा और शुक्र—ये तीनों पुरुषराशिके नवमांशमें हों तो इन सब योगोंमें नपुंसकका जन्म होता है ॥ ५४ १ ॥

शुक्र और चन्द्रमा सम-राशिमें हों तथा बुध, मङ्गल, लग्न और बृहस्पति विषम-राशिमें स्थित होकर पुरुषग्रहसे देखे जाते हों अथवा लग्न एवं चन्द्रमा सम-राशिमें हों या पूर्वोक्त बुध, मङ्गल, लग्न एवं गुरु सम-राशिमें हों तो ये यमल (जुड़वी) संतानको जन्म देनेवाले होते हैं ॥ ५५ १ ॥

यदि बुध अपने (मिथुन या कन्याके) नवमांशमें स्थित होकर द्विस्वभाव राशिस्थ ग्रह और लग्नको देखता हो तो गर्भमें तीन संतानोंकी स्थिति समझनी चाहिये। उनमें दो तो बुध-नवमांशके सदृश होंगे और एक लग्नांशके सदृश। यदि बुध और लग्न दोनों तुल्य नवमांशमें हों तो तीनों संतानोंको एक-सा ही समझना चाहिये ॥ ५६ १ ॥

यदि धनु-राशिका अन्तिमांश लग्न हो, उसी अंशमें बली ग्रह स्थित हों और बलवान् बुध या शनिसे देखे जाते हों, तो गर्भमें बहुत (तीनसे अधिक) संतानोंकी स्थिति समझनी चाहिये ॥ ५७ १ ॥

(गर्भमासोंके अधिपति—) शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति, सूर्य, चन्द्रमा, शनि, बुध, आधान-लग्नेश, सूर्य और चन्द्रमा^२—ये गर्भाधानकालसे लेकर प्रसवपर्यन्त १० मासोंके क्रमशः स्वामी हैं। आधान-समयमें जो ग्रह बलवान् या निर्बल होता है, उसके मासमें उसी प्रकार शुभ या अशुभ फल होता है ॥ ५८ १ ॥ बुध त्रिकोण (५, ९)-में हो

१.अर्थात् या तो तीनों पुत्र हैं या तीनों कन्याएँ ही हैं, ऐसा समझे। अन्यथा बुध पुरुष नवमांशमें हो तो दो पुत्र और एक कन्या, स्त्री नवमांशमें हो तो दो कन्या और एक पुत्र समझे।

२.अन्य जातकग्रन्थोंमें ९, १० मासके स्वामी क्रमसे चन्द्र और सूर्य कहे गये हैं। यहाँ उससे विपरीत है।

और अन्य ग्रह निर्बल हों तो गर्भस्थ शिशुके दो मुख, चार पैर और चार हाथ होते हैं। चन्द्रमा वृष्टमें हो और अन्य सब पापग्रह राशि-संधिमें हों तो बालक गूँगा होता है। यदि उक्त ग्रहोंपर शुभ ग्रहोंकी दृष्टि हो तो वह बालक अधिक दिनोंमें बोलता है ॥ ५९-६० ॥ मङ्गल और शनि यदि बुधकी राशि नवमांशमें हों तो शिशु गर्भमें ही दाँतसे युक्त होता है। चन्द्रमा कर्कराशिमें होकर लग्नमें हो तथा उसपर शनि और मङ्गलकी दृष्टि हो तो गर्भस्थ शिशु कुबड़ा होता है। मीन राशि लग्नमें हो और उसपर शनि, चन्द्रमा तथा मङ्गलकी दृष्टि हो तो गर्भका बालक पङ्कु होता है। पापग्रह और चन्द्रमा राशिसंधिमें हों और उनपर शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो गर्भस्थ शिशु जड़ (मूर्ख) होता है। मकरका अन्तिम अंश लग्नमें हो और उसपर शनि, चन्द्रमा तथा सूर्यकी दृष्टि हो तो गर्भका बच्चा वामन (बौना) होता है। पञ्चम तथा नवम लग्नके द्रेष्काणमें पापग्रह हो तो जातक क्रमशः पैर, मस्तक और हाथसे रहित होता है ॥ ६१-६२ ॥

गर्भाधानके समय यदि सिंह लग्नमें सूर्य और चन्द्रमा हों तथा उनपर शनि और मङ्गलकी दृष्टि हो तो शिशु नेत्रहीन होता है। यदि शुभ और

पापग्रह दोनोंकी दृष्टि हो तो आँखमें फूली होती है। यदि लग्नसे बारहवें भावमें चन्द्रमा हो तो बालकका वाम नेत्र और सूर्य हो तो दक्षिण नेत्र नष्ट होता है। ऊपर जो अशुभ योग कहे गये हैं, उनपर शुभग्रहकी दृष्टि हो तो उन योगोंके फल पूर्ण नहीं होते हैं (ऐसी परिस्थितिमें देवाराधन एवं चिकित्सा आदि यत्नोंसे अशुभ फलका निवारण हो जाता है) ॥ ६३ ॥

यदि आधानलग्नमें शनिका नवमांश हो और शनि सप्तम भावमें हो तो तीन वर्षपर प्रसव होता है। यदि इसी स्थितिमें चन्द्रमा हो (अर्थात् लग्नमें चन्द्रमाका नवमांश हो और चन्द्रमा सप्तम भावमें स्थित हो) तो बारह वर्षपर प्रसव होता है। इन योगोंका विचार जन्मकालमें भी करना चाहिये ॥ ६४-६५ ॥ आधानकालमें जिस द्वादशांशमें चन्द्रमा हो, उससे उतनी ही संख्या आगे राशिमें चन्द्रमाके जानेपर बालकका जन्म होता है। द्वादशांशभुक्त अंशादिको दोसे गुण करके उसमें ५ से भाग देनेपर लब्धि राश्यादि मानकी सूचक होती है* ॥ ६६-६७ ॥

(जन्मज्ञान—) (शिशुकी जन्म-कुण्डलीमें) यदि चन्द्रमा जन्मलग्नको नहीं देखता हो तो

*इस विषयको स्पष्ट समझनेके लिये एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है। मान लीजिये, वैशाखकी पूर्णिमाको बृहस्पतिवारकी रातमें ग्यारह दण्ड शून्य पल (११।०) गर्भाधानका समय है। तत्कालीन चन्द्रमाकी राशि ७, अंश ९, कला ३० और विकला १० है। यहाँ चन्द्रमा वृश्चिक राशिके चौथे द्वादशांशमें हैं। वृश्चिकमें चौथा द्वादशांश कुम्भ राशिका होता है, अतः कुम्भसे चतुर्थ राशि वृष्टमें दैनिक चन्द्रमाके आनेपर दसवें मास फाल्गुनमें बालकका जन्म होगा; ऐसा फल समझना चाहिये। किंतु कृत्तिकाके तीन चरण, रोहिणीके चारों चरण तथा मृगशिराके दो चरण, इस प्रकार नौ चरणोंकी वृष्ट राशि होती है। उस दशामें किस नक्षत्रके किस चरणमें चन्द्रमाके आनेपर जन्म होगा, यह प्रश्न उठ सकता है। अब इसका समाधान किया जाता है—पूर्वोक्त चन्द्रमाकी राश्यादिमें भुक्त द्वादशांशमान (९।३०।१०)—(७।३०)=(२।०।१०)=(१२०।१०)=१२० कला (स्वल्पान्तरसे) मान लिया गया। “अर्धात्प्ये त्याज्यमधर्धिके रूपं ग्राह्यम्” इस नियमसे (१०) को छोड़ दिया। यहाँपर एक द्वादशांश-खण्डपर एक राशि प्रमाण होता है—यह स्पष्ट है। इसी आधारपर (१२० कला) सम्बन्धी चरणमान अनुपातसे ला रहे हैं; जब कि एक द्वादशांश खण्डकला-प्रमाण (२।३०)=(१५० कला)-में एक राशिका कलामान १८०० पाते हैं तो १२० में कितना होगा—इस तरह $\frac{१८०० \times १२०}{१५०} = १२ \times १२० = १४४०$ । एक राशिमें नौ चरण होते हैं और चरणका कलामान २०० कला होता है, अतः चरण जानेके लिये $\frac{१४४०}{२००} = \frac{७+४०}{२००} = ७ \frac{४}{५}$ । यहाँ लब्धि और शेषपर दृष्टिपात करनेसे यह ज्ञात होता है कि वृष्टराशिके आठवें चरणमें अर्थात् मृगशिरा नक्षत्रके प्रथम चरणमें चन्द्रमाका प्रवेश होनेपर बालकका जन्म होगा।

पिताके परोक्षमें बालकका जन्म समझना चाहिये। इसी योगमें यदि सूर्य चर राशिमें मध्य (दशम) भावसे आगे (११, १२)-में अथवा पीछे (९, ८)-में हो तो पिताके विदेश रहनेपर पुत्रका जन्म समझना चाहिये। (इससे यह सिद्ध होता है कि यदि सूर्य स्थिर राशिमें हो तो स्वदेशमें रहते हुए पिताके परोक्षमें और द्विस्वभाव राशिमें हो तो स्वदेश और परदेशके मध्य स्थानमें पिताके रहनेपर बालकका जन्म होता है।)

लग्नमें शनि और सप्तम भावमें मङ्गल हो अथवा बुध और शुक्रके बीचमें चन्द्रमा हो तो भी पिताके परोक्षमें शिशुका जन्म समझना चाहिये। पापग्रहकी राशिवाले लग्नमें चन्द्रमा हो अथवा वह वृश्चिकके द्रेष्काणमें हो तथा शुभग्रह २। ११ भावमें स्थित हों तो सर्पका या सर्पसे वैष्टित मनुष्यका जन्म समझना चाहिये॥ ६८—७०॥

मुनिश्रेष्ठ ! यदि सूर्य चतुष्पद राशिमें हो और शेष ग्रह बलयुक्त हों तो एक ही कोशमें लिपटे हुए दो शिशुओंका जन्म समझना चाहिये। शनि या मङ्गलसे युक्त सिंह, वृष या मेष लग्न हो तो लग्नके नवमांशकी राशि जिस अङ्गकी हो, उस अङ्गमें नालसे लिपटे हुए शिशुका जन्म समझना चाहिये।

यदि लग्न और चन्द्रमापर गुरुकी दृष्टि न हो अथवा चन्द्रमा सूर्यसे संयुक्त हो तथा उसे गुरु नहीं देखता हो अथवा चन्द्रमा पापग्रह और सूर्यसे संयुक्त हो तो शिशुको पर-पुरुषके वीर्यसे उत्पन्न समझना चाहिये। यदि दो पापग्रह पापराशिमें

स्थित होकर सूर्यसे सप्तम भावमें हों तो सूर्यके चर आदि राशिके अनुसार विदेश, स्वदेश या मार्गमें बालकका जन्म समझना चाहिये। पूर्ण चन्द्रमा अपनी राशिमें हो, बुध लग्नमें हो, शुभग्रह चतुर्थ भावमें हो अथवा जलचर राशि लग्न हो और उससे सप्तम स्थानमें चन्द्रमा हो तो नौकापर शिशुका जन्म समझना चाहिये। नारद ! यदि जलचर राशि लग्नको जलचर राशिस्थ पूर्ण चन्द्रमा देखता हो अथवा वह १०, ४ या लग्नमें हो तो जलमें प्रसव होता है, इसमें संशय नहीं। यदि लग्न और चन्द्रमासे शनि बारहवें भावमें हों, उसपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो बालकका कारागारमें जन्म होता है। तथा कर्क या वृश्चिक लग्नमें शनि हो और उसपर चन्द्रमाकी दृष्टि हो तो गड्ढमें बालकका जन्म समझना चाहिये। जलचर राशिस्थ शनि लग्नमें हो तथा उसपर बुध, सूर्य या चन्द्रमाकी दृष्टि हो तो क्रमशः क्रीड़ास्थान, देवालय और ऊसर भूमिमें शिशुका प्रसव समझना चाहिये। यदि मङ्गल बलवान् होकर लग्नगत शनिको देखता हो तो श्मशान-भूमिमें, चन्द्रमा और शुक्र देखते हों तो रम्य स्थानमें, गुरु देखता हो तो अग्निहोत्रगृहमें, सूर्य देखता हो तो राजगृह, देवालय और गोशालामें तथा बुध देखता हो तो चित्रशालामें बालकका जन्म समझना चाहिये॥ ७१—७९॥

यदि लग्नमें चरराशि हो तो मार्गमें लग्नराशिके कथित स्थानके* समान स्थानमें बालकका जन्म होता है। यदि लग्नमें स्थिर राशि हो तो स्वदेशके

जन्मका इष्टकाल जाननेकी विधि—गर्भाधानकालिक लग्न ९। १०। २५। ० है। इसमें मकरराशिका चौथा नवमांश है, जो उससे चतुर्थ मेषराशिका है। मेषराशि रातमें बली होती है, अतः रातमें जन्म होगा। इसलिये रात्रिगत इष्टकालका ज्ञान करना चाहिये। यहाँपर राशियोंकी दिन-रात्रि-संज्ञाके अनुसार एक नवमांशका प्रमाण दिन या रात्रिका पूरा प्रमाण होता है। अतः त्रैराशिक क्रिया की गयी—एक नवमांश प्रमाण (३ अंश २० कला=२०० कला)-में गर्भाधान रात्रिमान यदि २८। ० दण्ड मिलता है तो लग्नके चतुर्थ नवमांशके भुक्त कलामान २५में कितना होगा ? इस तरह $\frac{28 \times 25}{200} = 3। 30$ घण्टादि मान हुआ। अर्थात् ३ दण्ड ३० पल रात बीतनेपर जन्म होगा; ऐसा निश्चय हुआ। इसी तरह अन्य उदाहरणोंको भी समझना चाहिये।

* राशि-स्थान पहले दिये हुए राशिस्वरूप-बोधक चक्रमें देखिये।

ही उक्त स्थानमें जन्म होता है तथा यदि लग्न-राशि अपने नवमांशमें हो तो स्वगृहमें ही वैसे स्थानमें जन्म होता है। मङ्गल और शनिसे त्रिकोण (५, ९)-में अथवा सप्तम भावमें चन्द्रमा हो तो जातकको माता त्याग देती है। यदि उसपर गुरुकी दृष्टि हो तो त्यक्त होनेपर भी दीर्घायु होता है। पापग्रहसे दृष्टि चन्द्रमा यदि लग्नमें हो और मङ्गल सप्तम भावमें स्थित हो तो मातासे त्यक्त होनेपर जातक मर जाता है। अथवा पापदृष्टि चन्द्रमा यदि शनि-मङ्गलसे ११वें भावसे स्थित हो तो भी शिशुकी मृत्यु हो जाती है। यदि चन्द्रमा शुभग्रहसे देखा जाता हो तो बालक दूसरेके हाथमें जाकर सुखी होता है। यदि पापसे ही दृष्टि हो तो दूसरेके हाथमें जानेपर भी हीनायु होता है॥ ८०—८२॥

पितृसंज्ञक ग्रह बली हो तो पिताके घरमें और मातृसंज्ञक ग्रह बली हो तो माता (अर्थात् माता) के घरमें जन्म समझना चाहिये। मुने! यदि शुभग्रह नीच स्थानमें हो तो वृक्षादिके नीचे तृण-पत्रादिकी कुटीमें जन्म समझना चाहिये। शुभग्रह नीच स्थानमें हो और लग्न अथवा चन्द्रमापर एक स्थानस्थित शुभग्रहोंकी दृष्टि न हो तो निर्जन स्थानमें प्रसव होता है। यदि चन्द्रमा शनिकी राशिके नवमांशमें स्थित होकर चतुर्थ भावमें विद्यमान हो तथा शनिसे दृष्टि या युत हो तो प्रसवकालमें 'प्रसूतिका' का शयन पृथिवीपर समझना चाहिये। शीर्षोदय राशि लग्न हो तो शिरकी ओरसे तथा पृष्ठोदय राशि लग्न हो तो पृष्ठ (पैर)-की ओरसे शिशुका जन्म होता है। चन्द्रमासे चतुर्थ स्थानमें पापग्रह हो तो माताके लिये कष्ट समझना चाहिये॥ ८३—८५ १॥

जन्मसमयमें सब ग्रहोंकी अपेक्षा शनि बलवान् हो तो सूतिका गृह पुराना, किंतु संस्कार किया हुआ समझना चाहिये। मङ्गल बली हो तो जला

हुआ, चन्द्रमा बली हो तो नया और सूर्य बली हो तो अधिक काष्ठसे युक्त होकर भी मजबूत नहीं होता। बुध बली हो तो प्रसवगृह बहुत चित्रोंसे युक्त, शुक्र बली हो तो चित्रोंसे युक्त नवीन और मनोहर तथा गुरु बली हो तो सूतिकाका गृह सुदृढ़ समझना चाहिये॥ ८६—८७॥

लग्नमें तुला, मेष, कर्क, वृश्चिक या कुम्भ हो तो (वास्तु भूमिमें) पूर्वभागमें; मिथुन, कन्या, धनु या मीन हो तो उत्तर भागमें, वृष हो तो पश्चिम भागमें तथा मकर या सिंह हो तो दक्षिण भागमें सूतिकाका घर समझना चाहिये॥ ८८॥

(गृहराशियोंके स्थान—) घरकी पूर्व आदि दिशाओंमें मेष आदि दो-दो राशियोंको और चारों कोणोंमें चारों द्विस्वभाव राशियोंको समझे। सूतिकागृहके समान ही सूतिकाके पलंगमें भी लग्न आदि भावोंको समझे। वहाँ ३, ६, ९ और १२ वें भावको क्रमशः चारों पायोंमें समझना चाहिये। चन्द्रमा और लग्नके बीचमें जितने ग्रह हों उतनी उपसूतिकाओंकी^१ प्रसवकालमें उपस्थिति समझनी चाहिये। दृश्य चक्रार्धमें (सप्तम भावसे आगे लग्नतक) जितने ग्रह हों, उतनी उपसूतिकाओंको घरसे बाहर समझे और अदृश्य चक्रार्धमें (लग्नसे आगे सप्तमपर्यन्त) जितने ग्रह हों, उतनी उपसूतिकाओंकी उपस्थिति घरके भीतर रहती है। बहुत-से आचार्यों और मुनियोंने इससे भिन्न मत प्रकट किया है। (अर्थात् दृश्य चक्रार्धमें जितने ग्रह हों उतनी उपसूतिकाओंको घरके भीतर तथा अदृश्य चक्रार्धमें जितने ग्रह हों, उतनीको घरके बाहर कहा है)॥^२ ८९—९०॥

लग्नमें जो नवमांश हो, उसके स्वामी ग्रहके सदृश अथवा जन्मसमयमें जो ग्रह सबसे बली हो, उसके समान शिशुका शरीर समझना चाहिये। इसी प्रकार चन्द्रमा जिस नवमांशमें हो उस

१. प्रसूता स्त्रीके पास रहकर उसे सहयोग देनेवाली स्त्रियोंको 'उपसूतिका' कहते हैं।

२. सप्तमसे आगे लग्नतक क्षितिजके ऊपर होनेसे दृश्य चक्रार्ध कहलाता है।

राशिके समान वर्ण (गौर आदि) समझना चाहिये। एवं द्रेष्काणवश लग्न आदि भावोंसे जातकके मस्तक आदि अङ्ग-विभाग जानना चाहिये। यथा—लग्नमें प्रथम द्रेष्काण हो तो लग्न मस्तक, २। १२ नेत्र, ३। ११ कान, ४। १० नाक, ५। ९ कपोल, ६। ८ हनु (हुड़ी) और ७ (सप्तम) भाव मुख। द्वितीय द्रेष्काण हो तो लग्न कण्ठ, २। १२ कंधा, ३। ११ पसली, ४। १० हृदय, ५। ९ भुज, ६। ८ पेट और ७ नाभि। तृतीय द्रेष्काण हो तो लग्न वस्ति (नाभि और लिङ्गके मध्यका स्थान), २। १२ लिङ्ग, गुदमार्ग, ३। १२ अण्डकोश, ४। १० जाँघ, ५। ९ घुटना, ६। ८ पिण्डली और सप्तम भाव पैर समझना चाहिये॥ ९१—९३॥

जिस अङ्गकी राशिमें पापग्रह हो, उस अङ्गमें व्रण और यदि उसपर शुभ ग्रहकी दृष्टि हो तो उस अङ्गमें चिह्न (तिल मशक आदि) समझना चाहिये। पापग्रह अपनी राशि या नवमांशमें, अथवा स्थिर राशिमें हो तो जन्मके साथ ही व्रण होता है अन्यथा उस ग्रहकी दशा-अन्तर्दशामें आगे चलकर व्रण होता है। शनिके स्थानमें वात या पत्थरके आघातसे, मङ्गलके स्थानमें विष, शस्त्र और अग्निसे, बुधके स्थानमें पृथ्वी (मिट्टी)-के आघातसे, सूर्याश्रित अङ्गमें काष्ठ और पशुसे, क्षीण चन्द्राश्रित अङ्गमें सींगवाले पशु और जलचरके आघातसे व्रण होता है। जिस अङ्गकी राशिमें तीन पापग्रह हों, उस अङ्गमें निश्चितरूपसे व्रण होता ही है। षष्ठि भावमें पापग्रह हो तो उस राशिके आश्रित अङ्गमें व्रण होता है। यदि उसपर शुभग्रहकी दृष्टि हो तो उस अङ्गमें तिल या मसा होता है। यदि शुभग्रहका योग हो तो उस अङ्गमें चिह्न (दाग) मात्र होता है॥ ९४—९६३॥

(ग्रहोंके स्वरूप और गुणका वर्णन—) सूर्यकी आकृति चतुरस्त्* है, शरीरकी कान्ति और नेत्र पिङ्गल हैं। पित्तप्रधान प्रकृति है और

उनके मस्तकपर थोड़े-से केश हैं। चन्द्रमाका आकार गोल है; उनकी प्रकृतिमें वात और कफकी प्रधानता है, वे पिण्डित और मृदुभाषी हैं तथा उनके नेत्र बड़े सुन्दर हैं। मङ्गलकी दृष्टि क्रूर है, युवावस्था है, पित्तप्रधान प्रकृति है और वह चञ्चल स्वभावका है। बुधकी प्रकृतिमें कफ, पित्त और वातकी प्रधानता है, वह हास्यप्रिय और अनेकार्थक शब्द बोलनेवाला है। बृहस्पतिकी अङ्गकान्ति, केश और नेत्र पिङ्गल हैं, उनका शरीर बड़ा है, प्रकृतिमें कफकी प्रधानता है और वे बड़े बुद्धिमान् हैं। शुक्रके अङ्ग और नेत्र सुन्दर हैं, मस्तकपर काले घुँघराले केश हैं और वे सर्वदा सुखी रहनेवाले हैं। शनिका शरीर लम्बा और नेत्र कपिश वर्णके हैं, उनकी वातप्रधान प्रकृति है, उनके केश कठोर हैं और वे बड़े आलसी हैं॥ ९७—१००॥

(ग्रहोंके धातु—) स्नायु (शिरा), हड्डी, शोणित, त्वचा, वीर्य, वसा और मज्जा—ये क्रमशः शनि, सूर्य, चन्द्र, बुध, शुक्र, गुरु और मङ्गलके धातु हैं॥ १०१॥

(अरिष्टकथन—) चन्द्रमा, लग्न और पापग्रह—ये राशिके अन्तिमांशमें हों अथवा चन्द्रमा और तीनों पापग्रह ये लग्नादि चारों केन्द्रोंमें हों तथा कर्क लग्न हो तो जातककी मृत्यु होती है। दो पापग्रह लग्न और सप्तम भावमें हों तथा चन्द्रमा एक पापग्रहसे युक्त हो और उसपर शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो शिशुका शीघ्र मरण होता है॥ १०२—१०३॥ क्षीण चन्द्रमा १२ वें भावमें हो, पापग्रह लग्न और अष्टम भावमें हों तथा शुभग्रह केन्द्रमें न हों तो उत्पन्न शिशुकी मृत्यु होती है। अथवा पापयुक्त चन्द्रमा सप्तम, द्वादश या लग्नमें स्थित हो तथा उसपर केन्द्रसे भिन्नस्थानमें स्थित शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो जातककी मृत्यु होती है। यदि चन्द्रमा ६, ८ स्थानमें रहकर पापग्रहसे

* जिसकी लम्बाई-चौड़ाई बराबर हो, वह चौकोर वस्तु 'चतुरस्त्' कहलाती है।

देखा जाता हो तो शिशुका शीघ्र मरण होता है। शुभग्रहसे दृष्ट हो तो ८ वर्षमें और शुभ तथा पापग्रह दोनोंसे दृष्ट हो तो ४ वर्षमें जातककी मृत्यु हो जाती है। क्षीण चन्द्रमा लग्रमें तथा पापग्रह ८, १, ४, ७, १० में स्थित हों तो उत्पन्न बालकका मरण होता है। अथवा दो पापग्रहोंके बीचमें होकर चन्द्रमा ४, ७, ८ स्थानमें स्थित हो या लग्र ही दो पापग्रहोंके बीचमें हो तो जातककी मृत्यु होती है। पापग्रह ७, ८ में हों और उनपर शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो मातासहित शिशुकी मृत्यु होती है। राशिके अन्तिमांशमें चन्द्रमा पापग्रहसे अदृष्ट हो तथा पापग्रह त्रिकोण (५, ९)-में हो अथवा लग्रमें चन्द्रमा और सप्तममें पापग्रह हो तो शिशुका मरण होता है। राहुग्रस्त चन्द्रमा पापग्रहसे युक्त हो और मङ्गल अष्टम स्थानमें स्थित हो तो माता और शिशु दोनोंकी मृत्यु होती है। इसी प्रकार राहुग्रस्त सूर्य यदि पापग्रहसे युक्त हो तथा बली पापग्रह अष्टम भावमें स्थित हो तो माता और शिशुका शस्त्रसे मरण होता है॥ १०४—१०९॥

(आयुर्दायिकथन—) चन्द्रमा और बृहस्पतिसे युक्त कर्क लग्र हो, बुध और शुक्र केन्द्रमें हों और शेष ग्रह (रवि, मङ्गल एवं शनि) ३, ६, ११ स्थानमें हों तो ऐसे योगमें उत्पन्न जातककी आयु बहुत अधिक होती है। मीन लग्रमें मीनका नवमांश हो, बुध वृषभमें २५ कलापर हो तथा शेष सब ग्रह अपने-अपने उच्च स्थानमें हों तो जातककी आयु परम (१२० वर्ष ५ दिनकी) होती है। लग्रेश बली होकर केन्द्रमें हो, उसपर शुभग्रहकी दृष्टि हो तो बालक धनसहित दीर्घायु होता है। चन्द्रमा अपने उच्चमें हो, शुभग्रह अपनी राशिमें हों, बली लग्रेश लग्रमें हो तो जातककी ६० वर्षकी आयु होती है। केन्द्रमें शुभग्रह हों और अष्टम भाव शुद्ध (ग्रहरहित)

हो तो ७० वर्षकी आयु होती है। शुभग्रह अपने-अपने मूल त्रिकोणमें हों, गुरु अपने उच्चमें हो तथा लग्रेश बलवान् हों तो ८० वर्षकी आयु होती है। सबल शुभग्रह केन्द्रमें हों और अष्टम भावमें कोई ग्रह न हो तो ३० वर्षकी आयु होती है। अष्टमेश नवम भावमें हों, बृहस्पति अष्टम भावमें रहकर पापग्रहसे दृष्ट हों तो २४ वर्षकी आयु होती है। लग्रेश और अष्टमेश दोनों अष्टम भावमें स्थित हों तो २७ वर्षकी आयु होती है। लग्रमें पापग्रहसहित बृहस्पति हों, उसपर चन्द्रमाकी दृष्टि हो तथा अष्टममें कोई ग्रह न हो तो २२ वर्षकी आयु समझनी चाहिये। शनि नवम भाव या लग्रमें हो, शुक्र केन्द्रमें हो और चन्द्रमा १२ या ९ में हो तो १०० वर्षकी आयु होती है। बृहस्पति कर्कमें होकर केन्द्रमें हो अथवा बृहस्पति और शुक्र दोनों केन्द्रमें हों तो १०० वर्षकी आयु समझनी चाहिये। अष्टमेश लग्रमें हो और अष्टम भावमें शुभग्रह न हो तो ४० वर्षकी आयु होती है। लग्रेश अष्टम भावमें और अष्टमेश लग्रमें हों तो ५ वर्षकी आयु होती है। शुक्र और बृहस्पति एक राशिमें हों अथवा बुध और चन्द्रमा लग्र या अष्टम भावमें हों तो ५० वर्षकी आयु होती है॥ ११०—११८॥

मुने! मैंने इस प्रकार ग्रहयोग-सम्बन्धसे आयुर्दायिका प्रमाण कहा है। अब गणितद्वारा स्पष्टायुर्दायिका वर्णन करता हूँ। (सूर्य, चन्द्रमा और लग्रमेंसे) यदि सूर्य अधिक बली हो तो पिण्डायु, चन्द्रमा बली हो तो निसर्गायु और लग्र बली हो तो अंशायुका साधन करना चाहिये। उसका साधन-प्रकार मैं बतलाता॑ हूँ॥ ११९२॥

(पिण्डायु और निसर्गायुका॑ साधन—) सूर्य आदि ग्रह अपने-अपने उच्चमें हों तो क्रमशः १९, २५, १५, १२, १५, २१ और २० वर्ष

१-'पिण्डायु' वह है, जिसमें उच्च और नीच स्थानमें आयुके पिण्ड (मान-संख्या)-का निर्देश किया हुआ है, उसके द्वारा इष्टस्थानस्थित ग्रहसे आयुका साधन किया जाता है।

२-'निसर्गायु' वह है, जो ग्रहोंके निसर्ग (स्वभाव)-से ही सिद्ध है, जिसमें कभी परिवर्तन नहीं होता।

पिण्डायुके प्रमाण होते हैं तथा २०, १, २, ९, १८, २०, ५० ये क्रमशः सूर्यादि ग्रहोंके निसर्गायुर्दायके प्रमाण होते हैं ॥ १२०—१२१ ॥

पिण्डायु और निसर्गायुमें आयु-साधन करना हो तो राश्यादि ग्रहमें अपने उच्चको घटाना चाहिये। यदि वह ६ राशिसे अल्प हो तो उसको १२ राशिमें घटाकर ग्रहण करें। उसके अंश बनानेसे वह आयुर्दाय-साधनमें उपयोगी होता है। जो ग्रह शत्रुके गृहमें हो उसके अंशोंमें उसीका तृतीयांश घटावे। यदि वह ग्रह वक्रगति न हो तभी ऐसा करना चाहिये। (यदि ग्रह वक्रगति हो तो शत्रुगृहमें रहनेपर भी तृतीयांश नहीं घटाना चाहिये) तथा शनि और शुक्रको छोड़कर अन्य ग्रह अस्त हों तो उनके अंशोंमें आधा घटा देना चाहिये। (शनि और शुक्र अस्त हों तो भी उनके अंशोंमें आधा नहीं घटाना चाहिये।) यदि किसी ग्रहमें दोनों हनिप्राप्त हो (अर्थात् वह शत्रुगृहमें हो और अस्त भी हो) तो उसमें अधिक हानिमात्र करें (अर्थात् केवल आधा घटावे, तृतीयांश नहीं)। यदि लग्नमें पापग्रह हो तो उसकी राशिको छोड़कर केवल अंशादिसे आयुर्दायके अंशको गुणा करके गुणनफलमें ३६० का भाग

देकर लब्ध अंशादिको पूर्वोक्त अंशमें घटावे। इस प्रकार पापग्रहके समस्त लब्धांश घटावे। यदि उसमें शुभग्रहका योग या दृष्टि हो तो लब्धांशका आधा घटाना चाहिये। इस तरह आगे बताये जानेवाले प्रकारसे आयुर्दाय-साधन योग्य स्पष्ट अंश उपलब्ध होते हैं ॥ १२२—१२५ ॥

(पिण्डायु-साधन—) उन स्पष्टांशोंको अपने-अपने पूर्वोक्त गुणक (उच्चस्थ वर्ष-संख्या १९ आदि)-से गुणा करके गुणनफलमें ३६० से भाग देनेपर लब्ध वर्ष-संख्या होती है। शेषको १२ से गुणा करके ३६० से भाग देनेपर लब्ध मास-संख्या होती है। पुनः शेषको ३० से गुणा करके ३६० के द्वारा भाग देनेपर लब्ध दिन-संख्या होगी। फिर शेषको ६० से गुणा कर ३६० से भाग देनेपर लब्ध घटी एवं पलादि रूप होगी^१ ॥ १२६—१२७ ॥

(लग्नायु-साधन—) लग्नकी राशियोंको छोड़कर अंशादिको कला बनाकर २०० से भाग देनेपर लब्ध वर्ष-संख्या होगी। शेषको १२ से गुणाकर २०० से भाग देनेपर लब्ध मास-संख्या होगी। पुनः पूर्ववत् ३० आदिसे गुणा करके हरसे भाग देनेपर लब्ध दिनादिकी सूचक होगी^२ ॥ १२८^३ ॥

१. यदि लग्न-राश्यादि ३। १५। २०। ३० और स्पष्ट सूर्य १०। १५। १०। २० हैं तो उपर्युक्त रीतिके अनुसार सूर्यकी राश्यादिमें सूर्यकी उच्च राश्यादि ०। १० को घटानेपर १०। ५।

ग्रहोंका उच्चादिबोधक चक्र							
ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
उच्चराशि	०	१	९	५	३	११	६
" अंश	१०	३	२८	१५	५	२७	२०
नीचराशि	६	७	३	११	९	५	०
" अंश	१०	३	२८	१५	५	२७	२०
आयु-पिण्ड	१९	२५	१५	१२	१५	२१	२०

से गुणा करके गुणनफल ५७६० में ३६० का भाग देनेपर लब्ध घड़ी १६ हुई; शेष ० रहा। इस प्रकार सूर्यसे आयुमान वर्षादि १६। १। ८। १६। ० हुआ। इसी तरह सब ग्रहोंका आयु-साधन कर लेना चाहिये।

२. लग्नायु-साधन—लग्नकी राशिको छोड़कर अंशादि १५। २०। ३० को कलात्मक बनानेसे ९२०। ३० हुआ। इसमें २०० का भाग देनेपर लब्ध वर्ष ४ हुए। शेष १२०। ३० को १२ से गुणा करनेपर गुणनफल १४४६। ० में २००का

(अंशायुर्दाय॑-साधन—) लग्नसहित ग्रहोंके पृथक्-पृथक् अंश बनाकर ४० से भाग देकर जो शेष बचे उसे आयुर्दाय-साधनोपयोगी अंशादि समझे; उसमें जो विशेष संस्कार कर्तव्य है, उसका वर्णन करता हूँ। लग्नमें ग्रहको घटावे। यदि शेष ६ राशिसे अल्प हो तो उसमें निम्नाङ्कित संस्कार विशेष करना चाहिये, अन्यथा नहीं। यदि घटाया हुआ ग्रह ६ राशिसे अल्प और १ राशिसे अधिक हो तो उन अंशोंसे ३० में भाग देकर लब्धिको १ में घटावे और शेषको गुणक समझे। यदि ग्रह घटाया हुआ लग्न १ राशिसे अल्प हो तो उन्हीं अंशोंमें ३० का भाग देकर लब्धिको १ में घटानेसे शेष गुणक होता है। इस प्रकार शुभग्रहके गुणकको आधा करके गुणक समझे और पाप-ग्रहके समस्त गुणकोंको ग्रहण करे। फिर इस प्रकारके गुणकोंसे उपर्युक्त आयुर्दायके अंशको गुणा करे तो संस्कृत अंश होता है। यह संस्कार कहा गया है। इस संस्कृत आयुर्दायके

अंशको कलात्मक बनाकर २०० से भाग देकर लब्धिको वर्ष समझे। फिर शेषको १२ से गुणा करके गुणनफलमें २००का भाग देनेसे लब्धिको मास समझे। तत्पश्चात् शेषमें ३० आदिसे गुणा करके २०० का भाग देनेसे लब्धिको दिन एवं घटी आदि समझे^२।

लग्नके आयुर्दाय अंशादिको ३ से गुणा करके गुणनफलमें १० का भाग देनेसे जो लब्धि हो, वह वर्ष है। फिर शेषको १२ आदिसे गुणा करके १० से भाग देनेपर जो लब्धि हो उसे मासादि समझे। (लग्नकी आयुमें इतनी विशेषता है कि) यदि लग्न सबल हो तो लग्नकी जितनी भुक्त राशिसंख्या हो उतने वर्ष और अधिक जोड़े। तथा अंशादिको २ से गुणा करके ५ का भाग देकर लब्धिको मास समझकर उसे भी जोड़े तथा शेषको ३० आदिसे गुणा करके हरसे भाग देकर जो लब्धि आवे, उसके तुल्य दिनादि रूप फल भी जोड़े तो लग्नायु स्पष्ट होती है^३। यह क्रिया पिण्डायु

भाग देनेसे लब्धि मास ७ हुए। शेष ४६ को ३० से गुणा करके गुणनफल १३८० में २०० का भाग देनेपर लब्धि दिन ६ हुए। शेष १८० को ६० से गुणा करनेपर गुणनफल १०८०० में २०० का भाग देनेसे लब्धि ५४ घड़ी हुई। इस प्रकार लग्नायुमान वर्षादि ४। ७। ६। ५४। ० हुआ।

१. 'अंशायु' वह है, जो ग्रहोंके अंश (नवमांश)-द्वारा अनुपातसे जानी जाती है।

२. अंशायु-साधन—स्पष्ट राश्यादि सूर्य १०। १५। १०। २० को अंशात्मक बनानेसे ३१५। १०। २० में ४० का भाग देनेपर शेष ३५। १०। २० हुआ। यह साधनोपयोगी अंशादि हुआ। इसमें संस्कारविशेष करनेके लिये सूर्य १०। १५। १०। २० लग्न ३। १५। २०। ३० में न घट सकनेके कारण नियमानुसार १२ राशिमें जोड़कर घटानेसे शेष ५। ०। १०। १० यह ६ राशिसे कम और १ राशिसे अधिक है, इसलिये इस शेषके अंशादि १५०। १०। १० से ३० में भाग देनेपर लब्धि अंश ० हुआ। शेष ३० को ६० से गुणा कर गुणनफल १८०० में उक्त भाजकका भाग देनेपर लब्धि-कला ११ हुई। शेष १४८। ८। १० को ६० से गुणा कर गुणनफल ८८८८। १०में उक्त अंशादि भाजकसे भाग देनेपर तृतीय लब्धि ५९ हुई। इस प्रकार लब्धिमान अंशादि ०। ११। १५ हुआ। इसको १ अंशमें घटानेसे शेष ०। ४८। १ यह गुणक हुआ। सूर्य पापग्रह है, अतः इस गुणकसे आयुसाधनोपयोगी अंशादि ३५। १०। २० को गुणा करनेपर गुणनफल २८। ८। ५१ यह संस्कृत अंशादि हुआ। इसको कलात्मक बनानेसे १६८८। ५१ हुआ। इसमें २००का भाग देनेपर लब्धि वर्ष ८ हुए। शेष ८८। ५१ को १२ आदिसे गुणा कर गुणनफलमें २०० का भाग देकर पूर्ववत् मासादि निकालनेसे आयुमान वर्षादि ८। ५। ९। ५५। ४८ हुआ।

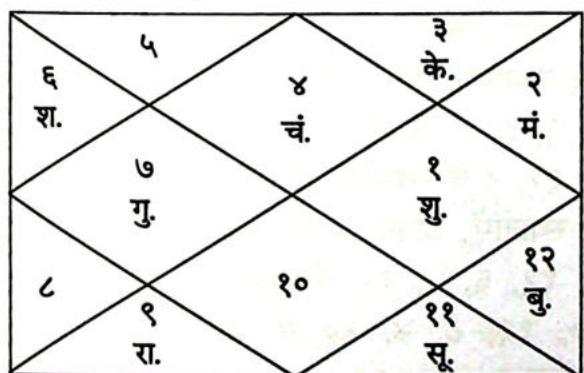
३. लग्नका अंशायु-साधन—लग्न ३। १५। २०। ३० के अंशादि बनानेसे १०५। २०। ३० हुए। इनमें ४० का भाग देनेपर बचे हुए २५। २०। ३० को ३०से गुणा करके गुणनफल ७६। १। ३० में १० का भाग दिया तो लब्धि ७ वर्ष हुए। शेष ६। १। ३० को १२से गुणा करके गुणनफल ७२। १८। ० में १० का भाग देनेपर लब्धि ७ मास हुए। मास-

और निसर्गायुमें नहीं की जाती है ॥ १२९—१३५ १/२ ॥

(दशा-निरूपण—) लग्र, सूर्य और चन्द्रमा—इन तीनोंमें जो अधिक बली है, प्रथम उसीकी दशा होती है। फिर उससे केन्द्रस्थित ग्रहोंकी, तदनन्तर 'पणफर' स्थित ग्रहोंकी, तत्पश्चात् 'आपोक्लिम' स्थित ग्रहोंकी दशा होती है। केन्द्रादि-स्थित ग्रहोंमें बलके अनुसार ही पूर्व-पूर्व दशा होती है। एक स्थानमें स्थित दो या तीन ग्रहोंमें यदि बलकी समानता हो तो उनमें जिसकी अधिक आयु हो उसकी प्रथम दशा होती है। आयुके वर्षादिमें भी समता हो तो जिस ग्रहका सूर्य-सान्निध्यसे प्रथम उदय हुआ हो, उसकी प्रथम दशा होती है ॥ १३६—१३७ ॥

(अन्तर्दशा-कथन—) दशापति पूर्णदशाका पाचक होता है, तथापि उसके साथ रहनेवाला ग्रह आधे ($\frac{1}{2}$) का, दशापतिसे त्रिकोण (५, ९)—में रहनेवाला तृतीयांश ($\frac{1}{3}$) का, सप्तममें रहनेवाला सप्तमांश ($\frac{1}{7}$) का, चतुरस्र (४।८)—में रहनेवाला चतुर्थांश ($\frac{1}{4}$) अन्तर्दशाका पाचक होता है। इससे

शेष २।१८ को ३० से गुणा कर गुणनफल ६९।० में १० का भाग देनेपर लब्ध ६ दिन हुए। शेष ९ को ६० से गुणा कर गुणनफल ५४० में १० का भाग देनेपर लब्ध ५४ घड़ी हुई। इस प्रकार लग्रका अंशायुर्दयमान वर्षादि ७। ७।६।५४।० हुआ।



* यहाँ लग्र, सूर्य और चन्द्रमा—इन तीनोंमें लग्र बली है, इसलिये प्रथम दशा लग्रकी होगी; फिर उससे केन्द्रादिस्थित ग्रहोंकी। तथा लग्रकी दशामें प्रथम अन्तर्दशा

सिद्ध है कि इन स्थानोंसे भिन्न स्थानमें स्थित ग्रहोंकी अन्तर्दशा नहीं होती है ॥ १३८ १/२ ॥

(अन्तर्दशा-साधनके गुणक—) मूल दशापतिका ८४, उसके साथ रहनेवालेका ४२, त्रिकोणमें रहनेवालेका २८, सप्तममें रहनेवालेका १२ तथा चतुर्थ-अष्टममें रहनेवालेका २१ गुणक कहा गया है। वर्षादि रूप दशा-प्रमाणको अपने-अपने गुणकसे गुणा करके सब गुणकोंके योगसे भाग देनेपर जो लब्धि आवे, वह वर्ष होता है। शेषको १२, ३० आदिसे गुणा करके गुणनफलमें गुणकके योगसे भाग देनेपर जो लब्धि आवे, वह मास-दिन आदिका सूचक होती है*। नारदजी! इसी प्रकार अन्तर्दशामें उपदशाके मान समझने चाहिये ॥ १३९—१४१ १/२ ॥

(दशाफल—) दशारम्भ-कालमें यदि चन्द्रमा दशापतिके मित्रकी राशि, स्वोच्च, स्वराशि या दशापतिसे १, ४, ७, ३, १०, ११ में शुभ स्थानमें हो तो जिस भावमें चन्द्रमा हो, उस भावकी विशेषरूपसे पुष्टि करता हुआ शुभ फल देता है।

लग्रकी, आगे फिर बलक्रमसे शुक्र और बुधकी अन्तर्दशा होगी। यहाँ दशापति लग्र है, इसलिये इसके गुणकाङ्क्ष ८४ से दशावर्षादि ११।१। ११ को गुणा कर गुणनफल ९३३।६। २४ में गुणकयोग १८७ का भाग देनेपर लब्ध वर्ष ४ हुए। शेष १८५।६। २४ को १२ से गुणा कर गुणनफल २२२६।९। १८ में १८७ का भाग देनेपर लब्ध ११ मास हुए। शेष १६९।९। १८ को ३० से गुणा कर गुणनफल ५०९४ में १८७ का भाग देनेपर लब्ध २७ दिन हुए। शेष ४३ को ६० से गुणा कर गुणनफल २५८० में १८७ का भाग देनेपर लब्ध १३ घड़ी हुई। शेष १४९ को ६० से गुणा कर गुणनफल ८९४० में १८७ का भाग देनेसे लब्ध ४७ पल हुए। इस प्रकार लब्ध वर्षादि ४। ११। २७। १३। ४७ यह लग्रकी दशामें लग्रकी अन्तर्दशाका मान हुआ।

इसी प्रकार अन्य ग्रहोंके भी अपने-अपने गुणकसे दशामानको गुणा करके गुणनफलमें गुणकयोगका भाग देकर अन्तर्दशाका मान साधन करना चाहिये।

इन स्थानोंसे भिन्न स्थानमें हो तो उस भावका नाशक होता है ॥ १४२-१४३ ॥ पहले जिस ग्रहके जो द्रव्य बताये गये हैं, भाव और राशियोंमें जो उन ग्रहोंकी दृष्टि तथा योगका फल कहा गया है एवं आजीविका आदि जो-जो फल बताये गये हैं, उन सबका विचार उस ग्रहकी दशामें करना चाहिये। जो ग्रह पापदशामें प्रवेशके समय अपने शत्रुसे देखा जाता हो, वह विपत्तिकारक (अत्यन्त अशुभ फल देनेवाला) होता है तथा जो शुभग्रह मित्रसे दृष्ट हो और शुभवर्गमें रहकर तत्काल बलवान् हो, वह सब आपत्ति (दुष्ट फल)-को नष्ट कर देता है। जिसका (आगे बताया जानेवाला) अष्टक वर्गज फल पूर्ण शुभ हो तथा जो ग्रह लग्न या चन्द्रमासे १, ३, ६, १०, ११ में, स्वोच्च स्थानमें, स्वराशिमें, अपने मूल त्रिकोणमें तथा मित्रकी राशिमें हो, उसका अशुभ फल भी मध्यम हो जाता है, मध्यम फल श्रेष्ठ हो जाता है तथा शुभ फल तो अत्यन्त श्रेष्ठ होता है। यदि वह ग्रह इससे भिन्न स्थानमें हो, तो उसके पाप-फलकी वृद्धि होती है और उसका शुभ फल भी अल्प हो जाता है। इन फलोंको भी ग्रहके बलाबलको समझकर तदनुसार स्वल्प या अधिक समझना चाहिये ॥ १४४-१४८ ॥

(लग्न-दशा-फल—) चर लग्नमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय द्रेष्काण हो तो क्रमसे लग्नकी दशा शुभ, मध्यम और अशुभ फल देनेवाली होती है। द्विस्वभाव लग्न हो तो इससे विपरीत फल होता है (अर्थात् प्रथमादि द्रेष्काणमें क्रमसे अशुभ, मध्यम और शुभ फल देनेवाली दशा होती है)। स्थिर लग्न हो तो प्रथमादि द्रेष्काणमें अशुभ, शुभ और मध्यम फल देनेवाली दशा होती है। लग्न यदि अपने स्वामी, गुरु और बुधसे युक्त एवं दृष्ट हो तो उसकी दशा शुभप्रद होती है। यदि वह पापग्रहसे युक्त या दृष्ट हो अथवा पापके मध्यमें हो तो उसकी दशा अशुभ फल देनेवाली होती है ॥ १४९-१५० ॥

(अष्टक-वर्ग-कथन—) सूर्य जन्म-कालिक स्वाश्रित राशिसे १। २। १०। ४। ८। ११। ९। ७ इन स्थानोंमें शुभ होता है। मङ्गल और शनिसे भी इन्हीं स्थानोंमें रहनेपर वह शुभ होता है। शुक्रसे ७। १२। ६ में, गुरुसे ९। ५। ११। ६ में, चन्द्रमासे १०। ३। ११। ६ में, बुधसे इन्हीं १०। ३। ११। ६ स्थानोंमें और १२। ५। ९ में भी वह शुभ होता है। लग्नसे ३। ६। १०। ११। १२। ४ इन स्थानोंमें सूर्य शुभ होता है ॥ १५१-१५२ ॥

चन्द्रमा लग्नसे ६, ३, १०, ११ स्थानोंमें; मङ्गलसे २, ५, ९ सहित इन्हीं ६, ३, १०, ११ स्थानोंमें; अपने स्थानसे ३, ६, १०, ११, ७, १में; सूर्यसे ३, ६, १०, ११, ७, ८ में; शनिसे ६, ३, ११, ५ में; बुधसे ५, ३, ८, १, ४, ७, १० में; गुरुसे १, ४, ७, १०, ८, ११, १२ में और शुक्रसे ४, ५, ९, ३, ११, ७, १० इन स्थानोंमें शुभ होता है ॥ १५३-१५४ ॥

मङ्गल सूर्यसे ३, ६, १०, ११, ५ में; लग्नसे ३, ६, १०, ११, १ में; चन्द्रमासे ३, ६, ११ में; अपने आश्रित स्थानसे १, ४, ७, १०, ८, ११, २ में; शनिसे ९, ८, ११, १, ४, ७, १० में; बुधसे ६, ३, ५, ११में; शुक्रसे ६, ११, २, ८ में और गुरुसे १०, ११, १२, ६ स्थानोंमें शुभ होता है ॥ १५५-१५६ ॥

बुध शुक्रसे ५, ३ सहित २, १, ८, ९, ४, ११ स्थानोंमें; शनि और मङ्गलसे १०, ७ सहित २, १, ८, ९, ४ और ११ वें स्थानमें; गुरुसे १२, ६, ११, ८ वें स्थानोंमें; सूर्यसे ९, ११, ६, ५, १२ वें स्थानोंमें; अपने आश्रित स्थानसे १, ३, १०, ९, ११, ६, ५, १२ वें स्थानोंमें; चन्द्रमासे ६, १०, ११, ८, ४, १० में और लग्नसे १ तथा पूर्वोक्त ६, १०, ११, ८, ४, १० स्थानोंमें शुभ होता है ॥ १५७-१५८ ॥

गुरु मङ्गलसे १०, २, ८, १, ७, ४, ११ स्थानोंमें; अपने आश्रित स्थानसे ३ सहित पूर्वोक्त

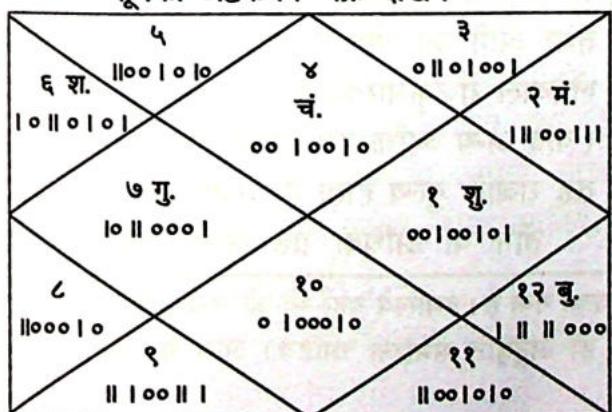
(१०, २, ८, १, ७, ४, ११) स्थानोंमें; सूर्यसे ३, ९ सहित पूर्वोक्त (१०, २, ८, १, ७, ४, ११) स्थानोंमें; शुक्रसे ५, २, ९, १०, ११, ६ में; चन्द्रमासे २, ११, ५, ९, ७ में; शनिसे ५, ३, ६, १२में; बुधसे ९, ४, ५, ६, २, १०, १, ११ में तथा लग्नसे ७ सहित पूर्वोक्त (९। ४, ५, ६, २, १०, १, ११) स्थानोंमें शुभ होता है ॥ १५९-१६० ॥

शुक्र लग्नसे १, २, ३, ४, ५, ११, ८, ९ स्थानोंमें; चन्द्रमासे भी इन्हीं स्थानों (१, २, ३, ४, ५, ११, ८, ९)-में और १२ वें स्थानमें; अपने आश्रित स्थानसे १० सहित उक्त (१, २, ३, ४, ५, ११, ८, ९) स्थानोंमें; शनिसे ३, ५, ९, ४, १०, ८, ११ स्थानोंमें; सूर्यसे ८, ११, १२ स्थानोंमें; गुरुसे ९, ८, ५, १०, ११ स्थानोंमें; बुधसे ५, ३, ११, ६, ९ स्थानोंमें और मङ्गलसे ३, ६, ९, ५, ११ तथा बारहवें स्थानोंमें शुभ होता है ॥ १६१-१६२ ॥

शनि अपने आश्रित स्थानसे ३, ५, ११, ६ में; मङ्गलसे १०, १२ सहित पूर्वोक्त (३, ५, ११, ६) स्थानोंमें; सूर्यसे १, ४, ७, १०, ११, ८, २ में; लग्नसे ३, ६, १०, ११, १, ४ में; बुधसे ९, ८, ११, ६, १०, १२ में; चन्द्रमासे ११, ३, ६ में; शुक्रसे ६, ११, १२ में और गुरुसे ५, ११, ६ स्थानोंमें शुभ होता है ॥ १६३-१६४ ॥

*बालकके जन्मकालमें जो ग्रहस्थिति है, उसमें ग्रहकी निजाश्रित राशिसे विचार करके इस प्रकार रेखा और बिन्दुका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। अर्थात् इस तरह रेखा और बिन्दु लगानेसे जिस स्थानमें अधिक रेखाकी संख्या हो,

सूर्यका अष्टकवर्ग-चक्र देखिये—



उपर्युक्त स्थानोंमें ग्रह रेखा-प्रद और अनुकूल स्थानोंमें बिन्दुप्रद होते हैं*। जो ग्रह लग्न या चन्द्रमासे वृद्धि या उपचय स्थान (३, ६, १०, ११) में हों, या अपने मित्रगृहमें, उच्च स्थानमें तथा स्वराशिमें स्थित हों, उनके द्वारा शुभ फलकी अधिकता होती है और इनसे भिन्न स्थानोंमें जो ग्रह हों, उनके द्वारा अशुभ फलोंकी अधिकता होती है ॥ १६५ ॥

(एकादि रेखावाले स्थानका फल—) उक्त प्रकारसे जिस स्थानमें एक रेखा हो, वहाँ ग्रहके जानेपर कष्ट होता है। दो रेखावाले स्थानमें जानेसे धनका नाश होता है। तीन रेखावालेमें जानेसे क्लेश होता है। चार रेखावाले स्थानमें ग्रहके पहुँचनेसे मध्यम फल होता है (शुभ-अशुभ फलकी तुल्यता होती है)। पाँच रेखावाले स्थानमें सुखकी प्राप्ति, छः रेखावालेमें धनका लाभ, सात रेखावाले स्थानमें सुख तथा आठ रेखावाले स्थानमें चारवश ग्रहके जानेपर अभीष्ट फलकी सिद्धि होती है ॥ १६६ ॥

(आजीविका-कथन—) जन्मकालिक लग्न और चन्द्रमासे १०वें स्थानमें यदि सूर्य आदि ग्रह हों तो क्रमसे पिता-माता, शत्रु, मित्र, भाई, स्त्री और नौकरके द्वारा धनका लाभ होता है। जन्मलग्न, जन्मकालिक चन्द्र तथा जन्मकालिक सूर्य—इन

उस स्थानमें चारवश ग्रहके जानेसे शुभ फल होता है और जिसमें बिन्दुकी संख्या अधिक हो, उस स्थानमें ग्रहके जानेसे अशुभ फलकी प्राप्ति होती है।

यहाँ रेखा और बिन्दु लगाकर सूर्यका अष्टकवर्ग-चक्र अঙ्कित किया गया है। इसमें वृष, कन्या, धनु और मीनमें रेखा अधिक होनेके कारण ये राशियाँ शुभ हैं तथा मिथुन, सिंह, तुला और कुम्भमें रेखा और बिन्दु तुल्य होनेके कारण ये मध्यम हैं एवं शेष कर्क, वृश्चिक, मकर और मेष—ये अधिक बिन्दु होनेके कारण अशुभ हैं।

तीनोंसे दशम स्थानके स्वामी जिस नवमांशमें हों, उस नवमांशके अधिपतिकी वृत्तिसे आजीविका समझनी चाहिये। यथा—उक्त दशम स्थानोंके स्वामी सूर्यके नवमांशमें हों तो तुण (पत्र-पुष्टादि), सुवर्ण, औषध, ऊन (ऊनी वस्त्र) तथा रेशम आदिसे जीविका समझे। चन्द्रमाके नवमांशमें हों तो खेती, जलज (मोती, मूँगा, शङ्ख, सीप आदि) और स्त्रीके द्वारा जीविका चलती है। मङ्गलके नवमांश हों तो धातु, अस्त्र-शस्त्र और साहससे जीवन-निर्वाह होता है। बुधके नवमांशमें हों तो काव्य, शिल्पकलादिसे, गुरुके नवमांशमें हों तो देवता और ब्राह्मणोंके द्वारा तथा लोहा-सोना आदिके खानसे, शुक्रके नवमांशमें हों तो चाँदी, गौ तथा रत्न आदिसे और शनिके नवमांशमें हों तो परपीड़न, परिश्रम और नीच कर्मद्वारा धनकी प्राप्ति होती है॥ १६७—१६९॥

(राजयोगका वर्णन—) शनि, सूर्य, गुरु और मङ्गल—ये चारों यदि अपने-अपने उच्चमें हों और इन्हींमें कोई एक लग्नमें हों तो इन चारों लग्नोंमें जन्म लेनेवाले बालक राजा होते हैं। लग्न अथवा चन्द्रमा वर्गोंतम नवमांशमें हो और उसपर ४, ५ या ६ ग्रहकी दृष्टि हो तो इसके २२ भेदमें २२ प्रकारके राजयोग होते हैं। मङ्गल अपने उच्चमें हो, रवि और चन्द्रमा धनुराशिमें हों और मकरस्थ शनि लग्नमें हो तो जातक राजा होता है। उच्च (मेष)-का रवि लग्नमें हो, चन्द्रमासहित शनि सप्तम भावमें हो, बृहस्पति अपनी राशि (धनु या मीन)—में हो तो जन्म लेनेवाला राजा होता है॥ १७०—१७१॥ शनि अथवा चन्द्रमा अपने उच्चराशिका होकर लग्नमें हों, षष्ठ भावमें सूर्य और बुध हो, शुक्र तुलामें, मङ्गल मेषमें और गुरु कर्कमें हो तो इन दोनों लग्नोंमें जन्म लेनेसे शिशु

राजा होते हैं। उच्चस्थ* मङ्गल यदि चन्द्रमाके साथ लग्नमें हो तो भी जातक राजा होता है। चन्द्रमा वृष लग्नमें हो और सूर्य, गुरु तथा शनि ये क्रमसे ४, ७, १०वें स्थानमें हों तो जातक राजा होता है। मकर लग्नमें शनि हो और लग्नसे ३, ६, ९ एवं १२ वें भावमें क्रमशः चन्द्रमा, मङ्गल, बुध तथा बृहस्पति हों तो जन्म लेनेवाला बालक राजा होता है॥ १७२—१७३॥

गुरुसहित चन्द्रमा धनुमें और मङ्गल मकरमें हों तथा बुध या शुक्र अपने उच्चमें स्थित होकर लग्नमें विद्यमान हों तो उन दोनों योगोंमें जन्म लेनेवाला शिशु राजा होता है। बृहस्पतिसहित कर्क लग्न हो, बुध, चन्द्रमा तथा शुक्र तीनों ११वें भावमें हों और सूर्य मेषमें हो तो जातक राजा होता है। चन्द्रमासहित मीन लग्न हो, सूर्य, शनि, मङ्गल—ये क्रमसे सिंह, कुम्भ और मकरमें हों तो उत्पन्न बालक राजा होता है। मङ्गलसहित मेष लग्न हो, बृहस्पति कर्कमें हो अथवा कर्कस्थ बृहस्पति लग्नमें हो तो जातक नरेश होता है। मङ्गल और शनि पञ्चम भावमें, गुरु, चन्द्रमा तथा शुक्र चतुर्थ भावमें और बुध कन्या लग्नमें हों तो जन्म लेनेवाला शिशु राजा होता है॥ १७४—१७६॥ मकर लग्नमें शनि हो तथा मेष, कर्क, सिंह—ये अपने-अपने स्वामीसे युक्त हों, शुक्र तुलामें और बुध मिथुनमें हों तो बालक यशस्वी राजा होता है॥ १७७॥ मुनीश्वर! इन बताये हुए योगोंमें जन्म लेनेवाला जिस किसीका पुत्र भी राजा होता है। तथा आगे जो योग बताये जायेंगे, उनमें जन्म लेनेवाले राजकुमारको ही राजा समझना चाहिये। (यदि अन्य व्यक्ति इस योगमें उत्पन्न हुआ हो तो वह राजाके तुल्य होता है, राजा नहीं।)॥ १७८॥

तीन या अधिक ग्रह बली होकर अपने-

*पहले उच्चस्थ मङ्गलादिके लग्नमें रहनेसे 'राजयोग' कहा गया है। इसलिये यहाँ भी जो चन्द्रमासहित मङ्गलके लग्नमें स्थित कहा गया है, उससे उनके उच्चस्थभावकी ही अनुवृत्ति समझनी चाहिये। अन्य मुनियोंने मकरस्थ मङ्गलके लग्नमें होनेसे 'राजयोग' कहा है।

अपने उच्च या मूल त्रिकोणमें हों तो बालक राजा होता है। सिंहमें सूर्य, मेष लग्नमें चन्द्रमा, मकरमें मङ्गल, कुम्भमें शनि और धनुमें बृहस्पति हो तो उत्पन्न शिशु भूपाल होता है। मुने! शुक्र अपनी राशिमें होकर चतुर्थ स्थानमें स्थित हों, चन्द्रमा नवम भावमें रहकर शुभ ग्रहसे दृष्ट या युक्त हों तथा शेष ग्रह ३, १, ११वें भावमें विद्यमान हों तो जातक इस वसुधाका अधीश्वर होता है। बुध सबल होकर लग्नमें स्थित हों, बलवान् शुभग्रह नवम भावमें स्थित हों तथा शेष ग्रह ९, ५, ३, ६, १० और ११वें भावमें हो तो उत्पन्न बालक धर्मात्मा नरेश होता है। चन्द्रमा, शनि और बृहस्पति क्रमशः दसवें, ग्यारहवें तथा लग्नमें स्थित हों, बुध और मङ्गल द्वितीय भावमें तथा शुक्र और रवि चतुर्थ भावमें स्थित हों तो जातक भूपाल होता है। वृष लग्नमें चन्द्रमा, द्वितीयमें गुरु, ११ वेंमें शनि तथा शेष ग्रह भी स्थित हों तो बालक नरेश होता है॥ १७९—१८३॥

चतुर्थ भावमें गुरु, १० वें भावमें रवि और चन्द्रमा, लग्नमें शनि और ११वें भावमें शेष ग्रह हों तो उत्पन्न शिशु राजा होता है। मङ्गल और शनि लग्नमें हों, चन्द्रमा, गुरु, शुक्र, रवि और बुध—ये क्रमसे ४, ७, ९, १० और ११ वेंमें हों तो ये सब ग्रह ऐसे बालकको जन्म देते हैं, जो भावी नरेश होता है। मुनीश्वर! ऊपर कहे हुए योगोंमें उत्पन्न मनुष्यके दशम भाव या लग्नमें जो ग्रह हो, उसकी दशा-अन्तर्दशा आनेपर उसे राज्यकी प्राप्ति होती है। इन दोनों स्थानोंमें ग्रह न हो तो जन्म-समयमें जो ग्रह बलवान् हो, उसकी दशामें राज्यलाभ समझना चाहिये तथा जो ग्रह जन्म-समयमें शत्रु-राशि या अपनी नीच राशिमें हो, उसकी राशिमें क्लेश, पीड़ा आदिकी प्राप्ति होती है॥ १८४-१८५५॥

(नाभस* योग-कथन—) समीपवर्ती दो केन्द्रस्थानोंमें ही (रविसे शनिपर्यन्त) सब ग्रह हों तो 'गदा' नामक योग होता है। केवल लग्न और ससम दो ही स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'शकट' योग होता है। दशम और चतुर्थमें ही सब ग्रहोंकी स्थिति हो तो 'विहग' (पक्षी) योग होता है। ५, ९ और लग्न—इन तीन ही स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'शृङ्खाटक' योग होता है। इसी प्रकार यदि लग्न भिन्न स्थानसे त्रिकोण स्थानोंमें ही सब ग्रह हों तो 'हल' नामक योग होता है॥ १८६-१८७॥ लग्न और ससममें सब शुभ ग्रह हों अथवा चतुर्थ-दशममें सब पापग्रह हों तो दोनों स्थितियोंमें 'वज्र' योग होता है। इसके विपरीत यदि लग्न, ससममें सब पापग्रह अथवा चतुर्थ, दशममें सब शुभग्रह हों तो 'यव' योग होता है। यदि चारों केन्द्रोंमें सब (शुभ और पाप)-ग्रह मिलकर बैठे हों तो 'कमल' योग होता है और केन्द्रस्थानसे बाहर (चारों पण्फर अथवा चारों आपोक्लिमस्थानोंमें) ही सब ग्रह स्थित हों तो 'वापी' नामक योग होता है॥ १८८॥ लग्नसे लगातार ४ स्थान (१, २, ३, ४) में ही सब ग्रह मौजूद हों तो 'यूप' योग होता है। चतुर्थसे चार स्थान (४, ५, ६, ७)-में ही सब ग्रह स्थित हों तो 'शर' योग होता है। ससमसे ४ स्थान (७, ८, ९, १०)-में ही सब ग्रहोंकी स्थिति हो तो 'शक्ति' योग होता है और दशमसे ४ स्थान (१०, ११, १२, १)-में ही सब ग्रह मौजूद हों तो 'दण्ड' योग होता है॥ १८९॥ लग्नसे क्रमशः सात स्थानों (१, २, ३, ४, ५, ६, ७)-में सब ग्रह हों तो 'नौका' योग, चतुर्थ भावसे आरम्भ करके लगातार सात स्थानोंमें सातों ग्रह हों तो 'कूट' योग, ससम भावसे आरम्भ करके लगातार सात स्थानोंमें सातों ग्रह विद्यमान हों तो 'छत्र' योग और दशमसे आरम्भ

*नाभस योग अनेक होते हैं। इन योगोंमें राहु और केतुको छोड़कर केवल सूर्य आदि सात ग्रह ही लिये गये हैं।

करके सात स्थानोंमें सब ग्रह स्थित हों तो 'चाप' नामक योग होता है। इसी प्रकार केन्द्रभिन्न स्थानसे आरम्भ करके लगातार सात स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'अर्धचन्द्र' नामक योग होता है ॥ १९० ॥

लग्रसे आरम्भ करके एक स्थानका अन्तर देकर क्रमशः (१, ३, ५, ७, ९ और ११ इन) ६ स्थानोंमें ही सब ग्रह स्थित हों तो 'चक्र' नामक योग होता है और द्वितीय भावसे लेकर एक स्थानका अन्तर देकर क्रमशः ६ स्थानों (२, ४, ६, ८, १०, १२)-में ही सब ग्रह मौजूद हों तो 'समुद्र' नामक योग होता है।

७ से १ स्थानतकमें सब ग्रहोंके रहनेपर क्रमशः वीणा आदि नामवाले ७ योग होते हैं। जैसे—७ स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'वीणा', ६ स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'दाम', ५ स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'पाश', ४ स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'क्षेत्र', ३ स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'शूल', २ स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'युग' और एक ही स्थानमें सब ग्रह हों तो 'गोल' नामक योग होता है। सब ग्रह चरराशिमें हों तो 'रज्जु', स्थिर राशिमें हों तो 'मुसल' और द्विस्वभावमें हों तो 'नल' नामक योग होता है। सब शुभग्रह केन्द्रस्थानोंमें हों तो 'माला' और सब पापग्रह केन्द्रस्थानोंमें हों तो 'सर्प' नामक योग होता है ॥ १९१—१९३ ॥

(इन योगोंमें जन्म लेनेवालोंके फल—) रज्जुयोगमें जन्म लेनेवाला बालक ईर्ष्यावान् और राह चलने (यात्रा करने या घूमने-फिरने)-की इच्छावाला होता है। मुसलयोगमें उत्पन्न शिशु धन और मानसे युक्त होता है। नलयोगमें उत्पन्न पुरुष अङ्गहीन, स्थिरबुद्धि और धनी होता है। मालायोगमें पैदा हुआ मानव भोगी होता है तथा सर्पयोगमें उत्पन्न पुरुष दुःखसे पीड़ित होता है ॥ १९४ ॥ वीणायोगमें जिसका जन्म हुआ हो, वह मनुष्य सब कार्योंमें निपुण तथा सञ्जीत और नृत्यमें रुचि रखनेवाला होता है। दामयोगमें उत्पन्न मनुष्य दाता

और धनाढ़य होता है। पाशयोगमें उत्पन्न धनवान् और सुशील होता है। केदार (क्षेत्र)-योगमें पैदा हुआ खेतीसे जीविका चलनेवाला होता है तथा शूलयोगमें उत्पन्न पुरुष शूरवीर, शस्त्रसे आघात न पानेवाला और अधन (धनहीन) होता है। युगयोगमें जन्म लेनेवाला पाखण्डी तथा गोलयोगमें उत्पन्न मनुष्य मलिन और निर्धन होता है ॥ १९५—१९६ ॥

चक्रयोगमें जन्म लेनेवाले पुरुषके चरणोंमें राजा लोग भी मस्तक झुकाते हैं। समुद्रयोगमें उत्पन्न पुरुष राजोचित भोगोंसे सम्पन्न होता है। अर्धचन्द्रमें पैदा हुआ बालक सुन्दर शरीरवाला तथा चापयोगमें उत्पन्न शिशु सुखी और शूरवीर होता है ॥ १९७ ॥ छत्रयोगमें उत्पन्न मनुष्य मित्रोंका उपकार करनेवाला तथा कूटयोगमें उत्पन्न मिथ्याभाषी और जेलका मालिक होता है। नौकायोगमें उत्पन्न पुरुष निश्चय ही यशस्वी और सुखी होता है। यूपयोगमें जन्म लेनेवाला मनुष्य दानी, यज्ञ करनेवाला और आत्मवान् (मनस्वी और जितात्मा) होता है। शरयोगमें उत्पन्न मनुष्य दूसरोंको कष्ट देनेवाला और गोपनीय स्थानोंका स्वामी होता है। शक्तियोगमें उत्पन्न नीच, आलसी और निर्धन होता है तथा दण्डयोगमें उत्पन्न पुरुष अपने प्रियजनोंसे वियोगका कष्ट भोगता है ॥ १९८—१९९ ॥

(चन्द्रयोगका कथन—) यदि चन्द्रमासे द्वितीयमें सूर्यको छोड़कर कोई भी अन्य ग्रह हो तो 'सुनफा' योग होता है। द्वादशमें हो तो 'अनफा' और दोनों (२, १२) स्थानोंमें ग्रह हों तो 'दुरुधरा' योग समझना चाहिये, अन्यथा (अर्थात् २, १२ में कोई ग्रह नहीं हों तो) 'केमद्वृम' योग होता है ॥ २०० ॥

(उक्त योगोंका फल—) 'सुनफा'योगमें जन्म लेनेवाला पुरुष अपने भुजबलसे उपार्जित धनका भोगी, दाता, धनवान् और सुखी होता है। 'अनफा' योगमें उत्पन्न मनुष्य रोगहीन, सुशील, विख्यात और सुन्दर रूपवाला होता है। 'दुरुधरा'

योगमें जन्म लेनेवाला भोगी, सुखी, धनवान्, दाता और विषयोंसे निःस्पृह होता है तथा 'केमद्रुम' योगमें उत्पन्न मनुष्य अत्यन्त मलिन, दुःखी, नीच और निर्धन होता है ॥ २०१-२०२ ॥

(द्विग्रहयोगफल—) मुने ! सूर्य यदि चन्द्रमासे युक्त हो तो भाँति-भाँतिके यन्त्र (मशीन) और पत्थरके कार्यमें कुशल बनाता है । मङ्गलसे युक्त हो तो वह बालकको नीच कर्ममें लगाता है, बुधसे युक्त हो तो यशस्वी, कार्यकुशल, विद्वान् एवं धनी बनाता है, गुरुसे युक्त हो तो दूसरोंके कार्य करनेवाला, शुक्रसे युक्त हो तो धातुओं (ताँबा आदि)-के कार्यमें निपुण तथा पात्र-निर्माण-कलाका जानकार बनाता है ॥ २०३-२०४ ॥

चन्द्रमा यदि मङ्गलसे युक्त हो तो जातक कूट वस्तु (नकली सामान), स्त्री और आसव-अरिष्टादिका क्रय-विक्रय करनेवाला तथा माताका द्रोही होता है । बुधके साथ चन्द्रमा हो तो उत्पन्न शिशुको धनी, कार्यकुशल तथा विनय और कीर्तिसे युक्त करता है; गुरुसे युक्त हो तो चञ्चलबुद्धि, कुलमें मुख्य, पराक्रमी और अधिक धनवान् बनाता है । मुने ! यदि शुक्रसे युक्त चन्द्रमा हो तो बालकको वस्त्रनिर्माण-कलाका ज्ञाता बनाता है और यदि शनिसे युक्त हो तो वह बालकको ऐसी स्त्रीके पेटसे उत्पन्न कराता है, जिसने पतिके मरनेपर या जीते-जी दूसरे पतिसे सम्बन्ध स्थापित कर लिया हो ॥ २०५-२०६ ॥

मङ्गल यदि बुधसे युक्त हो तो उत्पन्न हुआ बालक बाहुसे युद्ध करनेवाला (पहलवान) होता है । गुरुसे युक्त हो तो नगरका मालिक, शुक्रसे युक्त हो तो जूआ खेलनेवाला तथा गायोंको पालनेवाला और शनिसे युक्त हो तो मिथ्यावादी तथा जुआरी होता है ॥ २०७ ॥

नारंद ! बुध यदि बृहस्पतिसे युक्त हो तो उत्पन्न शिशु नृत्य और सङ्गीतका प्रेमी होता है । शुक्रसे युक्त हो तो मायावी और शनिसे युक्त हो

तो उत्पन्न मनुष्य लोभी और क्रूर होता है ॥ २०८ ॥

गुरु यदि शुक्रसे युक्त हो तो मनुष्य विद्वान्, शनिसे युक्त हो तो रसोइया अथवा घड़ा बनानेवाला (कुम्हार) होता है । शुक्र यदि शनिके साथ हो तो मन्द दृष्टिवाला तथा स्त्रीके आश्रयसे धनोपार्जन करनेवाला होता है ॥ २०९ ॥

(प्रव्रज्यायोग—) यदि जन्म-समयमें चार या चारसे अधिक ग्रह एक स्थानमें बलवान् हों तो मनुष्य गृहत्यागी संन्यासी होता है । उन ग्रहोंमें मङ्गल, बुध, गुरु, चन्द्रमा, शुक्र, शनि और सूर्य बली हों तो मनुष्य क्रमशः शाक्य (रक्त-वस्त्रधारी बौद्ध), आजीवक (दण्डी), भिक्षु (यती), वृद्ध (वृद्धश्रावक), चरक (चक्रधारी), अही (नग्न) और फलाहारी होता है । प्रव्रज्याकारक ग्रह यदि अन्य ग्रहसे पराजित हो तो मनुष्य उस प्रव्रज्यासे गिर जाता है । यदि प्रव्रज्याकारक ग्रह सूर्य-सान्निध्यवश अस्त हो तो मनुष्य उसकी दीक्षा ही नहीं लेता और यदि वह ग्रह बलवान् हो तो उसकी 'प्रव्रज्या' में प्रीति रहती है । जन्मराशीशको यदि अन्य ग्रह नहीं देखता हो और जन्मराशीश यदि शनिको देखता हो अथवा निर्बल जन्मराशीशको शनि देखता हो या शनिके द्रेष्काण अथवा मङ्गल या शनिके नवमांशमें चन्द्रमा हो और उसपर शनिकी दृष्टि हो तो इन योगोंमें विरक्त होकर गृहत्याग करनेवाला पुरुष संन्यास-धर्मकी दीक्षा लेता है ॥ २१०-२१३ ॥

(अश्वन्यादि नक्षत्रोंमें जन्मका फल—) अश्वनी नक्षत्रमें जन्म हो तो बालक सुन्दर रूपवाला और भूषणप्रिय होता है । भरणीमें उत्पन्न शिशु सब कार्य करनेमें समर्थ और सत्यवक्ता होता है । कृत्तिकामें जन्म लेनेवाला अमिताहारी, परस्त्रीमें आसक्त, स्थिरबुद्धि और प्रियवक्ता होता है । रोहिणीमें पैदा हुआ मनुष्य धनवान्; मृगशिरामें भोगी; आद्रामें हिंसास्वभाववाला, शठ और अपराधी; पुनर्वसुमें जितेन्द्रिय, रोगी और सुशील तथा पुष्पमें कवि

और सुखी होता है ॥ २१४-२१५ ॥ आश्लेषा नक्षत्रमें उत्पन्न मनुष्य धूर्त, शठ, कृतज्ञ, नीच और खान-पानका विचार न रखनेवाला होता है। मध्यमें भोगी, धनी तथा देवादिका भक्त होता है। पूर्वा फाल्गुनीमें दाता और प्रियवक्ता होता है। उत्तरा फाल्गुनीमें धनी और भोगी; हस्तमें चोरस्वभाव, ढीठ और निर्लज्ज तथा चित्रामें नाना प्रकारके वस्त्र धारण करनेवाला और सुन्दर नेत्रोंसे युक्त होता है। स्वातीमें जन्म लेनेवाला मनुष्य धर्मात्मा और दयालु होता है। विशाखामें लोभी, चतुर और क्रोधी; अनुराधामें भ्रमणशील और विदेशवासी; ज्येष्ठामें धर्मात्मा और संतोषी तथा मूलमें धनीमानी और सुखी होता है। पूर्वाषाढ़में मानी, सुखी और हष्ट; उत्तराषाढ़में विनयी और धर्मात्मा; श्रवणमें धनी, सुखी और लोकमें विख्यात तथा धनिष्ठामें दानी, शूरवीर और धनवान् होता है। शतभिषामें शत्रुको जीतनेवाला और व्यसनमें आसक्त; पूर्वभाद्रपदमें स्त्रीके वशीभूत और धनवान्; उत्तर-भाद्रपदमें वक्ता, सुखी और सुन्दर तथा रेवतीमें जन्म लेनेवाला शूरवीर, धनवान् और पवित्र हृदयवाला होता है ॥ २१६-२२० ॥

(मेषादि चन्द्रराशिमें जन्मका फल—) मेषराशिमें जन्म लेनेवाला कामी, शूरवीर और कृतज्ञ; वृषमें सुन्दर, दानी और क्षमावान्; मिथुनमें स्त्रीभोगासक्त, द्यूतविद्याको जाननेवाला तथा कर्कराशिमें स्त्रीके वशीभूत और छोटे शरीरवाला होता है। सिंहराशिमें स्त्रीद्वेषी, क्रोधी, मानी, पराक्रमी, स्थिरबुद्धि और सुखी होता है। कन्याराशिमें धर्मात्मा, कोमल शरीरवाला तथा सुबुद्धि होता है। तुलाराशिमें उत्पन्न पुरुष पण्डित, ऊँचे कदवाला और धनवान् होता है। वृश्चिकराशिमें जन्म लेनेवाला रोगी, लोकमें पूज्य और क्षत (आघात)-युक्त होता है। धनुमें जन्म लेनेवाला कवि, शिल्पज्ञ और धनवान्; मकरमें कार्य करनेमें अनुत्साही, व्यर्थ घूमनेवाला और सुन्दर नेत्रोंसे

युक्त; कुम्भमें परस्त्री और परधन हरण करनेके स्वभाववाला तथा मीनमें धनु-सदृश (कवि और शिल्पज्ञ) होता है ॥ २२१-२२३ ॥

यदि चन्द्रमाकी राशि बली हो तथा राशिका स्वामी और चन्द्रमा दोनों बलवान् हों तो ऊपर कहे हुए फल पूर्णरूपसे संघटित होते हैं—ऐसा समझना चाहिये। अन्यथा विपरीत फल (अर्थात् निर्बल हो तो फलका अभाव या बलके अनुसार फलमें भी तारतम्य) जानना चाहिये। इसी प्रकार अन्य ग्रहोंकी राशिके अनुसार फलका विचार करना चाहिये ॥ २२४ ॥

(सूर्यादि ग्रह-राशि-फल—) सूर्य यदि मेष-राशिमें हो तो जातक लोकमें विख्यात होता है। वृषमें हो तो स्त्रीका द्वेषी, मिथुनमें हो तो धनवान्, कर्कमें हो तो उग्र स्वभाववाला, सिंहमें हो तो मूर्ख, कन्यामें हो तो कवि, तुलामें हो तो कलवार, वृश्चिकमें हो तो धनवान्, धनुमें हो तो लोकपूज्य, मकरमें हो तो लोभी, कुम्भमें हो तो निर्धन और मीनमें हो तो जातक सुखसे रहित होता है ॥ २२५ ॥

मङ्गल यदि सिंहमें हो तो जातक निर्धन, कर्कमें हो तो धनवान्, स्वराशि (मेष, वृश्चिक)-में हो तो भ्रमणशील, बुधराशि (कन्या-मिथुन)-में हो तो कृतज्ञ, गुरुराशि (धनु-मीन)-में हो तो विख्यात, शुक्रराशि (वृष-तुला)-में हो तो परस्त्रीमें आसक्त, मकरमें हो तो बहुत पुत्र और धनवाला तथा कुम्भमें हो तो दुःखी, दुष्ट और मिथ्यास्वभाववाला होता है ॥ २२६ ॥

बुध यदि सूर्यकी राशि (सिंह)-में हो तो स्त्रीका द्वेषी, चन्द्रराशि (कर्क)-में हो तो अपने परिजनोंका द्वेषी, मङ्गलकी राशि (मेष-वृश्चिक)-में हो तो निर्धन और सत्त्वहीन, अपनी राशि (मिथुन-कन्या)-में हो तो बुद्धिमान् और धनवान्, गुरुकी राशि (धनु-मीन)-में हो तो मान और धनसे युक्त, शुक्रकी राशि (वृष-तुला)-में हो तो

पुत्र और स्त्रीसे सम्पन्न तथा शनिकी राशि (मकर-कुम्भ)-में हो तो ऋणी होता है ॥ २२७ १ ॥

गुरु यदि सिंहमें हो तो सेनापति, कर्कमें हो तो स्त्री-पुत्रादिसे युक्त एवं धनी, मङ्गलकी राशि (मेष-वृश्चिक)-में हो तो धनी और क्षमाशील, बुधकी राशि (मिथुन-कन्या)-में हो तो वस्त्रादि विभवसे युक्त, अपनी राशि (धनु-मीन)-में हो तो मण्डल (जिला)-का मालिक, शुक्रकी राशि (वृष-तुला)-में हो तो धनी और सुखी तथा शनिकी राशि (मकर-कुम्भ)-में हो तो मकरमें ऋणवान् और कुम्भमें धनवान् होता है ॥ २२८ १ ॥

शुक्र सिंहमें हो तो जातक स्त्रीद्वारा धन-लाभ करनेवाला, कर्कमें हो तो घमण्ड और शोकसे युक्त, मङ्गलकी राशि (मेष-वृश्चिक)-में हो तो बन्धुओंसे द्वेष रखनेवाला, बुधकी राशि (मिथुन-कर्क)-में हो तो धनी और पापस्वभाव, गुरुकी राशि (धनु-मीन)-में हो तो धनी और पण्डित, अपनी राशि (वृष-तुला)-में हो तो धनवान् और क्षमावान् तथा शनिकी राशि (मकर-कुम्भ)-में हो तो स्त्रीसे पराजित होता है ॥ २२९ १ ॥

शनि यदि सिंहमें हो तो पुत्र और धनसे रहित, कर्कमें हो तो धन और संतानसे हीन, मङ्गलकी राशि (मेष-वृश्चिक)-में हो तो निर्बुद्धि और मित्रहीन, बुधकी राशि (मिथुन-कन्या)-में हो तो प्रधान रक्षक, गुरुकी राशि (धनु-मीन)-में हो तो सुपुत्र, उत्तम स्त्री और धनसे युक्त, शुक्रकी राशि (वृष-तुला)-में हो तो राजा और अपनी राशि (मकर-कुम्भ)-में हो तो जातक ग्रामका अधिपति होता है ॥ २३० १ ॥

(चन्द्रपर दृष्टिका फल—) मेषस्थित चन्द्रमापर मङ्गल आदि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो जातक क्रमसे राजा, पण्डित, गुणवान्, चोर-

स्वभाव तथा निर्धन* होता है ॥ २३१ ॥

वृषस्थ चन्द्रमापर मङ्गल आदि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो क्रमसे निर्धन, चोर-स्वभाव, राजा, पण्डित तथा प्रेष्य (भूत्य) होता है। मिथुनराशिमें स्थित चन्द्रमापर मङ्गल आदि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो मनुष्य क्रमशः धातुओंसे आजीविका करनेवाला, राजा, पण्डित, निर्भय, वस्त्र बनानेवाला तथा धनहीन होता है। अपनी राशि (कर्क)-में स्थित चन्द्रमापर यदि मङ्गलादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो जन्म लेनेवाला शिशु क्रमशः योद्धा, कवि, पण्डित, धनी, धातुसे जीविका करनेवाला तथा नेत्ररोगी होता है। सिंहराशिस्थ चन्द्रमापर यदि बुधादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो मनुष्य क्रमशः ज्यौतिषी, धनवान्, लोकमें पूज्य, नाई, राजा तथा नरेश होता है। कन्या-राशिस्थित चन्द्रमापर बुध आदि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो शुभग्रहों (बुध, गुरु, शुक्र)-की दृष्टि होनेपर जातक क्रमशः राजा, सेनापति एवं निपुण होता है और अशुभ (शनि, मङ्गल, रवि)-की दृष्टि होनेपर स्त्रीके आश्रयसे जीविका करनेवाला होता है। तुला-राशिस्थ चन्द्रमापर यदि बुध आदि (बुध, गुरु, शुक्र)-की दृष्टि हो तो उत्पन्न बालक क्रमसे भूपति, सोनार और व्यापारी होता है तथा शेषग्रह (शनि, रवि और मङ्गल)-की दृष्टि होनेपर वह हिंसाके स्वभाववाला होता है ॥ २३२—२३४ ॥ वृश्चिक-राशिस्थ चन्द्रमापर बुध आदि ग्रहोंकी दृष्टि होनेपर क्रमसे जातक दो संतानका पिता, मृदुस्वभाव, वस्त्रादिकी रँगाई करनेवाला, अङ्गहीन, निर्धन और भूमिपति होता है। धन-राशिस्थ चन्द्रमापर बुध आदि शुभग्रहोंकी दृष्टि हो तो उत्पन्न बालक क्रमशः अपने कुल, पृथ्वी तथा जनसमूहका पालक होता है। शेष ग्रहों (शनि, रवि तथा मङ्गल)-की दृष्टि हो तो जातक दम्भी

*मङ्गलकी दृष्टिसे भूप, बुधकी दृष्टिसे ज्ञ (पण्डित), गुरुकी दृष्टिसे गुणी, शुक्रकी दृष्टिसे चोर-स्वभाव तथा शनिकी दृष्टिसे अस्व (निर्धन) कहा गया है। सूर्यकी दृष्टिका फल अनुक्त होनेके कारण उसे शनिके ही तुल्य समझना चाहिये।

और शठ होता है ॥ २३५ ॥ मकर-राशिस्थित चन्द्रमापर बुध आदिकी दृष्टि हो तो वह क्रमशः भूमिपति, पण्डित, धनी, लोकमें पूज्य, भूपति तथा परस्त्रीमें आसक्त होता है। कुम्भ-राशिस्थ चन्द्रमापर भी उक्त ग्रहोंकी दृष्टि होनेपर इसी प्रकार (मकर-राशिस्थके समान) फल समझना चाहिये। मीन-राशिस्थ चन्द्रमापर शुभग्रहों (बुध, गुरु और शुक्र)-की दृष्टि हो तो जातक क्रमशः हास्यप्रिय, राजा और पण्डित होता है। (तथा शेष ग्रहों (पापग्रहों)-की दृष्टि होनेपर अनिष्ट फल समझना चाहिये ।) ॥ २३६ ॥ होरा (लग्न) के स्वामीकी होरामें स्थित चन्द्रमापर उसी होरामें स्थित ग्रहोंकी दृष्टि हो तो वह शुभप्रद होता है। जिस तृतीयांश (द्रेष्काण) -में चन्द्रमा हो उसके स्वामीसे तथा मित्र-राशिस्थ ग्रहोंसे युक्त या दृष्ट चन्द्रमा शुभप्रद होता है। प्रत्येक राशिमें स्थित चन्द्रमापर ग्रहोंकी दृष्टि होनेसे जो-जो फल कहे गये हैं, उन राशियोंके द्वादशांशमें स्थित चन्द्रमापर भी उन-उन ग्रहोंकी दृष्टि होनेसे वे ही फल प्राप्त होते हैं।

अब नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर भिन्न-भिन्न ग्रहोंकी दृष्टिसे प्राप्त होनेवाले फलोंका वर्णन करता हूँ। मङ्गलके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर यदि सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो जातक क्रमशः : * ग्राम या नगरका रक्षक, हिंसाके स्वभाववाला, युद्धमें निपुण, भूपति, धनवान् तथा झगड़ालू होता है। शुक्रके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो उत्पन्न बालक क्रमशः मूर्ख, परस्त्रीमें आसक्त, सुखी, काव्यकर्ता, सुखी तथा परस्त्रीमें आसक्ति रखनेवाला होता है। बुधके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर यदि सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो बालक क्रमशः नर्तक, चोरस्वभाव, पण्डित, मन्त्री, सङ्गीतज्ञ तथा शिल्पकार होता है। अपने (कर्क) नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर

यदि सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो वह छोटे शरीरवाला, धनवान्, तपस्वी, लोभी, अपनी स्त्रीकी कमाईपर पलनेवाला तथा कर्तव्यपरायण होता है। सूर्यके नवमांश (सिंह)-में स्थित चन्द्रमापर यदि सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो बालक क्रमशः क्रोधी, राजमन्त्री, निधिपति या मन्त्री, राजा, हिंसाके स्वभाववाला तथा पुत्रहीन होता है। गुरुके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो बालक क्रमशः हास्यप्रिय, रणमें कुशल, बलवान्, मन्त्री, धर्मात्मा तथा धर्मशील होता है। शनिके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर यदि सूर्यादि ग्रहोंकी हो तो जातक क्रमशः अल्पसंतति, दुःखी, अभिमानी, अपने कार्यमें तत्पर, दुष्ट स्त्रीका पति तथा कृपण होता है। जिस प्रकार मेषादि राशि या उसके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर सूर्यादि ग्रहोंके दृष्टि-फल कहे गये हैं, इसी प्रकार मेषादि राशि या नवमांशमें स्थित सूर्यपर चन्द्रादि ग्रहोंकी दृष्टिसे भी प्राप्त होनेवाले फल समझने चाहिये ॥ २३७—२४३ ॥

(फलोंमें न्यूनाधिक्य—) चन्द्रमा यदि वर्गोत्तम नवमांशमें हो तो पूर्वोक्त शुभ फल पूर्ण, अपने नवमांशमें हो तो मध्यम (आधा) और अन्य नवमांशमें हो तो अल्प समझना चाहिये। (इसीसे यह भी सिद्ध हो जाता है कि जो अशुभ फल कहे गये हैं, वे भी विपरीत दशामें विपरीत होते हैं अर्थात् वर्गोत्तममें चन्द्रमा हो तो अशुभ फल अल्प, अपने नवमांशमें हो तो आधा और अन्य नवमांशमें हो तो पूर्ण होते हैं।) राशि और नवमांशके फलोंमें भिन्नता होनेपर यदि नवमांशका स्वामी बली हो तो वह राशिफलको रोककर ही फल देता है ॥ २४४ ॥

(द्वादश भावगत ग्रहोंके फल—) सूर्य यदि लग्नमें हो तो शिशु शूरवीर, दीर्घसूत्री (देरसे काम

१. सूर्यादि क्रममें सूर्य, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि इस प्रकार छः ग्रह तथा बुधादिमें बुध, गुरु, शुक्र, शनि, रवि, मङ्गल इस प्रकार छः ग्रह समझने चाहिये ।

करनेके स्वभाववाला), दुर्बल दृष्टिवाला और निर्दय होता है। यदि मेषमें रहकर लग्रमें हो तो धनवान् और नेत्ररोगी होता है और सिंह लग्रमें हो तो रात्र्यन्ध (रत्तीधीवाला), तुलालग्रमें हो तो अंधा और निर्धन होता है। कर्क लग्रमें हो तो जातककी आँखमें फूली होती है।

द्वितीय भावमें सूर्य हो तो बालक बहुत धनी, राजदण्ड पानेवाला और मुखका रोगी होता है। तृतीय स्थानमें हो तो पण्डित और पराक्रमी होता है। चतुर्थ स्थानमें सूर्य हो तो सुखहीन और पीड़ायुक्त होता है। सूर्य पञ्चम भावमें हो तो मनुष्य धनहीन और पुत्रहीन होता है। षष्ठ भावमें हो तो बलवान् और शत्रुओंको जीतनेवाला होता है। सप्तम भावमें स्थित हो तो मनुष्य अपनी स्त्रीसे पराजित होता है। अष्टम भावमें हो तो उसके पुत्र थोड़े होते हैं और उसे दिखायी भी कम ही देता है। नवम भावमें हो तो जातक पुत्रवान्, धनवान् और सुखी होता है। दशम भावमें हो तो विद्वान् और पराक्रमी तथा एकादश भावमें हो तो अधिक धनवान् और मानी होता है। यदि द्वादश भावमें सूर्य हो तो उत्पन्न बालक नीच और धनहीन होता है॥ २४५—२४९॥

चन्द्रमा यदि मेष लग्रमें हो तो जातक गूँगा, बहिरा, अंधा और दूसरोंका दास होता है। वृष लग्रमें हो तो वह धनी होता है। द्वितीय भावमें हो तो विद्वान् और धनवान्, तृतीय भावमें हो तो हिंसाके स्वभाववाला, चतुर्थ स्थानमें हो तो उस भावके लिये कहे हुए फलों (सुख, गृहादि)-से सम्पन्न, पञ्चम भावमें हो तो कन्यारूप संतानवाला और आलसी होता है। छठे भावमें हो तो बालक मन्दाग्निका रोगी होता है, उसे अभीष्ट भोग बहुत कम मिलते हैं तथा वह उग्र स्वभावका होता है। सप्तम भावमें हो तो जातक ईर्ष्यावान् और अत्यन्त कामी होता है। अष्टम भावमें हो तो रोगसे

पीड़ित, नवम भावमें हो तो मित्र और धनसे युक्त, दशम भावमें हो तो धर्मात्मा, बुद्धिमान् और धनवान् होता है। एकादश भावमें हो तो उत्पन्न शिशु विष्ण्यात, बुद्धिमान् और धनवान् होता है तथा द्वादश भावमें हो तो जातक क्षुद्र और अङ्गहीन होता है॥ २५०—२५२२॥

मङ्गल लग्रमें हो तो उत्पन्न शिशु क्षत शरीरवाला होता है। द्वितीय भावमें हो तो वह कदन्त* भोजी तथा नवम भावमें हो तो पापस्वभाव होता है। इनसे भिन्न (३, ४, ५, ६, ७, ८, १०, ११, १२) स्थानोंमें यदि मङ्गल हो तो उसके फल सूर्यके समान ही होते हैं॥ २५३२॥

बुध लग्रमें हो तो जातक पण्डित होता है। द्वितीय भावमें हो तो शिशु धनवान्, तृतीय भावमें हो तो दुष्ट स्वभाव, चतुर्थ भावमें हो तो पण्डित, पञ्चम भावमें हो तो राजमन्त्री, षष्ठ भावमें हो तो शत्रुहीन, सप्तममें हो तो धर्मज्ञाता, अष्टम भावमें हो तो विष्ण्यात गुणवाला और शेष (९, १०, ११, १२) भावोंमें हो तो जैसे सूर्यके फल कहे गये हैं, वैसे ही उसके फल भी समझने चाहिये॥ २५४२॥

बृहस्पति लग्रमें हो तो जातक विद्वान्, द्वितीय भावमें हो तो प्रियभाषी, तृतीय भावमें हो तो कृपण, चतुर्थमें हो तो सुखी, पञ्चममें हो तो विज्ञ, षष्ठममें हो तो शत्रुरहित, सप्तममें हो तो सम्पत्तियुक्त, अष्टममें हो तो नीच स्वभाववाला, नवममें हो तो तपस्वी, दशममें हो तो धनवान्, एकादशमें हो तो नित्य लाभ करनेवाला और द्वादशमें हो तो दुष्ट हृदयवाला होता है॥ २५५२॥ शुक्र लग्रमें हो तो जातक कामी और सुखी, सप्तम भावमें हो तो कामी तथा पञ्चम भावमें हो तो सुखी होता है और अन्य भावों (२, ३, ४, ६, ८, ९, १०, ११, १२)-में हो तो वह उत्पन्न बालकको बृहस्पतिके समान ही फल देता है॥ २५६२॥

शनि लग्रमें हो तो जातक निर्धन, रोगी,

* कोदो, मङ्गुआ आदि निम्न श्रेणीके अन्नको कदन्त (कु+अन्त) कहते हैं।

कामातुर, मलिन, बाल्यावस्थामें रोगी और आलसी होता है। किंतु यदि अपनी राशि (मकर-कुम्भ) या अपने उच्च (तुला)में हो तो जातक भूपति, ग्रामपति, पण्डित और सुन्दर शरीरवाला होता है। अन्य (द्वितीय आदि) भावोंमें सूर्यके समान ही शनिके भी फल होते हैं ॥ २५७-२५८ ॥

(फलमें न्यूनाधिकत्व—) शुभग्रह यदि अपने उच्चमें हों तो पूर्णरूपसे उपर्युक्त फल प्राप्त होता है। यदि अपने मूल त्रिकोणमें हो तो तीन चरण, अपनी राशिमें हो तो आधा, मित्रके गृहमें हो तो एक चरण तथा शत्रुकी राशिमें हो तो उससे भी कम फल प्राप्त होता है और नीचमें या अस्त हो तो कुछ भी फल नहीं होता है। (इस प्रकार शुभ ग्रहके फल कहनेसे सिद्ध होता है कि पापग्रहका फल इसके विपरीत होता है। अर्थात् पापग्रह नीचमें या अस्त हो तो पूर्ण फल, शत्रु-राशिमें तीन चरण, मित्र-राशिमें आधा, अपनी राशिमें एक चरण, अपने मूल त्रिकोणमें उससे भी अल्प और अपने उच्चमें हो तो अपना कुछ भी फल नहीं देता है) ॥ २५९ ॥

(स्वराशिस्थ ग्रहफल—) यदि अपनी राशिमें एक ग्रह हो तो जातक अपने पिताके सदृश धनवान् और यशस्वी होता है। दो ग्रह अपनी राशिमें हों तो बालक अपने कुलमें श्रेष्ठ, तीन ग्रह हों तो बन्धुओंमें माननीय, चार ग्रह हों तो विशेष धनवान्, पाँच ग्रह हों तो सुखी, छः ग्रह हों तो भोगी और यदि सातों ग्रह अपनी राशिमें स्थित हों तो जातक राजा होता है ॥ २६० ॥

यदि अपने मित्रकी राशिमें एक ग्रह हो तो जातक दूसरेके धनसे पालित, दो ग्रह हों तो मित्रोंके द्वारा पोषित और तीन ग्रह हों तो वह अपने बन्धुओंके द्वारा पालित होता है। यदि चार ग्रह मित्रराशिमें हों तो बालक अपने बाहुबलसे जीवननिर्वाह करता है। पाँच ग्रह हों तो बहुत

लोगोंका पालन करनेवाला होता है। छः ग्रह हों तो सेनापति और सातों ग्रह मित्रराशिमें हों तो जातक राजा होता है ॥ २६१ ॥

पापग्रह यदि विषम राशि और सूर्यकी होरा (राश्यर्ध)-में हों तो जातक लोकमें विष्वात, महान् उद्योगी, अत्यन्त तेजस्वी, बुद्धिमान्, धनवान् और बलवान् होता है। तथा शुभग्रह यदि समराशि और चन्द्रमाकी होरामें हों तो जातक कान्तिमान्, मृदु (कोमल) शरीरवाला, भाग्यवान्, भोगी और बुद्धिमान् होता है। यदि पापग्रह समराशि और सूर्यकी होरामें हों तो पूर्वोक्त फल मध्यम (आधा) होता है। एवं शुभ यदि विषमराशि और सूर्यकी होरामें हों तो ऊपर कहे हुए फल नहीं प्राप्त होते हैं ॥ २६२—२६४ ॥

चन्द्रमा यदि अपने या अपने मित्रके द्रेष्काणमें हो तो जातक सुन्दर स्वरूपवाला और गुणवान् होता है। अन्य द्रेष्काणमें हो तो उस द्रेष्काणकी राशि और द्रेष्काणपतिके सदृश ही फल प्राप्त होता है। (सारांश यह है कि उस द्रेष्काणका स्वामी यदि चन्द्रमाका मित्र हो तो तीन चरण फल मिलता है, सम हो तो दो चरण (आधा) फल मिलता है तथा शत्रु हो तो एक चरण फल होता है।) यदि सर्प द्रेष्काण*, शस्त्र द्रेष्काण, चतुष्पद द्रेष्काण और पक्षी द्रेष्काणमें चन्द्रमा हो तो जातक क्रमशः उग्र-स्वभाव, हिंसाके स्वभाववाला, गुरुकी शश्यापर बैठनेवाला और भ्रमणशील होता है ॥ २६५-२६६ ॥

(लग्ननवमांश राशिफल—) लग्नमें मेषका नवमांश हो तो जातक चोरस्वभाव, वृष-नवमांश हो तो भोगी, मिथुन-नवमांश हो तो धनी, कर्क-नवमांश हो तो बुद्धिमान्, सिंह-नवमांश हो तो राजा, कन्या-नवमांश हो तो नपुंसक, तुला-नवमांश हो तो शत्रुको जीतनेवाला, वृश्चिक-नवमांश हो तो बेगारी करनेवाला, धनुका नवमांश

* द्रेष्काणनिरूपणमें देखिये।

हो तो दासकर्म करनेवाला, मकर-नवमांश हो तो पापस्वभाव, कुम्भ-नवमांश हो तो हिंसाके स्वभाववाला और मीन-नवमांश लग्नमें हो तो बुद्धिहीन होता है। किंतु यदि वर्गोत्तम नवमांश (अर्थात् जो राशि हो उसीका नवमांश भी) हो तो वह जातक इन (चोरस्वभाव आदि सब)-का शासक होता है। (जैसे मेष-नवमांशमें उत्पन्न मनुष्य चोरस्वभाव होता है, किंतु यदि मेष राशिमें मेषका नवमांश हो तो वह चोरस्वभाववालोंका शासक होता है, इत्यादि।) इसी प्रकार मेषादि राशियोंके द्वादशांशमें मेषादि राशियोंके समान फल प्राप्त होते हैं॥ २६७-२६८॥

(मङ्गल आदि ग्रहोंके त्रिंशांशफल—) मङ्गल अपने त्रिंशांशमें हो तो जातक स्त्री, बल, आभूषण तथा परिजनादिसे सम्पन्न, साहसी और तेजस्वी होता है। शनि अपने त्रिंशांशमें हो तो रोगी, स्त्रीके प्रति कुटिल, परस्त्रीमें आसक्त, दुःखी, वस्त्रादि आवश्यक सामग्रीसे सम्पन्न, किंतु मलिन होता है। गुरु अपने त्रिंशांशमें हो तो जातक सुखी, बुद्धिमान्, धनी, कीर्तिमान्, तेजस्वी, लोकमें मान्य, रोगहीन, उद्यमी और भोगी होता है। बुध अपने त्रिंशांशमें हो तो मनुष्य मेधावी, कलाकुशल, काव्य और शिल्पविद्याका ज्ञाता, विवादी, कपटी, शास्त्रतत्त्वज्ञ तथा साहसी होता है। शुक्र अपने त्रिंशांशमें हो तो जातक अधिक संतान, सुख, आरोग्य, सौन्दर्य और धनसे युक्त, मनोहर शरीरवाला तथा अजितेन्द्रिय होता है॥ २६९-२७३॥

(सूर्य-चन्द्र-फल—) मङ्गलके त्रिंशांशमें सूर्य हो तो जातक शूरवीर, चन्द्रमा हो तो दीर्घसूत्री, बुधके त्रिंशांशमें सूर्य हो तो जातक कुटिल और चन्द्रमा हो तो हिंसाके स्वभाववाला होता है। गुरुके त्रिंशांशमें रवि हो तो गुणी और चन्द्रमा हो

तो भी गुणी होता है। शुक्रके त्रिंशांशमें सूर्य हो तो बालक सुखी और चन्द्रमा हो तो विद्वान् होता है। शनिके त्रिंशांशमें रवि हो तो सुन्दर शरीरवाला तथा चन्द्रमा हो तो सर्वजनप्रिय होता है॥ २७४॥

(कारक ग्रह—) अपने-अपने मूल त्रिकोण, स्वराशि या स्वोच्चमें स्थित ग्रह यदि केन्द्रमें हों तो वे सब परस्पर कारक (शुभफलदायक) होते हैं, उनमें दशम स्थानमें रहनेवाला सबसे बढ़कर कारक होता है॥ २७५॥

(शुभजन्मलक्षण—) लग्न या चन्द्रमा वर्गोत्तम नवमांशमें हो या वेशि (सूर्यसे द्वितीय) स्थानमें शुभग्रह हो अथवा केन्द्रोंमें कारक ग्रह हों तो जन्म शुभप्रद होता है। अर्थात् इस स्थितिमें जन्म लेनेवाला बालक सुखी और यशस्वी होता है॥ २७६॥ गुरु, जन्मराशि और जन्म-लग्नेश ये सभी या इनमेंसे एक भी केन्द्रमें हो तो जीवनके मध्यभागमें सुखप्रद होते हैं।* तथा पृष्ठोदय राशिमें रहनेवाला ग्रह वयस्के अन्तमें, द्विस्वभाव राशिस्थ ग्रह वयस्के मध्यमें और शीर्षोदय राशिस्थ ग्रह पूर्ववयस्में अपने-अपने फल देते हैं॥ २७७॥

(ग्रहगोचरफलसमय—) सूर्य और मङ्गल ये दोनों राशिमें प्रवेश करते ही अपने राशि-सम्बन्धी (गोचर) फल देते हैं। शुक्र और बृहस्पति राशिके मध्यमें जानेपर और चन्द्रमा तथा शनि ये दोनों राशिके अन्तिम तृतीयांशमें पहुँचनेपर अपने शुभ या अशुभ गोचर फल देते हैं। तथा बुध सर्वदा (आदि, मध्य, अन्तमें) अपने शुभाशुभ फलको देता है॥ २७८॥

(शुभाशुभ योग—) लग्न या चन्द्रमासे पञ्चम और सप्तम भाव शुभग्रह और अपने स्वामीसे युक्त या दृष्ट हों तो जातकको उन दोनों (पुत्र और स्त्री)-का सुख सुलभ होता है,

*आशय यह है कि पूर्वकेन्द्र (१ लग्न) में हों तो वयस्के आरम्भमें, मध्यकेन्द्र (४, १०)-में हों तो मध्य वयस्क (युवावस्था)में, यदि पश्चिम केन्द्र (७)में हों तो अंतिम वयस्में सुखप्रद होते हैं। इससे सिद्ध है कि जिसके जन्म-समयमें तीन केन्द्रोंमें शुभग्रह हों, वह जीवनपर्यन्त सुखी रहता है।

अन्यथा नहीं। तथा कन्या लग्रमें रवि और मीन लग्रमें शनि हो तो ये दोनों स्त्रीका नाश करनेवाले होते हैं। इसी प्रकार पञ्चम भाव (मेष-वृश्चिकसे अतिरिक्त राशि)– में मङ्गल हो तो पुत्रका नाश करनेवाला होता है। यदि शुक्रसे केन्द्र (१, ४, ७, १०)–में पापग्रह हों अथवा दो पापग्रहोंके बीचमें शुक्र हों, उनपर शुभग्रहका योग या दृष्टि नहीं हो तो उस जातककी स्त्रीका मरण अग्निसे या गिरनेसे होता है। लग्रसे १२, ६ भावोंमें चन्द्रमा और सूर्य हों तो वह स्त्रीसहित* एक नेत्रवाले (काण) पुरुषको जन्म देता है। ऐसा मुनियोंने कहा है। लग्रसे सप्तम या नवम, पञ्चममें शुक्र और सूर्य दोनों हों तो उस जातककी स्त्री विकल (अङ्गहीना) होती है॥ २७९—२८२॥

शनि लग्रमें और शुक्र सप्तम भावमें राशिसन्ध्य (कर्क, वृश्चिक, मीनके अन्तिमांश) में हों तो वह जातक वन्ध्या स्त्रीका पति होता है। यदि पञ्चम भाव शुभग्रहसे युक्त या दृष्ट न हो, लग्रसे १२, ७में और लग्रमें यदि पापग्रह हों तथा पञ्चम भावमें क्षीण चन्द्रमा स्थित हों तो वह पुरुष पुत्र और स्त्रीसे रहित होता है। शनिके वर्ग (राशि-नवांश)–में शुक्र सप्तम भावमें हो और शनिसे दृष्ट हो तो वह जातक परस्त्रीमें आसक्त होता है। यदि वे दोनों (शनि और शुक्र) चन्द्रमाके साथ हों तो वह स्वयं परस्त्रीमें आसक्त और उसकी पली परपुरुषमें आसक्त होती है॥ २८३—२८४ १/२॥

शुक्र और चन्द्रमा दोनों सप्तम भावमें हों तो जातक स्त्रीहीन अथवा पुत्रहीन होता है। पुरुष और स्त्री ग्रह सप्तम भावमें हों और उनपर शुभग्रहोंकी दृष्टि हो तो पति-पत्नी दोनों परिणताङ्ग (परमायुर्दाय भोगकर वृद्धावस्थातक जीनेवाले) होते हैं। दशम, सप्तम और चतुर्थ भावमें क्रमशः चन्द्रमा, शुक्र और पापग्रह हों तो जातक वंशका नाशक होता है। अर्थात् उसका वंश नष्ट हो जाता है। बुध

जिस द्रेष्काणमें हो उसपर यदि केन्द्र-स्थित शनिकी दृष्टि हो तो जातक शिल्पकलामें कुशल होता है। शुक्र यदि शनिके नवमांशमें होकर द्वादश भावमें स्थित हो तो जातक दासीका पुत्र होता है। सूर्य और चन्द्रमा दोनों सप्तम भावमें रहकर शनिसे दृष्ट हों तो जातक नीच स्वभाववाला होता है। शुक्र और मङ्गल दोनों सप्तम भावमें स्थित हों और उनपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो जातक वातरोगी होता है। कर्क या वृश्चिकके नवमांशमें स्थित चन्द्रमा यदि पापग्रहसे युक्त हो तो बालक गुस रोगसे ग्रस्त होता है। चन्द्रमा यदि पापग्रहोंके बीचमें रहकर लग्रमें स्थित हो तो उत्पन्न शिशु कुष्ठरोगी होता है। चन्द्रमा दशम भावमें, मङ्गल सप्तम भावमें और शनि यदि वेशि (सूर्यसे द्वितीय) स्थानमें हो तो जातक विकल (अङ्गहीन) होता है। सूर्य और चन्द्रमा दोनों परस्पर नवमांशमें हों तो बालक शूलरोगी होता है। यदि दोनों किसी एक ही स्थानमें हों तो कृश (क्षीणशरीर) होता है। यदि सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल और शनि—ये चारों क्रमशः ८, ६, २, १२ भावोंमें स्थित हों तो इनमें जो बली हो, उस ग्रहके दोष (कफ, पित्त और वात-सम्बन्धी विकार)–से जातक नेत्रहीन होता है। यदि ९, ११, ३, ५—इन भावोंमें पापग्रह हों तथा उनपर शुभग्रहकी दृष्टि नहीं हो तो वे उत्पन्न शिशुके लिये कर्णरोग उत्पन्न करनेवाले होते हैं। सप्तम भावमें स्थित पापग्रह यदि शुभग्रहसे दृष्ट न हों तो वे दन्तरोग उत्पन्न करते हैं। लग्रमें गुरु और सप्तम भावमें शनि हो तो जातक वातरोगसे पीड़ित होता है। ४ या ७ भावमें मङ्गल और लग्रमें बृहस्पति हो अथवा शनि लग्रमें और मङ्गल ९, ५, ७ भावमें हो अथवा बुधसहित चन्द्रमा १२ भावमें हो तो जातक उन्मादरोगसे पीड़ित होता है॥ २८५—२९३ १/२॥

यदि ५, ९, २ और १२ भावोंमें पापग्रह हों

*सारांश यह कि पुरुष तो काना होता ही है, उसे स्त्री भी कानी ही मिलती है।

तो उस जातकको बन्धन प्राप्त होता है (उसे जेलका कष्ट भोगना पड़ता है)। लग्रमें जैसी राशि हो उसके अनुकूल ही बन्धन समझना चाहिये। (जैसे चतुष्पद राशि लग्र हो तो रस्सीसे बँधकर, द्विपदराशि लग्र हो तो बेड़ीसे बँधकर तथा जलचर राशि लग्र हो तो बिना बन्धनके ही वह जेलमें रहता है।) यदि सर्प, शृङ्खला, पाशसंज्ञक द्रेष्काण लग्रमें हों तथा उनपर बली पापग्रहकी दृष्टि हो तो भी पूर्वोक्त प्रकारसे बन्धन प्राप्त होता है। मण्डल (परिवेष)-युक्त चन्द्रमा यदि शनिसे युक्त और मङ्गलसे देखा जाता हो तो जातक मृगी रोगसे पीड़ित, अप्रियभाषी और क्षयरोगसे युक्त होता है। मण्डल (परिवेष)-युक्त चन्द्रमा यदि दशम भावस्थित सूर्य, शनि और मङ्गलसे दृष्टि हो तो जातक भृत्य (दूसरेका नौकर) होता है; उनमें भी एकसे दृष्टि हो तो श्रेष्ठ दोसे दृष्टि हो तो मध्यम और तीनोंसे दृष्टि हो तो अधम भृत्य होता है॥ २९४—२९६॥

(स्त्रीजातककी विशेषता—) ऊपर कहे हुए पुरुष जातकके जो-जो फल स्त्री-जातकमें सम्भव हों, वे वैसे योगमें उत्पन्न स्त्रीमात्रके लिये समझने चाहिये। जो फल स्त्रीमें असम्भव हों, वे सब उसके पतिमें समझने चाहिये। स्त्रीके स्वामीकी मृत्युका विचार अष्टम भावसे, शरीरके शुभाशुभ फलका विचार लग्र और चन्द्रमासे तथा सौभाग्य और पतिके स्वरूप, गुण आदिका विचार ससम भावसे करना चाहिये॥ २९७३॥ स्त्रीके जन्मसमयमें लग्र और चन्द्रमा दोनों समराशि और सम नवमांशमें हों तो वह स्त्री अपनी प्रकृति (स्त्रीस्वभाव)-से युक्त होती है। यदि उन दोनों (लग्र और चन्द्रमा) पर शुभग्रहकी दृष्टि हो तो वह सुशीलतारूप आभूषणसे विभूषित होती है। यदि वे दोनों (लग्र तथा चन्द्रमा) विषमराशि और विषम नवमांशमें हों तो वह स्त्री पुरुषसदृश

आकार और स्वभाववाली होती है। यदि उन दोनोंपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो स्त्री पापस्वभाववाली और गुणहीना होती है॥ २९८३॥

लग्र और चन्द्रमाके आश्रित मङ्गलकी राशि (मेष-वृश्चिक)-में यदि मङ्गलका त्रिंशांश हो तो वह स्त्री बाल्यावस्थामें ही दुष्ट-स्वभाववाली होती है। शनिका त्रिंशांश हो तो दासी होती है। गुरुका त्रिंशांश हो तो सच्चरित्रा, बुधका त्रिंशांश हो तो मायावती (धूर्त) और शुक्रका त्रिंशांश हो तो वह उतावली होती है। शुक्रराशि (वृष-तुला)-में स्थित लग्र या चन्द्रमामें मङ्गलका त्रिंशांश हो तो नारी बुरे स्वभाववाली, शनिका त्रिंशांश हो तो पुनर्भू* (दूसरा पति करनेवाली), गुरुका त्रिंशांश हो तो गुणवती, बुधका त्रिंशांश हो तो कलाओंको जाननेवाली और शुक्रका त्रिंशांश हो तो लोकमें विख्यात होती है। बुधराशि (मिथुन-कन्या)-में स्थित लग्र या चन्द्रमामें यदि मङ्गलका त्रिंशांश हो तो मायावती, शनिका हो तो हीजड़ी, गुरुका हो तो पतिव्रता, बुधका हो तो गुणवती और शुक्रका हो तो चञ्चला होती है। चन्द्र-राशि (कर्क)-में स्थित लग्र या चन्द्रमामें यदि मङ्गलका त्रिंशांश हो तो नारी स्वेच्छाचारिणी, शनिका हो तो पतिके लिये धातक, गुरुका हो तो गुणवती, बुधका हो तो शिल्पकला जाननेवाली और शुक्रका त्रिंशांश हो तो नीच स्वभाववाली होती है। सिंहराशिस्थ लग्र या चन्द्रमामें यदि मङ्गलका त्रिंशांश हो तो पुरुषके समान आचरण करनेवाली, शनिका हो तो कुलटा स्वभाववाली, गुरुका हो तो रानी, बुधका हो तो पुरुषसदृश बुद्धिवाली और शुक्रका त्रिंशांश हो तो अगम्यगमिनी होती है। गुरुराशि (धनु-मीन)-स्थित लग्र या चन्द्रमामें मङ्गलका त्रिंशांश हो तो नारी गुणवती, शनिका हो तो भोगोंमें अल्प आसक्तिवाली, गुरुका हो तो गुणवती, बुधका हो

*पुनर्भू कहनेसे यह सिद्ध हुआ कि उसका जन्म शुद्धकुलमें होता है; क्योंकि शुद्धजातिमें स्त्रीके पुनर्विवाहकी प्रथा है।

तो ज्ञानवती और शुक्रका त्रिंशांश हो तो पतिव्रता होती है। शनिराशि (मकर-कुम्भ) स्थित लग्न या चन्द्रमामें मङ्गलका त्रिंशांश हो तो स्त्री दासी, शनिका हो तो नीच पुरुषमें आसक्त, गुरुका हो तो पतिव्रता, बुधका हो तो दुष्ट-स्वभाववाली और शुक्रका त्रिंशांश हो तो संतान-हीना होती है। इस प्रकार लग्न और चन्द्राश्रित राशियोंके फल ग्रहोंके बलके अनुसार न्यून या अधिक समझने चाहिये ॥ २९९^१—३०४ ॥

शुक्र और शनि ये दोनों परस्पर नवमांशमें (शुक्रके नवमांशमें शनि और शनिके नवमांशमें शुक्र) हों अथवा शुक्रराशि (वृष-तुला) लग्नमें कुम्भका नवमांश हो तो इन दोनों योगोंमें जन्म लेनेवाली स्त्री कामाग्रिसे संतास हो स्त्रियोंसे भी क्रीड़ा करती है ॥ ३०५ ॥

(पतिभाव—) स्त्रीके जन्मलग्नसे सप्तम भावमें कोई ग्रह नहीं हो तो उसका पति कुत्सित होता है। सप्तम स्थान निर्बल हो और उसपर शुभग्रहकी दृष्टि नहीं हो तो उस स्त्रीका पति नपुंसक होता है। सप्तम स्थानमें बुध और शनि हों तो भी पति नपुंसक होता है। यदि सप्तम भावमें चरराशि हो तो उसका पति परदेशवासी होता है। सप्तम भावमें सूर्य हो तो उस स्त्रीको पति त्याग देता है। मङ्गल हो तो वह स्त्री बालविधवा होती है। शनि सप्तम भावमें पापग्रहसे दृष्ट हो तो वह स्त्री कन्या (अविवाहिता) रहकर ही वृद्धावस्थाको प्राप्त होती है ॥ ३०६—३०७ ॥

यदि सप्तम भावमें एकसे अधिक पापग्रह हो तो भी स्त्री विधवा होती है, शुभ और पाप दोनों हों तो वह पुनर्भू होती है। यदि सप्तम भावमें पापग्रह निर्बल हो और उसपर शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो भी स्त्री अपने पतिद्वारा त्याग दी जाती है, अन्यथा शुभग्रहकी दृष्टि होनेपर वह पतिप्रिया होती है ॥ ३०८ ॥

मङ्गलके नवमांशमें शुक्र और शुक्रके नवमांशमें

मङ्गल हो तो वह स्त्री परपुरुषमें आसक्त होती है। इस योगमें चन्द्रमा यदि सप्तम भावमें हो तो वह अपने पतिकी आज्ञासे कार्य करती है ॥ ३०९ ॥

यदि चन्द्रमा और शुक्रसे संयुक्त शनि एवं मङ्गलकी राशि (मकर, कुम्भ, मेष और वृश्चिक) लग्नमें हों तो वह स्त्री कुलटा-स्वभाववाली होती है। यदि उक्त लग्नपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो वह स्त्री अपनी मातासहित कुलटा-स्वभाववाली होती है। यदि सप्तम भावमें मङ्गलका नवमांश हो और उसपर शनिकी दृष्टि हो तो वह नारी रोगयुक्त योनिवाली होती है। यदि सप्तम भावमें शुभग्रहका नवमांश हो तब तो वह पतिकी प्यारी होती है। शनिकी राशि या नवमांश सप्तम भावमें हो तो उस स्त्रीका पति वृद्ध और मूर्ख होता है। सप्तम भावमें मङ्गलकी राशि या नवमांश हो तो उसका पति स्त्रीलोलुप और क्रोधी होता है। बुधकी राशि या नवमांश हो तो विद्वान् और सब कार्यमें निपुण होता है। गुरुकी राशि या नवमांश हो तो जितेन्द्रिय और गुणी होता है। चन्द्रमाकी राशि या नवमांश हो तो कामी और कोमल होता है। शुक्रकी राशि या नवमांश हो तो भाग्यवान् तथा मनोहर स्वरूपवाला होता है। सूर्यकी राशि या नवमांश सप्तम भावमें हो तो उस स्त्रीका पति अत्यन्त कोमल और अधिक कार्य करनेवाला होता है ॥ ३१०—३१२^१ ॥

शुक्र और चन्द्रमा लग्नमें हों तो वह स्त्री सुख तथा ईर्ष्यावाली होती है। यदि बुध और चन्द्रमा लग्नमें हों तो कलाओंको जाननेवाली तथा सुख और गुणोंसे युक्त होती है। शुक्र और बुध लग्नमें हों तो सौभाग्यवती, कलाओंको जाननेवाली और अत्यन्त सुन्दरी होती है। लग्नमें तीन शुभग्रह हों तो वह अनेक प्रकारके सुख, धन और गुणोंसे युक्त होती है ॥ ३१३—३१४^१ ॥

पापग्रह अष्टम भावमें हो तो वह स्त्री अष्टमेश जिस ग्रहके नवमांशमें हो उस ग्रहके पूर्वकथित बाल्य आदि वयस्में विधवा होती है। यदि

द्वितीय भावमें शुभग्रह हों तो वह स्त्री स्वयं ही स्वामीके सम्मुख मृत्युको प्राप्त होती है। कन्या, वृश्चिक, सिंह या वृष राशिमें चन्द्रमा हो तो स्त्री थोड़ी संततिवाली होती है। यदि शनि मध्यम बली तथा चन्द्रमा, शुक्र और बुध ये तीनों निर्बल हों तथा शेष ग्रह (रवि, मङ्गल और गुरु) सबल होकर विषम राशि-लग्नमें हों तो वह स्त्री कुरूपा होती है॥ ३१५—३१७॥

गुरु, मङ्गल, शुक्र, बुध ये चारों बली होकर समराशि लग्नमें स्थित हों तो वह स्त्री अनेक शास्त्रोंको और ब्रह्मको जाननेवाली तथा लोकमें विख्यात होती है॥ ३१८॥

जिस स्त्रीके जन्मलग्नसे ससममें पापग्रह हो और नवम भावमें कोई ग्रह हो तो स्त्री पूर्वकथित नवमस्थ ग्रहजनित प्रव्रज्याको प्राप्त होती है। इन (कहे हुए) विषयोंका विवाह, वरण या प्रश्नकालमें भी विचार करना चाहिये॥ ३१९॥

(निर्याण (मृत्यु) विचार—) लग्नसे अष्टम भावको जो-जो ग्रह देखते हैं, उनमें जो बलवान् हो उसके धातु (कफ, पित्त या वात)-के प्रकोपसे जातक (स्त्री-पुरुष)-का मरण होता है। अष्टम भावमें जो राशि हो, वह काल पुरुषके जिस अङ्ग (मस्तकादि)-में पड़ती हो; उस अङ्गमें रोग होनेसे जातककी मृत्यु होती है। बहुत ग्रहोंकी दृष्टि या योग हो तो उन-उन ग्रहोंसे सम्बन्ध रखनेवाले रोगोंसे मरण होता है। यथा अष्टममें सूर्य हों तो अग्निसे, चन्द्रमा हों तो जलसे; मङ्गल हों तो शस्त्रघातसे, बुध हों तो ज्वरसे, गुरु हों तो अज्ञात रोगसे, शुक्र हों तो प्याससे और शनि हों तो भूखसे मरण होता है। तथा अष्टम भावमें चर राशि हो तो परदेशमें, स्थिर राशि हो तो स्वस्थानमें और द्विस्वभाव राशि हो तो मार्गमें मृत्यु होती है। सूर्य और मङ्गल यदि १०, ४ भावमें हों तो पर्वत आदि ऊँचे स्थानसे गिरकर मनुष्यकी मृत्यु होती है॥ ३२०—३२२॥

४, ७, १० भावोंमें यदि शनि, चन्द्र, मङ्गल हों तो कूपमें गिरकर मरण होता है। कन्या-राशिमें रवि और चन्द्रमा दोनों हों, उनपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो अपने सम्बन्धीके द्वारा मरण होता है। यदि उभयोदय (मीन) लग्नमें चन्द्रमा और सूर्य दोनों हों तो जलमें मरण होता है। यदि मङ्गलकी राशिमें स्थित चन्द्रमा दो पापग्रहोंके बीचमें हो तो शस्त्र या अग्निसे मृत्यु होती है॥ ३२३-३२४॥

मकरमें चन्द्रमा और कर्कमें शनि हों तो जलोदररोगसे मरण होता है। कन्याराशिमें स्थित चन्द्रमा दो पापग्रहोंके बीचमें हों तो रक्तशोषरोगसे मृत्यु होती है। यदि दो पापग्रहोंके बीचमें स्थित चन्द्रमा, शनिकी राशि (मकर और कुम्भ)-में हों तो रज्जु (रस्सी), अग्नि अथवा ऊँचे स्थानसे गिरकर मृत्यु होती है। ५, ९ भावोंमें पापग्रह हो और उनपर शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो बन्धनसे मृत्यु होती है। अष्टम भावमें पाश, सर्प या निगड़ द्रेष्काण हो तो भी बन्धनसे ही मृत्यु होती है। पापग्रहके साथ बैठा हुआ चन्द्रमा यदि कन्याराशिमें होकर ससम भावमें स्थित हो तथा मेषमें शुक्र और लग्नमें सूर्य हो तो अपने घरमें स्त्रीके निमित्तसे मरण होता है। चतुर्थ भावमें मङ्गल या सूर्य हों, दशम भावमें शनि हो और लग्न, ५, ९ भावोंमें पापग्रहसहित चन्द्रमा हो अथवा चतुर्थ भावमें सूर्य और दशममें मङ्गल रहकर क्षीण चन्द्रमासे दृष्ट हों तो इन योगोंमें काष्ठसे आहत होकर मनुष्यकी मृत्यु होती है। यदि ८, १०, लग्न तथा ४ भावोंमें क्षीण चन्द्रमा, मङ्गल, शनि और सूर्य हों तो लाठीके प्रहारसे मृत्यु होती है। यदि वे ही (क्षीण चन्द्रमा, मङ्गल, शनि तथा सूर्य) १०, ९ लग्न और ५ भावोंमें हों तो मुद्रर आदिके आघातसे मृत्यु होती है। यदि ४, ७, १० भावोंमें क्रमशः मङ्गल, रवि और शनि हों तो शस्त्र, अग्नि तथा राजाके द्वारा मृत्यु होती है। यदि शनि, चन्द्रमा और मङ्गल—ये २, ४, १० भावोंमें हों तो कीड़ोंके

क्षतसे शरीरका पतन (मरण) होता है। यदि दशम भावमें सूर्य और चतुर्थ भावमें मङ्गल हों तो सवारीपरसे गिरनेके कारण मृत्यु होती है। यदि क्षीण चन्द्रमाके साथ मङ्गल सप्तम भावमें हो तो यन्त्र (मशीन)-के आघातसे मृत्यु होती है। यदि मङ्गल, शनि और चन्द्रमा—ये तुला, मेष तथा शनिकी राशि (मकर-कुम्भ)-में हों अथवा क्षीण चन्द्रमा, सूर्य और मङ्गल—ये १०, ७, ४ भावोंमें स्थित हो तो विष्टाके समीप मृत्यु होती है। क्षीण चन्द्रमापर मङ्गलकी दृष्टि हो और शनि सप्तम भावमें हो तो गुह्य (बवासीर आदि)-रोग या कीड़ा, शस्त्र, अग्नि अथवा काष्ठके आघातसे मरण होता है। मङ्गलसहित सूर्य सप्तम भावमें, शनि अष्टममें और क्षीण चन्द्रमा चतुर्थ भावमें हों तो पक्षीद्वारा मरण होता है। यदि लग्न, ५, ८, ९ भावोंमें सूर्य, मङ्गल, शनि और चन्द्रमा हों तो पर्वत-शिखरसे गिरनेके कारण अथवा वज्रपातसे या दीवार गिरनेसे मृत्यु होती है ॥ ३२५—३३५ ॥

लग्नसे २२ वाँ द्रेष्काण अर्थात् अष्टम भावका द्रेष्काण जो हो, उसका स्वामी अथवा अष्टम भावका स्वामी—ये दोनों या इनमेंसे जो बली हो, वह अपने गुणोंसे (पूर्वोक्त अग्निशस्त्राद्वारा) मनुष्यके लिये मरणकारक होता है। लग्नमें जो नवमांश होता है, उसका स्वामी जो ग्रह हो उसके समान स्थान (अर्थात् वह जिस राशिमें हो उस राशिका जैसा स्थान बताया गया है, वैसे स्थान) तथा उसपर जिस ग्रहका योग या दृष्टि हो उसके समान स्थानमें, परदेशमें मनुष्यका मरण होता है तथा लग्नके जितने अंश अनुदित (भोग्य) हों, उन अंशोंमें जितने समय हों^१, उतने समयतक मरणकालमें मोह होता है। यदि उसपर अपने स्वामीकी दृष्टि हो तो उससे द्विगुणित और शुभग्रहकी दृष्टि हो तो उससे त्रिगुणित समयपर्यन्त मोह होता

है। इस विषयकी अन्य बातें अपनी बुद्धिसे विचारकर समझनी चाहिये ॥ ३३६—३३७ ^२ ॥

(शब-परिणाम—) अष्टम स्थानमें जिस प्रकारका द्रेष्काण हो उसके अनुसार देहधारीकी मृत्यु और उसके शबके परिणामपर विचार करना चाहिये। यथा—अग्नि (पापग्रह)-का द्रेष्काण हो तो मृत्युके बाद उसका शब जलाकर भस्म किया जाता है। जल (सौम्य) द्रेष्काण हो तो जलमें फेंका जानेपर वह वहीं गल जाता है। यदि सौम्य द्रेष्काण पापग्रहसे युक्त या पाप द्रेष्काण शुभग्रहसे युक्त हो तो मुर्दा न जलाया जाता है, न जलमें गलाया जाता है, अपितु सूर्यकिरण और हवासे सूख जाता है। यदि सर्प द्रेष्काण^३ अष्टम भावमें हो तो उस मुर्देको गीदड़ और कौए आदि नोंचकर खाते हैं ॥ ३३८ ^४ ॥

(पूर्वजन्मस्थिति—) सूर्य और चन्द्रमामें जो अधिक बलवान् हो, वह जिस द्रेष्काणमें स्थित हो उस द्रेष्काणके स्वामीके अनुसार पूर्वजन्मकी स्थिति समझी जाती है। यथा—उक्त द्रेष्काणका स्वामी गुरु हो तो जातक पूर्वजन्ममें देवलोकमें था। चन्द्रमा या शुक्र द्रेष्काणका स्वामी हो तो वह पितॄलोकमें था। सूर्य या मङ्गल द्रेष्काणका स्वामी हो तो वह जातक पहले जन्ममें भी मर्त्यलोकमें ही था और शनि या बुध हो तो वह पहले नरकलोकमें रहा है—ऐसा समझना चाहिये। यदि उक्त द्रेष्काणका स्वामी अपने उच्चमें हो तो जातक पूर्वजन्ममें देवादि लोकमें श्रेष्ठ था। यदि उच्च और नीचके मध्यमें हो तो उस लोकमें उसकी मध्यम स्थिति थी और यदि अपने नीचमें हो तो वह उस लोकमें निम्रकोटिकी अवस्थामें था—ऐसा उच्च और नीच स्थानके तारतम्यसे समझना चाहिये।

(गति—भावी जन्मकी स्थिति—) षष्ठ और अष्टम भावके द्रेष्काणोंके स्वामीमेंसे जो अधिक

१. ३० अंशोंमें मध्यमानसे दो घंटा (५ घटी) समय होता है; उसी अनुपातसे समय समझना चाहिये।

२. आगे (पृष्ठ ३१६ में) द्रेष्काणके स्वरूप देखिये।

बली हो, मरनेके बाद जातक उसी ग्रहके (पूर्वदर्शित) लोकमें जाता है तथा सप्तम स्थानमें स्थित ग्रह बली हो तो वह अपने लोकमें ले जाता है।

(मोक्षयोग—) यदि बृहस्पति अपने उच्चमें होकर ६, १, ४, ७, ८, १० अथवा १२ में शुभग्रहके नवमांशमें हो और अन्य ग्रह निर्बल हों तो मरण होनेपर मनुष्यका मोक्ष होता है। यह योग जन्म और मरण दोनों कालोंसे देखना चाहिये ॥ ३३९—३४१ २ ॥

(अज्ञात जन्म-समयको जाननेका प्रकार—) जिस व्यक्तिके आधान या जन्मका समय अज्ञात हो, उसके प्रश्न-लग्नसे जन्म-समय समझना चाहिये। प्रश्न-लग्नके पूर्वार्ध (१५ अंशतक)-में उत्तरायण और उत्तरार्ध (१५ अंशके बाद)-में दक्षिणायन जन्मका समय समझना चाहिये। त्र्यंश (द्रेष्काण)

द्वारा क्रमशः लग्न, ५, ९ राशिमें गुरु समझकर फिर प्रश्नकर्ताके वयस्के अनुसार वर्षमानकी कल्पना करनी चाहिये^१। लग्नमें सूर्य हो तो ग्रीष्मऋतु, अन्यथा अन्य ग्रहोंके ऋतुका वर्णन पहले किया जा चुका है। अयन और ऋतुमें भिन्नता हो तो चन्द्रमा, बुध और गुरुकी ऋतुओंके स्थानमें क्रमसे शुक्र, मङ्गल, शनिकी ऋतु परिवर्तित करके समझना चाहिये तथा ऋतु सर्वथा सूर्यकी राशिसे ही (सौरमाससे ही) ग्रहण करनी चाहिये। इस प्रकार अयन और ऋतुके ज्ञान होनेपर लग्नके द्रेष्काणमें पूर्वार्ध हो तो ऋतुका प्रथम मास, उत्तरार्ध हो तो द्वितीय मास समझना चाहिये तथा द्रेष्काणके पूर्वार्ध या उत्तरार्धके भुक्तांशोंसे अनुपात^२ द्वारा तिथि (सूर्यके गत अंशादि) का ज्ञान करना चाहिये ॥ ३४२—३४४ २ ॥

१. अर्थात् लग्नमें प्रथम द्रेष्काण हो तो प्रश्नकर्ताके जन्म-समयमें लग्नराशिमें ही गुरु था, द्वितीय द्रेष्काण हो तो प्रश्नलग्नसे ५वीं राशिमें, तृतीय द्रेष्काण हो तो प्रश्नलग्नसे ९वीं राशिमें जन्मकालीन गुरुकी स्थिति समझे। फिर वर्तमान समयमें गुरुकी राशितक गिनकर वर्ष-संख्या बनावे। इस प्रकार संख्या १२ से कम ही होगी। इतने वर्षका वयस् यदि प्रश्नकर्ताके अनुमानसे ठीक हो तो ठीक माने, नहीं तो उस संख्यामें १२ जोड़ता जाय। जब प्रश्नकर्ताके वयस्के अनुसार वर्ष-संख्याका अनुमान हो जाय तो उस संख्याको वर्तमान संवत्सरमें घटानेसे प्रश्नकर्ताका जन्मसंवत् होगा। उस संवत्सरमें गुरु उस राशिमें मिलेगा ही, चाहे १ वर्ष आगे मिले या पीछे। जहाँ उस राशिमें गुरु मिले, वही प्रश्नकर्ताका जन्म-संवत्सर समझना चाहिये। फिर उक्त रीतिसे अयनका ज्ञान करना चाहिये।

२. अनुपात इस प्रकार है कि ५ अंशकी कला (३००)-में ३० तिथि (अंश) हैं तो भुक्त द्रेष्काणाधार्शकी कलामें क्या होंगी?

इसकी उत्तर-क्रिया नीचे देखिये—

मान लीजिये, किसी अनाथ-बालकको अपने जन्म-समयका ज्ञान नहीं है। उसकी उम्र अनुमानसे ८ या ९ वर्षकी प्रतीत होती है। उसने अपना जन्म-समय जाननेके लिये संवत् २०१० ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा गुरुवारको प्रश्न किया। उस समयकी लग्न-राश्यादि २। १४। ४५ है और बृहस्पति-राश्यादि १। १८। २। ५ (वृष राशिमें) है। यहाँ लग्नमें द्वितीय द्रेष्काण है, अतः लग्न (मिथुन)- से पाँचवीं तुला राशिमें उसके जन्म-समयमें बृहस्पतिकी स्थिति ज्ञात हुई। प्रश्न-समयका बृहस्पति वृषमें है, जो तुलासे ८वीं संख्यामें है, इसलिये गत वर्ष-संख्या ७ हुई, इससे ज्ञात हुआ कि आजसे ७, १९ तथा ३१ इत्यादि वर्ष पूर्व बृहस्पतिकी तुलामें स्थिति हो सकती है, क्योंकि बृहस्पति एक राशिमें एक वर्ष रहता है। परंतु इन (७, १९, ३१) संख्याओंमें ७ संख्या ही प्रश्नकर्ताकी उम्रके समीप होनेके कारण आजसे ७ वर्ष पूर्व जन्म-समय स्थिर हुआ। इसलिये प्रश्न-संवत् २०१० में ७ घटानेसे शेष २००३ जन्मका संवत् निश्चित हुआ। उस संवत्सरके पञ्चाङ्गको देखा तो तुलामें बृहस्पतिकी स्थिति ज्ञात हुई। राशिके पूर्वार्धमें प्रश्नलग्न है, अतः जन्मका समय उत्तरायण सिद्ध हुआ। तथा प्रश्नलग्नमें शुक्रका द्रेष्काण है, अतः वसन्त-ऋतु होनेका निश्चय हुआ। प्रश्नकालमें द्वितीय द्रेष्काणका पूर्वार्ध होनेके कारण वसन्त-ऋतुका प्रथम मास (सौर चैत्र) जन्मका मास निश्चित हुआ।

(दिन-रात्रि जन्म-ज्ञान—) प्रश्न लग्नमें दिनसंज्ञक, रात्रि-संज्ञक राशियाँ हों तो विलोमक्रमसे (दिनसंज्ञक राशिमें रात्रि और रात्रिसंज्ञक राशिमें दिन) जन्मका समय समझना चाहिये और लग्नके अंशादिसे अनुपात^१ द्वारा इष्टघट्यादिको समझना चाहिये।

(जन्म-लग्नज्ञान—) केवल जन्म-लग्न जाननेके लिये प्रश्नकर्ता प्रश्न करे तो लग्नसे (१, ५, ९में) जो राशि बली हो, वही उसका जन्म-लग्न समझना चाहिये अथवा वह जिस अङ्गका स्पर्श करते हुए प्रश्न करे, उस अङ्गकी राशिको ही जन्म-लग्न कहना चाहिये।

(जन्म-राशि-ज्ञान—) जन्म-राशि जाननेके लिये प्रश्न करे तो प्रश्न-लग्नसे जितने आगे चन्द्रमा हो, चन्द्रमासे उतने ही आगे जो राशि हो वह पूछनेवालेकी जन्मराशि समझनी चाहिये ॥ ३४५-३४६ ॥

(प्रकारान्तरसे अज्ञात जन्मकालादिका ज्ञान—) प्रश्नलग्नमें वृष्य या सिंह हो तो लग्नराश्यादिको कलात्मक बनाकर १० से गुणा करे। मिथुन या वृश्चिक हो तो ८ से, मेष या तुला हो तो ७ से,

फिर प्रश्नलग्नस्थ द्रेष्काणके गतांशादि ४ । ४५ । ० की कला २८५ को ३० से गुणा कर गुणनफल ८५५० में ३०० का भाग देनेसे लब्ध २८ । ३० यह मीनमें सूर्यके भुक्तांश हुए। अतः मेषसे ११ वर्षी राशि जोड़नेपर जन्मकालका स्पष्ट सूर्य ११ । २८ । ३० हुआ। यह चैत्र शुक्ला ११ शुक्रवारको मिलता है, अतः प्रश्नकर्ताका वही जन्म-मास और संवत् निश्चित हुआ।

अब इष्टकाल जाननेके लिये उस दिन उदयकालिक स्पष्ट सूर्य-राश्यादि ११ । २८ । १५ । २० तथा सूर्यकी गति ५८ । ४५ है तो निश्चित किये हुए जन्मकालिक सूर्य ११ । २८ । ३० । ० और उदयकालिक सूर्य ११ । २८ । १५ । २० के अन्तर १४ । ४० कलाको ६० से गुणा कर गुणनफल ८८० में सूर्यकी गति ५८ । ४५ का भाग देनेपर लब्ध घट्यादि १४ । ५९ हुई। यह जन्म सूर्यसे अधिक होनेके कारण उदयकालके बादका इष्टकाल हुआ। इसके द्वारा तात्कालिक अन्य ग्रह और लग्नादि द्वादश भावोंका साधन करके जन्म-पत्र बनता है, वह नष्ट जन्म-पत्र कहलाता है, उससे भी असली जन्म-पत्रके समान ही फल घटित होता है।

१. यहाँ अनुपात ऐसा है कि ३० अंशमें दिनमान या रात्रिमानकी घटी तो लग्न भुक्तांशमें क्या?

२. ९ जोड़ने-घटानेका नियम यह है कि प्रश्नलग्नमें प्रथम द्रेष्काण हो तो ९ जोड़कर, तीसरा द्रेष्काण हो तो ९ घटाकर तथा मध्य द्रेष्काण हो तो यथाप्राप्त नक्षत्र ग्रहण करे।

३. यथा—गुणनफलमें १२० का भाग देकर शेष तुल्य वर्ष तथा इसी गुणनफलमें ६ का भाग देकर शेषके अनुसार शिशिरादि ऋतु जाने एवं मास जानना हो तो गुणनफलमें १२ से भाग देकर शेष तुल्य चैत्रादि मास समझे। यदि ऋतुज्ञान होनेपर मास जानना हो तो उक्त गुणनफलमें दोसे भाग देकर एक शेषमें प्रथम और दो शेषमें द्वितीय मास समझे।

मकर या कन्या हो तो ५ से गुणा करे। शेष राशियों (कर्क, धनु, कुम्भ, मीन)—मेंसे कोई लग्न हो तो उसकी कलाको अपनी संख्यासे (जैसे कर्कको ४ से) गुणा करे। यदि लग्नमें ग्रह हो तो फिर उसी गुणनफलको ग्रहगुणकोंसे भी गुणा करे। जैसे—बृहस्पति हो तो १० से, मङ्गल हो तो ८ से, शुक्र हो तो ७ से, बुध हो तो ५ से, अन्य ग्रह (रवि, शनि और चन्द्रमा) हो तो ५ से गुणा करे। इस प्रकार लग्नकी राशिके अनुसार गुणन तो निश्चित ही रहता है। यदि उसमें ग्रह हो तभी ग्रहका गुणन भी करना चाहिये। जितने ग्रह हों, सबके गुणकसे गुणा करना चाहिये इस प्रकार गुणनफलको ध्रुवपिण्ड मानकर उसको ७ से गुणाकर २७ के द्वारा भाग देकर १ आदि शेषके अनुसार अश्विनी आदि जन्म-नक्षत्र समझने चाहिये। इस प्रणालीमें विशेषता यह है कि उक्त रीतिसे आयी हुई संख्यामें कभी ९ जोड़कर और कभी ९ घटाकर नक्षत्र लिया जाता है^२ तथा उक्त ध्रुवपिण्डको १० से गुणा करके गुणनफलसे वर्ष, ऋतु और मास समझें। पक्ष और तिथि जाननी हो तो ध्रुवपिण्डको ८ से गुणा करके २ से भाग देकर

एक शेष हो तो शुक्लपक्ष और दो शेष हो तो कृष्णपक्ष समझे। इसमें भी ९ जोड़ या घटाकर ग्रहण करना चाहिये। अर्थात् गुणनफलमें ९ जोड़ या ९ घटाकर भाग देना चाहिये। इसी प्रकार पक्षज्ञान होनेपर गुणनफलमें ही १५ से भाग देकर शेषके अनुसार प्रतिपदा आदि तिथि समझे तथा अहोरात्र जानना हो तो ध्रुवपिण्डको ७ से गुणा करके दोसे भाग देकर एक शेष हो तो दिन और दो शेष हो तो रात्रि समझे। लग्न-नवांश, इष्ट-घड़ी तथा होरा जानना हो तो ध्रुवपिण्डको ५ से गुणा करके अपने-अपने विकल्पसे (अर्थात् लग्न जाननेके लिये १२से, इष्ट घड़ी^१ जाननेके लिये ६० से (अथवा दिन या रात्रिका ज्ञान होनेपर दिनमान या रात्रिमान-घटीसे), नवमांशके लिये ९ से तथा होराके लिये २ से भाग देकर शेषद्वारा सबका ज्ञान करना चाहिये। इस प्रकार जिनके जन्म-समय आदिका ज्ञान न हो उनके लिये इन सब बातोंका विचार करना चाहिये॥ ३४७—३५०॥

(द्रेष्काणका स्वरूप—) हाथमें फरसा लिये हुए काले रंगका पुरुष, जिसकी आँखें लाल हों और जो सब जीवोंकी रक्षा करनेमें समर्थ हो,

मेषके प्रथम द्रेष्काणका स्वरूप है। प्याससे पीड़ित एक पैरसे चलनेवाला, घोड़ेके समान मुख, लाल वस्त्रधारी और घड़ेके समान आकार—यह मेषके द्वितीय द्रेष्काणका स्वरूप है। कपिलवर्ण, क्रूरदृष्टि, क्रूरस्वभाव, लाल वस्त्रधारी और अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग करनेवाला—यह मेषके तृतीय द्रेष्काणका स्वरूप है। भूख और प्याससे पीड़ित, कटे-छैटे घुँघराले केश तथा दूधके समान धवल वस्त्र—यह वृषके प्रथम द्रेष्काणका स्वरूप है। मलिनशरीर, भूखसे पीड़ित, बकरेके समान मुख और कृषि आदि कार्योंमें कुशल—यह वृषके दूसरे द्रेष्काणका रूप है। हाथीके समान विशालकाय, शरभ^२के समान पैर, पिङ्गल वर्ण और व्याकुल चित्त—यह वृषके तीसरे द्रेष्काणका स्वरूप है। सुईसे सीने-पिरोनेका काम करनेवाली, रूपवती, सुशीला तथा संतानहीना नारी, जिसने हाथको ऊपर उठा रखा है, मिथुनका प्रथम द्रेष्काण है। कवच और धनुष धारण किये हुए उपवनमें क्रीड़ा करनेकी इच्छासे उपस्थित गरुडसदृश मुखवाला पुरुष मिथुनका दूसरा द्रेष्काण है। नृत्य आदिकी कलामें प्रवीण, वरुणके समान रलोंके अनन्त भण्डारसे भरा-पूरा,

१. जैसे—संवत् २०१० चैत्र शुक्ला ५ गुरुवारको अनुमानतः ३० वर्षकी अवस्थावाले किसी पुरुषने अपना अज्ञात जन्म-समय जाननेके लिये प्रश्न किया। उस समयकी लग्न-(वृष) राश्यादि १।५।२९ है और लग्नमें कोई ग्रह नहीं है तो लग्न-राश्यादिकी २१२९ कलाको वृषलग्नके गुणकाङ्क्ष १० से गुणा करनेपर २१२९० यह ध्रुवपिण्ड हुआ। लग्नमें कोई ग्रह नहीं है, अतः दूसरा गुणक नहीं प्राप्त हुआ। अब प्रश्नकर्ताकी गत वर्ष-संख्या जाननेके लिये ध्रुवपिण्डको फिर १० से गुणा करके गुणनफल २१२९०० में १२० का भाग देनेसे शेष २० वर्ष-संख्या हुई; परंतु यह संख्या अनुमानसे कुछ न्यून है, अतः लग्नमें प्रथम द्रेष्काण होनेके कारण आगत शेषमें ९ जोड़नेसे २९ हुआ। यही सम्भावित वर्ष होनेके कारण प्रश्नकर्ताकी जन्मसे गत वर्ष हुए। इस संख्याको वर्तमान संवत् २०१० में घटानेपर शेष १९८१ यह प्रश्नकर्ताका जन्म-संवत् हुआ। पुनः मास जाननेके लिये दशगुणित ध्रुवपिण्डमें ९ जोड़ा गया तो २१२९०९ हुआ। इसमें १२ का भाग देनेसे शेष ५ रहा। अतः चैत्रसे पाँचवाँ श्रावण जन्म-मास हुआ। पक्ष जाननेके लिये ध्रुवपिण्ड २१२९० को ८ से गुणा कर गुणनफल १७०३२० में ९ जोड़कर २ का भाग देनेसे १ शेष रहनेके कारण शुक्लपक्ष हुआ। तिथि जाननेके लिये उसी अष्टगुणित एवं नवयुत ध्रुवपिण्ड १७०३२९ में १५ का भाग देनेपर शेष ८ रहा, अतः चतुर्थी तिथि हुई। इष्ट घड़ी जाननेके लिये ध्रुवपिण्ड २१२९० को ५ से गुणाकर गुणनफलमें ९ जोड़कर योगफल १०६४५९ में ६० का भाग देनेपर शेष १९ रहा। वही इष्ट घड़ी हुई। इस प्रकार संवत् १९८१ श्रावण शुक्ला ४ की गतघटी १९ (घड़ी बीतनेपर) प्रश्नकर्ताका जन्म-समय निश्चित हुआ।

२. पुराणोंमें शरभके आठ पैर कहे गये हैं और उसे व्याघ्र-सिंहसे भी अधिक बलिष्ठ एवं भयङ्कर बताया गया है; परंतु यह अब कहीं उपलब्ध नहीं होता। शरभका दूसरा अर्थ कैंट भी है।

धनुर्धर वीर पुरुष मिथुनका तीसरा द्रेष्काण है। गणेशजीके समान कण्ठ, शूकरके सदृश मुख, शरभके-से पैर और वनमें रहनेवाला—यह कर्कके प्रथम द्रेष्काणका रूप है। सिरपर सर्प धारण किये, पलाशकी शाखा पकड़कर रोती हुई कर्कशा स्त्री—यह कर्कके दूसरे द्रेष्काणका स्वरूप है। चिपटा मुख, सर्पसे वेष्टित, स्त्रीकी खोजमें नौकापर बैठकर जलमें यात्रा करनेवाला पुरुष—यह कर्कके तीसरे द्रेष्काणका रूप है॥ ३५१—३५६॥ सेमलके वृक्षके नीचे गीदड़ और गीधको लेकर रोता हुआ कुत्ते-जैसा मनुष्य—यह सिंहके प्रथम द्रेष्काणका स्वरूप है। धनुष और कृष्ण मृगचर्म धारण किये, सिंह-सदृश पराक्रमी तथा घोड़ेके समान आकृतिवाला मनुष्य—यह सिंहके दूसरे द्रेष्काणका स्वरूप है। फल और भोज्यपदार्थ रखनेवाला, लंबी दाढ़ीसे सुशोभित, भालू-जैसा मुख और वानरोंके-से चपल स्वभाववाला मनुष्य—सिंहके तृतीय द्रेष्काणका रूप है। फूलसे भरे कलशवाली, विद्याभिलाषिणी, मलिन वस्त्रधारिणी कुमारी कन्या—यह कन्या राशिके प्रथम द्रेष्काणका स्वरूप है। हाथमें धनुष, आय-व्ययका हिसाब रखनेवाला, श्याम-वर्ण शरीर, लेखनकार्यमें चतुर तथा रोएँसे भरा मनुष्य—यह कन्या राशिके दूसरे द्रेष्काणका स्वरूप है। गोरे अङ्गोंपर धुले हुए स्वच्छ वस्त्र, ऊँचा कद, हाथमें कलश लेकर देवमन्दिरकी ओर जाती हुई स्त्री—यह कन्या राशिके तीसरे द्रेष्काणका परिचय है॥ ३५७—३५९॥ हाथमें तराजू और बटखरे लिये बाजारमें वस्तुएँ तौलनेवाला तथा बर्तन-भाँड़ोंकी कीमत कूतनेवाला पुरुष तुलाराशिका प्रथम द्रेष्काण है। हाथमें कलश लिये भूख-प्याससे व्याकुल तथा गीधके समान मुखवाला पुरुष, जो स्त्री-पुत्रके साथ विचरता है, तुलाका दूसरा द्रेष्काण है। हाथमें धनुष लिये हरिनका पीछा करनेवाला, किन्नरके समान चेष्टवाला, सुवर्णकवचधारी पुरुष तुलाका तृतीय द्रेष्काण है। एक नारी, जिसके पैर

नाना प्रकारके सर्प लिपटे होनेसे श्वेत दिखायी देते हैं, समुद्रसे किनारेकी ओर जा रही है, यही वृश्चिकके प्रथम द्रेष्काणका रूप है। जिसके सब अङ्ग सर्पोंसे ढके हैं और आकृति कछुएके समान है तथा जो स्वामीके लिये सुखकी इच्छा करनेवाली है; ऐसी स्त्री वृश्चिकका दूसरा द्रेष्काण है। मलयगिरिका निवासी सिंह, मुखाकृति कछुए-जैसी है, कुत्ते, शूकर और हरिन आदिको डरा रहा है, वही वृश्चिकका तीसरा द्रेष्काण है॥ ३६०—३६२॥ मनुष्यके समान मुख, घोड़े-जैसा शरीर, हाथमें धनुष लेकर तपस्वी और यज्ञोंकी रक्षा करनेवाला पुरुष धनुराशिका द्रेष्काण है। चम्पापुष्यके समान कान्तिवाली, आसनपर बैठी हुई, समुद्रके रत्नोंको बढ़ानेवाली, मझोले कदकी स्त्री धनुका दूसरा द्रेष्काण है। दाढ़ी-मूँछ बढ़ाये, आसनपर बैठा हुआ, चम्पापुष्यके सदृश कान्तिमान्, दण्ड, पट्ट-वस्त्र और मृगचर्म धारण करनेवाला पुरुष धनुका तीसरा द्रेष्काण है। मगरके समान दाँत, रोएँसे भरा शरीर तथा सूअर-जैसी आकृतिवाला पुरुष मकरका प्रथम द्रेष्काण है। कमलदलके समान नेत्रोंवाली, आभूषण-प्रिया श्यामा स्त्री मकरका दूसरा द्रेष्काण है। हाथमें धनुष, कम्बल, कलश और कवच धारण करनेवाला किन्नरके समान पुरुष मकरका तीसरा द्रेष्काण है॥ ३६३—३६६॥ गीधके समान मुख, तेल, धी और मधु पीनेकी इच्छावाला, कम्बलधारी पुरुष कुम्भका प्रथम द्रेष्काण है। हाथमें लोहा, शरीरमें आभूषण तथा मस्तकपर भाँड़ (बर्तन) लिये मलिन वस्त्र पहनकर जली गाड़ीपर बैठी हुई स्त्री कुम्भका दूसरा द्रेष्काण है। कानमें बड़े-बड़े रोम, शरीरमें श्याम कान्ति, मस्तकपर किन्नीट तथा हाथमें फल-पत्र धारण करनेवाला बर्तनका व्यापारी कुम्भका तीसरा द्रेष्काण है। भूषण बनानेके लिये नाना प्रकारके रत्नोंको हाथमें लेकर समुद्रमें नौकापर बैठा हुआ पुरुष मीनका प्रथम द्रेष्काण है। जिसके मुखकी कान्ति चम्पाके

पुष्पके सदृश मनोहर है, वह अपने परिवारके साथ नौकापर बैठकर समुद्रके बीचसे तटकी ओर आती हुई स्त्री मीनका दूसरा द्रेष्काण है। गड़के समीप तथा चोर और अग्निसे पीड़ित होकर रोता हुआ, सर्पसे वेष्टित, नग्न शरीरवाला पुरुष मीन राशिका तीसरा द्रेष्काण है। इस प्रकार मेषादि

बारहों राशियोंमें होनेवाले छत्तीस द्रेष्काणांशके रूप क्रमसे बताये गये हैं। मुनिश्रेष्ठ नारद! यह संक्षेपमें जातक नामक स्कन्ध कहा गया है। अब लोक-व्यवहारके लिये उपयोगी संहितास्कन्धका वर्णन सुनो— ॥ ३६७—३७० ॥

(पूर्वभाग द्वितीय पाद अध्याय ५५)

त्रिस्कन्ध ज्यौतिषका संहिताप्रकरण (विविध उपयोगी विषयोंका वर्णन)

सनन्दनजी बोले—नारदजी! चैत्रादि मासोंमें क्रमशः मेषादि राशियोंमें सूर्यकी संक्रान्ति होती है*। चैत्र शुक्ल प्रतिपदाके आरम्भमें जो वार (दिन) हो, वही ग्रह उस (चान्द्र) वर्षका राजा होता है। सूर्यके मेषराशि-प्रवेशके समय जो वार हो, वह सेनापति (या मन्त्री) होता है। कर्क राशिकी संक्रान्तिके समय जो वार हो, वह सस्य (धान्य)-का अधिपति होता है। उक्त वर्ष आदिका अधिपति यदि सूर्य हो तो वह मध्यम (शुभ और अशुभ दोनों) फल देता है। चन्द्रमा हो तो उत्तम फल देता है। मङ्गल अधिपति हो तो अनिष्ट (अशुभ) फल देनेवाला होता है। बुध, गुरु और शुक्र—ये तीनों अति उत्तम (शुभ) फलकी प्राप्ति करानेवाले होते हैं। शनि अधिपति हो तो अशुभ फल होता है। इन ग्रहोंके बलाबल देखकर तदनुसार इनके न्यून या पूर्ण फल समझने चाहिये ॥ १—३ ॥

(धूमकेतु—पुच्छलतारा आदिके फल—) यदि कदाचित् कहींसे सूर्य-मण्डलमें दण्ड (लाठी), कबन्ध (मस्तकहीन शरीर) कौआ या कीलके आकारवाले केतु (चिह्न) देखनेमें आवे, तो वहाँ व्याधि, भ्रान्ति तथा चोरोंके उपद्रवसे धनका नाश होता है। छत्र, ध्वज, पताका या सजल मेघखण्ड-सदृश अथवा स्फुलिङ्ग (अग्निकण)—सहित धूम

सूर्यमण्डलमें दीख पड़े, तो उस देशका नाश होता है। शुक्ल, लाल, पीला अथवा काला सूर्यमण्डल दीखनेमें आवे, तो क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णोंको पीड़ा होती है। मुनिवर! यदि दो, तीन या चार प्रकारके रंग सूर्यमण्डलमें दीख पड़ें, तो राजाओंका नाश होता है। यदि सूर्यकी ऊर्ध्वगामिनी किरण लाल रंगकी दीख पड़े, तो सेनापतिका नाश होता है। यदि उसका पीला वर्ण हो तो राजकुमारका, श्वेत वर्ण हो तो राजपुरोहितका तथा उसके अनेक वर्ण हों तो प्रजाजनोंका नाश होता है। इसी तरह धूम्र वर्ण हो तो राजाका और पिशङ्क (कपिल) वर्ण हो तो मेघका नाश होता है। यदि सूर्यकी उक्त किरणें नीचेकी ओर हों, तो संसारका नाश होता है ॥ ४—७ २ ॥

सूर्य शिशिर-ऋतु (माघ-फाल्गुन)-में ताँबेके समान (लाल) दीख पड़े, तो संसारके लिये शुभ (कल्याणकारी) होता है। ऐसे ही वसन्त (चैत्र-वैशाख)-में कुंकुमवर्ण, ग्रीष्ममें पाण्डु (श्वेत-पीत-मिश्रित)-वर्ण, वर्षामें अनेक वर्ण, शरद-ऋतुमें कमलवर्ण तथा हेमन्तमें रक्तवर्णका सूर्यविम्ब दिखायी दे तो उसे शुभप्रद समझना चाहिये। मुनिश्रेष्ठ नारद! यदि शीतकालमें (अगहनसे फाल्गुनतक) सूर्यका बिम्ब पीला, वर्षामें (श्रावणसे कार्तिकतक) श्वेत (उजला) तथा ग्रीष्ममें (चैत्रसे आषाढ़तक)

*जैसे मेषमें सूर्यके रहते जो अमावास्या होती है, वहाँ चैत्रकी समाप्ति समझी जाती है एवं वृषादिके सूर्यमें वैशाखादि मास समझना चाहिये।

लाल रंगका दीख पड़े तो क्रमसे रोग, अवर्षण तथा भय उपस्थित करनेवाला होता है। यदि कदाचित् सूर्यका आधा विम्ब इन्द्रधनुषके सदृश दीख पड़े तो राजाओंमें परस्पर विरोध बढ़ता है। खरगोशके रक्तके सदृश सूर्यका वर्ण हो तो शीघ्र ही राजाओंमें महायुद्ध प्रारम्भ होता है। यदि सूर्यका वर्ण मोरकी पाँखके समान हो तो वहाँ बाहर वर्षोंतक वर्षा नहीं होती है। यदि सूर्य कभी चन्द्रमाके समान दिखायी दे तो वहाँके राजाको जीतकर दूसरा राजा राज्य करता है। यदि सूर्य श्याम रंगका दीख पड़े तो कीड़ोंका भय होता है। भस्म समान दीख पड़े तो समूचे राज्यपर भय उपस्थित होता है और यदि सूर्यमण्डलमें छिद्र दिखायी दे तो वहाँके सबसे बड़े सम्राट्की मृत्यु होती है। कलशके समान आकारवाला सूर्य देशमें भूखमरीका भय उपस्थित करता है। तोरण-सदृश आकारवाला सूर्य ग्राम तथा नगरोंका नाशक होता है। छत्राकार सूर्य उदित हो तो देशका नाश और सूर्य-बिम्ब खण्डित दीख पड़े तो राजाका नाश होता है॥ ८—१४॥

यदि सूर्योदय या सूर्यास्तके समय बिजलीकी गड़गड़ाहट और वज्रपात एवं उल्कापात हो तो राजाका नाश या राजाओंमें परस्पर युद्ध होता है। यदि पंद्रह या साढ़े सात दिनतक दिनमें सूर्यपर तथा रातमें चन्द्रमापर परिवेष (मण्डल) हो अथवा उदय और अस्त-समयमें वह अत्यन्त रक्तवर्णका दिखायी दे तो राजाका परिवर्तन होता है॥ १५—१६॥ उदय या अस्तके समय यदि सूर्य शस्त्रके समान आकारवाले या गदहे, ऊँट आदिके सदृश अशुभ आकारवाले मेघसे खण्डित-सा प्रतीत हो तो राजाओंमें युद्ध होता है॥ १७॥

(चन्द्रशृङ्गोन्नति-फल—) मीन तथा मेष राशिमें यदि (द्वितीया-तिथिको उदयकालमें) चन्द्रमाका दक्षिण शृङ्ग उन्नत (ऊपर उठा) हो तो वह शुभप्रद होता है। मिथुन और मकरमें यदि उत्तर शृङ्ग उन्नत हो तो उसे श्रेष्ठ समझना चाहिये। कुम्भ और वृषभमें यदि दोनों शृङ्ग सम हों तो शुभ है। कर्क और धनुमें यदि शृङ्ग शरसदृश हो तो शुभ है। वृश्चिक और सिंहमें भी धनुष-सदृश हो तो शुभ है तथा तुला और कन्यामें यदि चन्द्रमाका शृङ्ग शूलके सदृश दीख पड़े तो शुभ फल समझना चाहिये। इससे विपरीत स्थितिमें चन्द्रमाका उदय हो तो उस मासमें पृथ्वीपर दुर्धिक्ष, राजाओंमें परस्पर विरोध तथा युद्ध आदि अशुभ फल प्रकट होते हैं॥ १८—१९॥

पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, मूल और ज्येष्ठा—इन नक्षत्रोंमें चन्द्रमा यदि दक्षिण दिशामें हो^१ तो जलचर, वनचर और सर्पका नाश तथा अग्निका भय होता है। विशाखा और अनुराधामें यदि दक्षिणभागमें हो तो पापफल देनेवाला होता है। मघा और विशाखामें यदि चन्द्रमा मध्यभागमें होकर चले तो भी सौम्य (शुभ)-प्रद होता है। रेखीसे मृगशिरपर्यन्त ६ नक्षत्र 'अनागत', आर्द्रासे अनुराधापर्यन्त बारह नक्षत्र 'मध्ययोगी' और वासव (ज्येष्ठा) से नौ नक्षत्र 'गतयोगी' हैं। इनमें भी चन्द्रमा उत्तर भागमें रहनेपर शुभप्रद होता है॥ २०—२२॥

भरणी, ज्येष्ठा, आश्लेषा, आर्द्रा, शतभिषा और स्वाती ये अर्धभोग (४०० कला), ध्रुव (तीनों उत्तरा, रोहिणी), पुनर्वसु और विशाखा—ये सार्धेकभोग (१२०० कला) तथा अन्य नक्षत्र सम (पूर्ण) भोग (८०० कला) हैं^२। साधारणतया चन्द्रमाकी दक्षिण शृङ्गोन्नति अशुभ और उत्तर

१. दिशाका ज्ञान तात्कालिक शरके ज्ञानसे होता है। इसकी विधि पृष्ठ २३६ में देखिये।

२. राशि-मण्डलमें सब नक्षत्रोंका भोग ८०० कलाके बराबर है। परंतु प्रत्येक नक्षत्रविभागमें योगताराका स्थान जहाँ पड़ता है, वहाँ उसका भोग-स्थान कहलाता है। वह छः नक्षत्रोंमें मध्यभागमें पड़ता है और छः नक्षत्रोंमें आगे बढ़ जाता है। जिसका वास्तविक मान क्रमसे ३९५ कला १७ विकला और ११८५ कला ५२ विकला है, जो स्वल्पान्तरसे

शृङ्गोन्नति शुभप्रद है। तिथिके अनुसार चन्द्रमामें शुक्ल न होकर यदि शुक्लतामें हानि (कमी) हो तो प्रजाके कार्योंमें हानि और शुक्लतामें वृद्धि (अधिकता) हो तो प्रजाजनकी वृद्धि होती है*। समतामें समता समझनी चाहिये। यदि चन्द्रमाका विम्ब मध्यम मानसे विशाल (बड़ा) देखनेमें आवे तो सुधिक्षकारक (सस्ती लानेवाला) और छोटा दीख पड़े तो दुर्धिक्षकारक (महँगी या अकाल लानेवाला) होता है। चन्द्रमाका शृङ्ग अधोमुख हो तो शास्त्रका भय लाता है। दण्डाकार हो तो कलह (राजा-प्रजामें युद्ध) होता है। चन्द्रमाका शृङ्ग अथवा विम्ब मङ्गलादि ग्रहों (मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि)-से आहत (भेदित) दीख पड़े तो क्रमशः क्षेम, अन्नादि, वर्षा, राजा और प्रजाका नाश होता है॥ २३—२६ १/२॥

(भौम-चार-फल—) जिस नक्षत्रमें मङ्गलका उदय हो, उससे सातवें, आठवें या नवें नक्षत्रमें वक्र हो तो वह 'उष्ण' नामक वक्र होता है। उसमें प्रजाको पीड़ा और अग्निका भय प्राप्त होता है। यदि उदयके नक्षत्रसे दसवें, ग्यारहवें तथा बारहवें नक्षत्रमें मङ्गल वक्र हो तो वह 'अश्वमुख' नामक वक्र होता है। उसमें अन्न और वर्षाका नाश होता है। यदि तेरहवें या चौदहवें नक्षत्रमें वक्र हो तो 'व्यालमुख' वक्र कहलाता है। उसमें भी अन्न और वर्षाका नाश होता है। पंद्रहवें या सोलहवें नक्षत्रमें वक्र हो तो 'रुधिरमुख' वक्र कहलाता है। उसमें मङ्गल दुर्धिक्ष, क्षुधा तथा रोगको बढ़ाता है। सत्रहवें या अद्वारहवें नक्षत्रमें वक्र हो तो वह 'मुसल' नामक वक्र होता है। उससे धन-धान्यका नाश तथा दुर्धिक्षका भय होता है। यदि मङ्गल पूर्वाफाल्युनी या उत्तराफाल्युनी

४०० और १२०० मान लिये गये हैं। क्रमशः इन्हें ही 'अनागत' और 'गतयोगी' कहा गया है। शेष नक्षत्रोंके भोगस्थान अन्तिमांशमें ही पड़ते हैं; अतः इनके मान ८०० कला हैं। ये ही मध्ययोगी हैं।

*प्रतिपदाके अन्तमें (शुक्ल-द्वितीयारम्भमें) चन्द्रमा दृश्य हो तो समता, उससे पश्चात् दृश्य हो तो हानि और पूर्व दृश्य हो तो वृद्धि समझी जाती है।

नक्षत्रमें उदित होकर उत्तराषाढ़में वक्र हो तथा रोहिणीमें अस्त हो तो तीनों लोकोंके लिये नाशकारी होता है। यदि मङ्गल श्रवणमें उदित होकर पुष्यमें वक्रगति हो तो धनकी हानि करनेवाला होता है॥ २७—३३॥

मङ्गल जिस दिशामें उदित होता है, उस दिशाके राजाके लिये भयकारक होता है। यदि मधा-नक्षत्रके मध्य होकर चलता हुआ मङ्गल उसीमें वक्र हो जाय तो अवर्षण (वर्षाका अभाव) और शास्त्रका भय लाता है तथा राजाके लिये विनाशकारी होता है। यदि मङ्गल मधा, विशाखा या रोहिणीके योगताराका भेदन करके चले तो दुर्धिक्ष, मरण तथा रोग लानेवाला होता है। उत्तराफाल्युनी, उत्तराषाढ़, उत्तर भाद्रपद, रोहिणी, मूल, श्रवण और मृगशिरा—इन नक्षत्रोंके बीचमें तथा रोहिणीके दक्षिण होकर मङ्गल चले तो अनावृष्टिकारक होता है। मङ्गल सब नक्षत्रोंके उत्तर होकर चले तो शुभप्रद है और दक्षिण होकर चले तो अशुभ फल देनेवाला तथा प्रजामें कलह उत्पन्न करनेवाला होता है॥ ३४—३७ १/२॥

(बुध-चार-फल—) यदि कदाचित् आँधी, मेघ आदि उत्पात न होनेपर (शुद्ध आकाशमें) भी बुधका उदय देखनेमें न आवे तो अनावृष्टि, अग्निभय, अनर्थ और राजाओंमें युद्धकी सम्भावना समझनी चाहिये। धनिष्ठा, श्रवण, उत्तराषाढ़, मृगशिरा और रोहिणीमें चलता हुआ बुध यदि उन नक्षत्रोंके योगताराओंका भेदन करे तो वह लोकमें बाधा और अनावृष्टि आदिके द्वारा भयकारी होता है। यदि आद्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा और मधा—इन नक्षत्रोंमें बुध दृश्य हो तो दुर्धिक्ष, कलह, रोग तथा अनावृष्टि आदिका भय उपस्थित करनेवाला

होता है। हस्तसे छः (हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा तथा ज्येष्ठा) नक्षत्रोंमें बुधके रहनेसे लोकमें कल्याण, सुभिक्ष तथा आरोग्य होता है। उत्तर भाद्रपद, उत्तराफाल्युनी, कृत्तिका और भरणीमें विचरनेवाला बुध वैद्य, घोड़े और व्यापारियोंका नाश करनेवाला होता है। पूर्वफाल्युनी, पूर्वाषाढ़ और पूर्व भाद्रपदमें विचरता हुआ बुध यदि इन नक्षत्रोंके योगताराओंका भेदन करे तो क्षुधा, शस्त्र, अग्नि और चोरोंसे प्राणियोंको भय प्राप्त होता है॥ ३८—४३ १/२॥

भरणी, कृत्तिका, रोहिणी और स्वाती—इन नक्षत्रोंमें बुधकी गति ‘प्राकृतिकी’ कही गयी है। आर्द्रा, मृगशिरा, आश्लेषा और मघा—इन नक्षत्रोंमें बुधकी गति ‘मिश्रा’ मानी गयी है। पूर्वफाल्युनी, उत्तराफाल्युनी, पुष्य और पुनर्वसु—इनमें बुधकी ‘संक्षिप्ता’ गति कही गयी। पूर्व भाद्रपद, उत्तर भाद्रपद, रेवती और अश्विनी—इनमें बुधकी ‘तीक्ष्णा’ गति होती है। उत्तराषाढ़, पूर्वाषाढ़ और मूलमें उनकी ‘योगान्तिका’ गति मानी गयी है। श्रवण, चित्रा, धनिष्ठा और शतभिषामें ‘घोरा’ गति और विशाखा, अनुराधा तथा हस्त—इन नक्षत्रोंमें बुधकी ‘पाप’ संज्ञक गति होती है। इन प्राकृत आदि सात प्रकारकी गतियोंमें उदित होनेपर जितने दिनतक बुध दृश्य रहता है, उतने ही दिन उनमें अस्त होनेपर अदृश्य रहता है। उन दिनोंकी संख्या क्रमसे ४०, ३०, २२, १८, ९, १५ और ११ है। बुध जब प्राकृत गतिमें रहता है, तब संसारमें कल्याण, आरोग्य और सुभिक्ष (अन्न-वस्त्र आदिकी वृद्धि)

करता है। मिश्र और संक्षिप्त गतिमें मध्यम फल देता है तथा अन्य गतियोंमें अनावृष्टि (दुर्भिक्ष)-कारक होता है। वैशाख, श्रावण, पौष और आषाढ़में उदित होनेपर बुध पापरूप फल देता है और अन्य मासोंमें उदित होनेपर वह शुभ फल देता है। आश्विन और कार्तिकमें बुधका उदय हो तो शस्त्र, दुर्भिक्ष और अग्निका भय प्राप्त होता है। यदि उदित हुए बुधकी कान्ति चाँदी अथवा स्फटिकके समान स्वच्छ हो तो वह श्रेष्ठ फल देनेवाला होता है॥ ४४—५२॥

(बृहस्पति-चार-फल—) कृत्तिका आदि दो-दो नक्षत्रोंके आश्रयसे कार्तिक आदि मास होते हैं; परंतु अन्तिम (आश्विन), पञ्चम (फाल्युन) और एकादश (भाद्रपद)—ये तीन नक्षत्रोंसे पूर्ण होते हैं*। इसी प्रकार बृहस्पतिका जिन नक्षत्रोंमें उदय होता है, उन नक्षत्रोंसे (मासके अनुसार ही) संवत्सरोंके नाम होते हैं। उन संवत्सरोंमें कार्तिक और मार्गशीर्ष नामक संवत्सर प्राणियोंके लिये अशुभ फलदायक होते हैं। पौष और माघ नामक संवत्सर शुभ फल देनेवाले होते हैं। फाल्युन और चैत्र नामक संवत्सर मध्यम (शुभ-अशुभ दोनों) फल देते हैं। वैशाख शुभप्रद और ज्येष्ठ मध्यम फल देनेवाला होता है। आषाढ़ मध्यम और श्रावण श्रेष्ठ होता है तथा भाद्रपद भी कभी श्रेष्ठ होता है और कभी नहीं होता; परंतु आश्विन संवत्सर तो प्रजाजनोंके लिये अत्यन्त श्रेष्ठ होता है। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार संवत्सरोंका फल समझना चाहिये॥ ५३—५५ १/२॥

*कृत्तिका आदि नक्षत्रोंमें पूर्णिमा होनेसे मासोंके कार्तिक आदि नाम होते हैं। नीचे चक्रमें देखिये—

कार्तिक	मार्गशीर्ष	पौष	माघ	फाल्युन	चैत्र	वैशाख	ज्येष्ठ	आषाढ़	श्रावण	भाद्रपद	आश्विन
कृत्तिका	मृगशिरा	पुनर्वसु	आश्लेषा	पूर्वफाल्युनी	चित्रा	विशाखा	ज्येष्ठा	पूर्वाषाढ़	श्रवण	शतभिषा	रेवती
रोहिणी	आर्द्रा	पुष्य	मघा	उत्तराफाल्युनी हस्त	स्वाती	अनुराधा	मूल	उत्तराषाढ़	धनिष्ठा	पूर्व भाद्रपद	अश्विनी उत्तर भाद्रपद
२	२	२	२	३	२	२	२	२	२	३	३

बृहस्पति जब नक्षत्रोंके उत्तर होकर चलता है, तब संसारमें कल्याण, आरोग्य तथा सुभिक्ष करनेवाला होता है। जब नक्षत्रोंके दक्षिण होकर चलता है, तब विपरीत परिणाम (अशुभ, रोगवृद्धि तथा दुर्भिक्ष) उपस्थित करता है तथा जब मध्य होकर चलता है, उस समय मध्यम फल प्रस्तुत करता है। गुरुका विम्ब यदि पीतवर्ण, अग्निसदृश, श्याम, हरित और लाल दिखायी दे तो प्रजाजनोंमें क्रमशः व्याधि, अग्नि, चोर, शस्त्र और अस्त्र^१का भय उपस्थित होता है। यदि गुरुका वर्ण धूएँके समान हो तो वह अनावृष्टिकारक होता है। यदि गुरु दिनमें (प्रातः-सायं छोड़कर) दृश्य हो तो राजाका नाश, रोगभय अथवा राष्ट्रका विनाश होता है। कृत्तिका तथा रोहिणी ये संवत्सरके शरीर हैं। पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ ये दोनों नाभि हैं, आद्रा हृदय और मघा संवत्सरका पुष्प है। यदि शरीर पापग्रहसे पीड़ित हो तो दुर्भिक्ष, अग्नि और वायुका भय उपस्थित होता है। नाभि पापग्रहसे युक्त हो तो क्षुधा और तृष्णासे पीड़ा होती है। पुष्प पापग्रहसे आक्रान्त हो तो मूल और फलोंका नाश होता है। यदि हृदय-नक्षत्र पापग्रहसे पीड़ित हो तो अन्नादिका नाश होता है। शरीर आदि शुभग्रहसे संयुक्त हों तो सुभिक्ष और कल्याणादि शुभ फल प्राप्त होते हैं॥५६—६१॥ यदि मघा आदि नक्षत्रोंमें बृहस्पति हो तो वह क्रमशः शस्य-वृद्धि, प्रजामें आरोग्य, युद्ध, अनावृष्टि, द्विजातियोंको पीड़ा, गौओंको

सुख, राजाओंको सुख, स्त्री-समाजको सुख, वायुका अवरोध, अनावृष्टि, सर्पभय, सुवृष्टि, स्वास्थ्य, उत्सववृद्धि, महार्घ, सम्पत्तिकी वृद्धि, देशका नाश, अतिवृष्टि, निर्वैरता, रोग-वृद्धि, भयकी हानि, रोगभय, अन्नकी वृद्धि, वर्षा, रोगकी वृद्धि, धान्यकी वृद्धि और अनावृष्टिरूप फल देता है॥६२—६४॥

(शुक्र-चार-फल—) शुक्रके तीन मार्ग हैं—सौम्य (उत्तरा), मध्य और याम्य (दक्षिण)। इनमेंसे प्रत्येकमें तीन-तीन वीथियाँ हैं और एक-एक वीथीमें बारी-बारीसे तीन-तीन नक्षत्र आते हैं। इन नक्षत्रोंको अश्विनीसे आरम्भ करके जानना चाहिये। इस प्रकार उत्तरसे दक्षिणतक शुक्रके मार्गमें क्रमशः नाग, इभ, ऐरावत, वृष, उष्ण, खर, मृग, अज तथा दहन—ये नौ वीथियाँ हैं॥६५—६६॥ उत्तरमार्गकी तीन वीथियोंमें विचरण करनेवाला शुक्र धान्य, धन, वृष्टि और शस्य (अन्नकी फसल)—इन सब वस्तुओंको पुष्ट एवं परिपूर्ण करता है। मध्यमार्गकी जो तीन वीथियाँ हैं, उनमें शुक्रके जानेसे सब अशुभ ही फल प्राप्त होते हैं। मघासे पाँच नक्षत्रोंमें जब शुक्र जाता है तो पूर्व दिशामें उठा हुआ मेघ सुवृष्टिकारक तथा शुभप्रद होता है। स्वातीसे तीन नक्षत्रतक जब शुक्र रहता है तब पश्चिम दिशा (देश)-में मेघ सुवृष्टिकारक और शुभदायक होता है। शेष सब नक्षत्रोंमें उसका फल विपरीत (अनावृष्टि और दुर्भिक्ष करनेवाला) होता है। शुक्र जब बुधके

१. जो हाथमें धारण किये हुए ही चलाया जाता है, वह शस्त्र है; जैसे तलवार आदि; तथा जो हाथसे फेंककर चलाया जाता है, वह अस्त्र कहलाता है, जैसे बाण और बंदूककी गोली आदि।

२. शुक्रके ३ मार्ग और ९ वीथियाँ इस प्रकार हैं—

क्र.	सौम्य १		मध्यम २					याम्य ३		
क्र.	अश्विनी	रोहिणी	पुनर्वसु	मघा	हस्त	विशाखा	मूल	श्रवण	पूर्व भाद्रपद	
	भरणी	मृगशिरा	पुष्प	पूर्वाफाल्युनी	चित्रा	अनुराधा	पूर्वाषाढ़	धनिष्ठा	उत्तर भाद्रपद	
	कृत्तिका	आद्रा	आश्लेषा	उत्तराफाल्युनी	स्वाती	ज्येष्ठा	उत्तराषाढ़	शतभिषा	रेवती	
क्र.	१	२	३	४	५	६	७	८	९	
	नाग	इभ	ऐरावत	वृष	उष्ण	खर	मृग	अज	दहन	

साथ रहता है तो सुवृष्टिकारक होता है। कृष्णपक्षकी अष्टमी, चतुर्दशी और अमावास्यामें यदि शुक्रका उदय या अस्त हो तो पृथ्वी जलसे परिपूर्ण होती है। गुरु और शुक्र परस्पर सप्तम राशिमें हों तथा एक पूर्व वीथीमें और दूसरा पश्चिम वीथीमें विद्यमान हो तो वे दोनों देशमें अनावृष्टि तथा दुर्भिक्ष लानेवाले और राजाओंमें परस्पर युद्ध करनेवाले होते हैं। मङ्गल, बुध, गुरु और शनि यदि शुक्रसे आगे होते हैं तो युद्ध, अतिवायु, दुर्भिक्ष और अनावृष्टि करनेवाले होते हैं॥६७—७२॥ पूर्वाषाढ़, अनुराधा, उत्तराफाल्युनी, आश्लेषा, ज्येष्ठा—इन नक्षत्रोंमें शुक्र हो तो वह सुभिक्षकारक होता है। मूलमें हो तो शस्त्रभय और अनावृष्टि देनेवाला होता है। उत्तर भाद्रपद और रेतीमें शुक्रके रहनेपर भय प्राप्त होता है॥७३॥

(शनि-चार-फल—) श्रवण, स्वाती, हस्त, आर्द्रा, भरणी और पूर्वाफाल्युनी—इन नक्षत्रोंमें विचरनेवाला शनि मनुष्योंके लिये सुभिक्ष, आरोग्य तथा खेतीकी उपज बढ़ानेवाला होता है॥७४॥ जन्मनक्षत्रसे प्रारम्भ करके मनुष्याकृति शनि-चक्रके मुखमें एक, गुदामें दो, सिरमें तीन, नेत्रोंमें दो, हृदयमें पाँच, बायें हाथमें चार, बायें पैरमें तीन, दक्षिण पादमें तीन तथा दक्षिण हाथमें चार—इस तरह नक्षत्रोंकी स्थापना करे। शनिका वर्तमान नक्षत्र जिस अङ्गमें पड़े, उसका फल निप्रलिखितरूपसे जानना चाहिये। शनि-नक्षत्र मुखमें हो तो रोग, गुदामें हो तो लाभ, सिरमें हो तो हानि, नेत्रमें हो तो लाभ, हृदयमें हो तो सुख, बायें हाथमें हो तो बन्धन, बायें पैरमें हो तो परिश्रम, दाहिने पैरमें हो तो श्रेष्ठ यात्रा और दाहिने हाथमें हो तो धन-लाभ होता है। इस प्रकार क्रमशः फल कहे गये हैं॥७५—७७॥ बहुधा वक्रगामी होनेपर शनि इन फलोंकी प्राप्ति

कराता ही है। यदि वह सम मार्गपर हो तो फल भी मध्यम होता है और यदि वह शीघ्रगति हो तो उत्तम फल प्राप्त होते हैं॥७८॥

(राहु-चार-फल—) भगवान् विष्णुने अपने चक्रसे राहुका मस्तक काट दिया तो भी अमृत पी लेनेके कारण उसकी मृत्यु नहीं हुई; अतः उसे ग्रहके पदपर प्रतिष्ठित कर लिया गया॥७९॥ वह ब्रह्माजीके वरसे सम्पूर्ण पर्वों (पूर्णिमा और अमावास्या)— के समय चन्द्रमा और सूर्यको पीड़ा देता है; किंतु 'शर' तथा 'अवनति' अधिक होनेके कारण वह उन दोनोंसे दूर ही रहता है॥८०॥ एक सूर्यग्रहणके बाद दूसरे सूर्यग्रहणका तथा एक चन्द्रग्रहणके बाद दूसरे चन्द्रग्रहणका विचार छः मासपर पुनः कर लेना चाहिये। प्रति छः मासपर क्रमशः ब्रह्मादि सात देवता पर्वेश (ग्रहणके अधिपति) होते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—ब्रह्मा, चन्द्रमा, इन्द्र, कुबेर, वरुण, अग्नि तथा यम। ब्राह्मपर्वमें ग्रहण होनेपर पशु, धान्य और द्विजोंकी वृद्धि होती है॥८१-८२॥ चन्द्रपर्वमें ग्रहण हो तो भी ऐसा ही फल होता है; विशेषता इतनी ही है कि लोगोंको कफसे पीड़ा होती है। इन्द्रपर्वमें ग्रहण होनेपर राजाओंमें विरोध, जगत्‌में दुःख तथा खेती-बारीका नाश होता है। वारुणपर्वमें ग्रहण होनेपर राजाओंका अकल्याण और प्रजाजनोंका कल्याण होता है॥८३-८४॥ अग्निपर्वमें ग्रहण हो तो वृष्टि, धान्यवृद्धि तथा कल्याणकी प्राप्ति होती है और यमपर्वमें ग्रहण होनेपर वर्षाका अभाव, खेतीकी हानि तथा दुर्भिक्षरूप फल प्राप्त होते हैं॥८५॥ वेलाहीन समयमें अर्थात् वेलासे पहले ग्रहण हो तो खेतीकी हानि तथा राजाओंको दारुण भय प्राप्त होता है और 'अतिवेल' कालमें अर्थात् वेला बिताकर ग्रहण हो* तो फूलोंकी हानि होती है, जगत्‌में भय होता है और खेती

*गणितसे ग्रहणका जो समय प्राप्त होता हो उससे पहले ग्रहण होना 'वेलाहीन' है और उसे बिताकर जो ग्रहण होता है, वह 'अतिवेल' कहलाता है।

चौपट हो जाती है ॥ ८६ ॥ जब एक ही मासमें चन्द्रमा-सूर्य—दोनोंका ग्रहण हो तो राजाओंमें विरोध होता है तथा धन और वृष्टिका विनाश होता है ॥ ८७ ॥ ग्रहण लगे हुए चन्द्रमा और सूर्यका उदय अथवा अस्त हो तो वे राजाओं और धान्योंका विनाश करनेवाले होते हैं। यदि चन्द्रमा और सूर्यका सर्वग्रास ग्रहण हो तो वे भूखमरी, रोग तथा अग्निका भय उपस्थित करनेवाले होते हैं ॥ ८८ ॥ उत्तरायणमें ग्रहण हो तो ब्राह्मणों और क्षत्रियोंकी हानि होती है तथा दक्षिणायनमें ग्रहण होनेपर अन्य वर्णके लोगोंको हानि पहुँचती है। सूर्य या चन्द्रमाके विम्बके उत्तर, पूर्व आदि भागमें यदि राहुका दर्शन हो (स्पर्श देखनेमें आवे) तो वह क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंको हानि पहुँचाता है ॥ ८९ ॥ इसी तरह ग्रहणके समय ग्रासके और मोक्षके भी दस-दस भेद होते हैं; जिनकी सूक्ष्म गतिको देवता भी नहीं जान सकते, फिर साधारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ॥ ९० ॥ गणितद्वारा ग्रहोंको लाकर उनके 'चार' (गतिमान, स्पर्श और मोक्ष कालकी स्थिति)-पर विचार करना चाहिये। जिससे उन ग्रहोंद्वारा ग्रहणकालके शुभ और अशुभ लक्षण (फल)-को हम देख और जान सकें ॥ ९१ ॥ अतः बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि उस समयका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये अनुसंधान करे। धूम-केतु आदि तारोंका उदय और अस्त मनुष्योंके लिये उत्पातरूप होता है ॥ ९२ ॥ वे उत्पात दिव्य, भौम और अन्तरिक्ष भेदसे तीन प्रकारके हैं। वे शुभ और अशुभ दोनों प्रकारके फल देनेवाले हैं। आकाशमें यज्ञकी ध्वजा, अस्त्र-शस्त्र, भवन और बड़े हाथीके सदृश तथा खंभा, त्रिशूल और अंकुश—इन वस्तुओंके समान जो केतु दिखायी देते हैं, उन्हें 'आन्तरिक्ष' उत्पात कहते हैं। साधारण ताराके समान उदित होकर किसी नक्षत्रके साथ केतु हो तो 'दिव्य' उत्पात कहा गया है। भूलोकसे सम्बन्ध रखनेवाले (भूकम्प

आदि) उत्पातोंको 'भौम' उत्पात कहते हैं ॥ ९३-९४ ॥ केतुतारा एक होकर भी प्राणियोंको अशुभ फल देनेके लिये भिन्न-भिन्न रूप धारण करता है। जितने दिनोंतक आकाशमें विविधरूपधारी केतु देखनेमें आता है, उतने ही मास या सौर वर्षोंतक वह अपना शुभाशुभ फल देता है। जो दिव्य केतु हैं, वे सदा प्राणियोंको विविध फल देनेवाले होते हैं ॥ ९५-९६ ॥ हस्त, चिकना और प्रसन्न (स्वच्छ) श्वेत रङ्गका केतु सुवृष्टि देता है। शीघ्र अस्त होनेवाला विशाल केतु अवृष्टि देता है ॥ ९७ ॥ इन्द्रधनुषके समान कान्तिवाला धूमकेतु तारा अनिष्ट फल देता है। दो, तीन या चार रूपोंमें प्रकट त्रिशूलके समान आकारवाला केतु राष्ट्रका विनाशक होता है ॥ ९८ ॥ पूर्व तथा पश्चिम दिशामें सूर्य-सम्बन्धी केतु मणि, हार एवं सुवर्णके समान देदीप्यमान दिखायी दे तो उन दिशाओंके राजाओंकी हानि होती है ॥ ९९ ॥ पलाश, विम्बफल, रक्त और तोतेकी चोंच आदिके समान वर्णका केतु अग्निकोणमें उदित हो तो शुभ फल देनेवाला होता है ॥ १०० ॥ भूमिसम्बन्धी केतुओंकी कान्ति जल एवं तेलके समान होती है। वे भूखमरीका भय देनेवाले हैं। चन्द्रजनित केतुओंका वर्ण श्वेत होता है। वे सुभिक्ष और कल्याण प्रदान करनेवाले होते हैं ॥ १०१ ॥ ब्रह्मदण्डसे उत्पन्न तथा तीन रंग और तीन अवस्थाओंसे युक्त धूमकेतु नामक पितामहजनित (आन्तरिक्ष) केतु प्रजाओंका विनाश करनेवाला माना गया है ॥ १०२ ॥ यदि ईशानकोणमें श्वेतवर्णके शुक्रजनित केतु उदित हों तो वे अनिष्ट फल देनेवाले होते हैं। शिखारहित एवं कनकनामसे प्रसिद्ध शनैश्चरसम्बन्धी केतु भी अनिष्ट फलदायक हैं ॥ १०३ ॥ गुरुसम्बन्धी केतुओंकी विकच संज्ञा है। वे दक्षिण दिशामें प्रकट होनेपर भी अभीष्ट साधक माने गये हैं। उसी दिशामें सूक्ष्म तथा शुक्लवर्णवाले बुधसम्बन्धी केतु हों तो वे चोर तथा रोगका भय प्रदान करनेवाले हैं ॥ १०४ ॥

कंकुमनामसे प्रसिद्ध मङ्गल-सम्बन्धी केतु लाल रंगके होते हैं। उनकी आकृति सूर्यके समान होती है। वे भी उक्त दिशामें उदित होनेपर अनिष्टदायक होते हैं। अग्निके समान कान्तिवाले अग्निसम्बन्धी केतु विश्वरूप नामसे प्रसिद्ध हैं। वे अग्निकोणमें उदित होनेपर सुखद होते हैं ॥ १०५ ॥ श्याम वर्णवाले सूर्यसम्बन्धी केतु अरुण कहलाते हैं। वे पाप अर्थात् दुःख देनेवाले होते हैं। रीछके समान रंगवाले शुक्रसम्बन्धी केतु शुभदायक होते हैं ॥ १०६ ॥ कृत्तिका तारामें उदित हुआ धूमकेतु निश्चय ही प्रजाजनोंका नाश करता है। राजमहल, वृक्ष और पर्वतपर प्रकट हुआ केतु राजाओंका नाश करनेवाला होता है ॥ १०७ ॥ कुमुद पुष्पके समान वर्णवाला कौमुद नामक केतु सुभिक्ष लानेवाला होता है। संध्याकालमें मस्तकसहित उदित हुआ गोलाकार केतु अनिष्ट फल देनेवाला होता है ॥ १०८ ॥

(कालमान—) ब्राह्म, दैव, मानव, पित्र्य, सौर, सावन, चान्द्र, नाक्षत्र तथा बार्हस्पत्य—ये नौ मान होते हैं ॥ १०९ ॥ इस लोकमें इन नौ मानोंमेंसे पाँचके ही द्वारा व्यवहार होता है। किंतु उन नवों मानोंका व्यवहारके अनुसार पृथक्-पृथक् कार्य बताया जायगा ॥ ११० ॥ सौर मानसे ग्रहोंकी सब प्रकारकी गति (भगणादि) जाननी चाहिये। वर्षाका समय तथा स्त्रीके प्रसवका समय सावन मानसे ही ग्रहण किया जाता है ॥ १११ ॥ वर्षोंके भीतरका घटीमान आदि नाक्षत्र मानसे ही लिया जाता है। यज्ञोपवीत, मुण्डन, तिथि एवं वर्षेशका निर्णय तथा पर्व, उपवास आदिका निश्चय चान्द्र मानसे किया जाता है। बार्हस्पत्य मानसे प्रभवादि संवत्सरका स्वरूप ग्रहण किया जाता है ॥ ११२-११३ ॥ उन-उन मानोंके अनुसार बारह महीनोंका उनका अपना-अपना विभिन्न वर्ष होता है। बृहस्पतिकी अपनी मध्यम गतिसे प्रभव आदि नामवाले साठ संवत्सर

होते हैं ॥ ११४ ॥ प्रभव, विभव, शुक्ल, प्रमोद, प्रजापति, अङ्गिरा, श्रीमुख, भाव, युवा, धाता, ईश्वर, बहुधान्य, प्रमाथी, विक्रम, वृष, चित्रभानु, सुभानु, तारण, पार्थिव, व्यय, सर्वजित्, सर्वधारी, विरोधी, विकृत, खर, नन्दन, विजय, जय, मन्मथ, दुर्मुख, हेमलम्ब, विलम्ब, विकारी, शर्वरी, प्लव, शुभकृत्, शोभन, क्रोधी, विश्वावसु, पराभव, प्लवङ्ग, कीलक, सौम्य, समान, विरोधकृत्, परिभावी, प्रमादी, आनन्द, राक्षस, अनल, पिङ्गल, कालयुक्त, सिद्धार्थ, रौद्र, दुर्मति, दुन्दुभि, रुधिरोदारी, रक्ताक्ष, क्रोधन तथा क्षय—ये साठ संवत्सर जानने चाहिये। ये सभी अपने नामके अनुरूप फल देनेवाले हैं। पाँच वर्षोंका युग होता है। इस तरह साठ संवत्सरोंमें बारह युग होते हैं ॥ ११५—१२१ ॥ उन युगोंके स्वामी क्रमशः इस प्रकार जानने चाहिये—विष्णु, बृहस्पति, इन्द्र, लोहित, त्वष्टा, अहिर्बुध्य, पितर, विश्वेदेव, चन्द्रमा, इन्द्राग्नि, अश्विनीकुमार तथा भग। इसी प्रकार युगके भीतर जो पाँच वर्ष होते हैं, उनके स्वामी क्रमशः अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, ब्रह्मा और शिव हैं ॥ १२२-१२३ ॥

संवत्सरके राजा, मन्त्री तथा धान्येशरूप ग्रहोंके बलाबलका विचार करके तथा उनकी तात्कालिक स्थितिको भी भलीभाँति जानकर संवत्सरका फल समझना चाहिये ॥ १२४ ॥ मकरादि छः राशियोंमें छः मासतक सूर्यके भोगसे सौम्यायन (उत्तरायण) होता है। वह देवताओंका दिन और कर्कादि छः राशियोंमें छः मासतक सूर्यके भोगसे दक्षिणायन होता है, वह देवताओंकी रात्रि है ॥ १२५ ॥ गृहप्रवेश, विवाह, प्रतिष्ठा तथा यज्ञोपवीत आदि शुभकर्म माघ आदि उत्तरायणके मासोंमें करने चाहिये ॥ १२६ ॥ दक्षिणायनमें उक्त कार्य गर्हित (त्याज्य) माना गया है, अत्यन्त आवश्यकता हो तो उस समय पूजा आदि यत्न करनेसे शुभ होता है*। माघसे

* 'मार्गशीर्षमपीच्छन्ति विवाहे केऽपि कोविदाः।'

'कुछ विद्वान् अगहनमें भी विवाह होना ठीक मानते हैं' इस मान्यताके अनुसार 'अगहन' में दक्षिणायन होनेपर भी विवाह हो सकता है।

दो-दो मासोंकी शिशिरादि छः ऋतुएँ होती हैं ॥ १२७ ॥ मकरसे दो-दो राशियोंमें सूर्यभोगके अनुसार क्रमशः शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म—ये तीन ऋतुएँ उत्तरायणमें होती हैं और कर्कसे दो-दो राशियोंमें सूर्यभोगके अनुसार क्रमशः वर्षा, शरद् और हेमन्त—ये तीन ऋतुएँ दक्षिणायनमें होती हैं ॥ १२८ ॥ शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे अमावास्यातक 'चान्द्र मास' होता है। सूर्यकी एक संक्रान्तिसे दूसरी संक्रान्तिक 'सौर मास' होता है। तीस दिनोंका एक 'सावन मास' होता है और चन्द्रमाद्वारा सब नक्षत्रोंके उपभोगमें जितने दिन लगते हैं, उतने अर्थात् २७ दिनोंका एक 'नाक्षत्र मास' होता है ॥ १२९ ॥ मधु, माधव, शुक्र, शुचि, नभः, नभस्य, इष, उर्ज, सहाः, सहस्य, तप और तपस्य—ये चैत्रादि बारह मासोंकी संज्ञाएँ हैं। जिस मासकी पौर्णमासी जिस नक्षत्रसे युक्त हो, उस नक्षत्रके नामसे ही उस मासका नामकरण होता है। (जैसे जिस मासकी पूर्णिमा चित्रा नक्षत्रसे युक्त होती है, उस मासका नाम 'चैत्र' होता है और वह पौर्णमासी भी उसी नामसे विख्यात होती है, जैसे चैत्री, वैशाखी आदि।) प्रत्येक मासके दो पक्ष क्रमशः देवपक्ष और पितृपक्ष हैं, अन्य विद्वान् उन्हें शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष कहते हैं ॥ १३०—१३२ ॥ वे दोनों पक्ष शुभाशुभ कार्योंमें सदा उपयुक्त माने जाते हैं। ब्रह्मा, अग्नि, विरञ्जि, विष्णु, गौरी, गणेश, यम, सर्प, चन्द्रमा, कार्तिकेय, सूर्य, इन्द्र, महेन्द्र, वासव, नाग, दुर्गा, दण्डधर, शिव, विष्णु, हरि, रवि, काम, शंकर, कलाधर, यम, चन्द्रमा (विष्णु, काम और शिव)—ये सब शुक्ल प्रतिपदासे लेकर क्रमशः उनतीस तिथियोंके स्वामी होते हैं। अमावास्या नामक तिथिके स्वामी पितर माने गये हैं।

(तिथियोंकी नन्दादि पाँच संज्ञा—) प्रतिपदा आदि तिथियोंकी क्रमशः नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता

और पूर्णा—ये पाँच संज्ञाएँ मानी गयी हैं। पंद्रह तिथियोंमें इनकी तीन आवृत्ति करके इनका पृथक्-पृथक् ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। शुक्लपक्षमें प्रथम आवृत्तिकी (१, २, ३, ४, ५—ये) तिथियाँ अधम द्वितीय आवृत्तिकी (६, ७, ८, ९, १०—ये) तिथियाँ मध्यम और तृतीय आवृत्तिकी (११, १२, १३, १४, १५—ये) तिथियाँ शुभ होती हैं। इसी प्रकार कृष्णपक्षकी प्रथम आवृत्तिकी नन्दादि तिथियाँ इष्ट (शुभ), द्वितीय आवृत्तिकी मध्यम और तृतीय आवृत्तिकी अनिष्टप्रद (अधम) होती हैं। दोनों पक्षोंकी ८, १२, ६, ४, ९, १४—ये तिथियाँ पक्षरन्ध्र कही गयी हैं। इन्हें अत्यन्त रुक्ष कहा गया है। इनमें क्रमशः आरम्भकी ४, १४, ९, १९, २५ और ५ घड़ियाँ सब शुभ कार्योंमें त्याग देने योग्य हैं। अमावास्या और नवमीको छोड़कर अन्य सब विषम तिथियाँ (३, ५, ७, ११, १३) सब कार्योंमें प्रशस्त हैं। शुक्लपक्षकी प्रतिपदा मध्यम है (कृष्ण पक्षकी प्रतिपदा शुभ है)।

षष्ठीमें तैल, अष्टमीमें मांस* चतुर्दशीमें क्षौर एवं पूर्णिमा और अमावास्यामें स्त्रीका सेवन त्याग दे। अमावास्या, षष्ठी, प्रतिपदा, द्वादशी, सभी पर्व और नवमी—इन तिथियोंमें कभी दातौन नहीं करना चाहिये। व्यतीपात, संक्रान्ति, एकादशी, पर्व, रवि और मङ्गलवार तथा षष्ठी तिथि और वैधृति-योगमें अभ्यञ्जन (उबटन)-का निषेध है। जो मनुष्य दशमी तिथिमें आँवलेसे स्नान करता है, उसको पुत्रकी हानि उठानी पड़ती है। त्रयोदशीको आँवलेसे स्नान करनेपर धनका नाश होता है और द्वितीयाको उससे स्नान करनेवालोंके धन और पुत्र दोनोंका नाश होता है। इसमें संशय नहीं है। अमावास्या, नवमी और सप्तमी—इन तीन तिथियोंमें आँवलेसे स्नान करनेवालोंके कुलका विनाश होता है ॥ १३३—१४४ ॥

जो पूर्णिमा दिनमें पूर्ण चन्द्रमासे युक्त हो

*मांस तो सबके लिये सदा ही त्याज्य है, किंतु जो मांसाहारी हैं उन्हें भी अष्टमीको तो मांस त्याग ही देना चाहिये।

(अर्थात् जिसमें रात्रिके समय चन्द्रमा कलाहीन हो) वह पूर्णिमा 'अनुमती' कहलाती है और जो रात्रिमें पूर्ण चन्द्रमासे युक्त हो वह 'राका' कहलाती है। इसी प्रकार अमावास्या भी दो प्रकारकी होती है। जिसमें चन्द्रमाकी किंचित् कलाका अंश शेष रहता है, वह 'सिनीवाली' कही गयी है तथा जिसमें चन्द्रमाकी सम्पूर्ण कला लुप्त हो जाती है, वह अमावास्या 'कुहू' कहलाती है॥ १४५-१४६॥

(युगादि तिथियाँ—) कार्तिक शुक्लपक्षकी नवमी सत्ययुगकी आदि तिथि है (इसी दिन सत्ययुगका प्रारम्भ हुआ था), वैशाख शुक्लपक्षकी पुण्यमयी तृतीया त्रेतायुगकी आदि तिथि है। माघकी अमावास्या द्वापरयुगकी आदि तिथि और भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशी कलियुगकी आदि तिथि है। (ये सब तिथियाँ अति पुण्य देनेवाली कही गयी हैं)॥ १४७-१४८॥

(मन्वादि तिथियाँ—) कार्तिकशुक्ला द्वादशी, आश्विनशुक्ला नवमी, चैत्रशुक्ला तृतीया, भाद्रपदशुक्ला तृतीया, पौषशुक्ला एकादशी, आषाढ़शुक्ला दशमी, माघशुक्ला सप्तमी, भाद्रपदकृष्णा अष्टमी, श्रावणकी अमावास्या, फाल्गुनकी पूर्णिमा, आषाढ़की पूर्णिमा, कार्तिककी पूर्णिमा, ज्येष्ठकी पौर्णिमासी और चैत्रकी पूर्णिमा—ये चौदह मन्वादि तिथियाँ हैं। ये सब

तिथियाँ मनुष्योंके लिये पितृकर्म (पार्वण-श्राद्ध)-में अत्यन्त पुण्य देनेवाली हैं॥ १४९-१५१२॥

(गजच्छाया-योग—) भादोंके कृष्णपक्षकी (शुक्लादि क्रमसे भाद्रकृष्ण और कृष्णादि क्रमसे आश्विन कृष्ण पक्षकी) त्रयोदशीमें यदि सूर्य हस्त-नक्षत्रमें और चन्द्रमा मधामें हो तो 'गजच्छाया' नामक योग होता है; जो पितरोंके पार्वणादि श्राद्ध कर्ममें अत्यन्त पुण्य प्रदान करनेवाला है॥ १५२२॥

किसी एक दिनमें तीन तिथियोंका स्पर्श हो तो क्षयतिथि तथा एक ही तिथिका तीन दिनमें स्पर्श हो तो अधिक तिथि (अधितिथि) होती है। ये दोनों ही निन्दित हैं। जिस दिन सूर्योदयसे सूर्यास्तपर्यन्त जो तिथि रहती है, उस दिन वह 'अखण्ड तिथि' कहलाती है। यदि सूर्यास्तसे पूर्व ही समाप्त होती है तो वह 'खण्ड तिथि' कही जाती है॥ १५३-१५४२॥

(क्षणतिथिकथन—) प्रत्येक तिथिमें तिथिमानका पंद्रहवाँ भाग 'क्षणतिथि' कहलाता है। (अर्थात् प्रत्येक तिथिमें उसी तिथिसे आरम्भ करके पंद्रह तिथियोंके अन्तर्भौग होते हैं।) तथा उन क्षणतिथियोंका भी आधा क्षण तिथ्यर्ध (क्षण करण) होता है॥ १५५२॥

(वारप्रकरण—) रवि स्थिर, सोम चर, मङ्गल

१. अमावास्या प्रायः दो दिन हुआ करती है। उनमें प्रथम दिनकी 'सिनीवाली' और दूसरे दिनकी 'कुहू' होती है। चतुर्दशीयुक्ता अमावास्याका क्षय न हो तो वह सिनीवाली होती है।

२. 'अमावास्यान्त' मासकी दृष्टिसे यहाँ भादोंका कृष्णपक्ष कहा गया है। जहाँ पूर्णिमान्त मास माना जाता है, वहाँके लिये इस भादोंका अर्थ आश्विन समझना चाहिये।

३. जैसे प्रतिपदाका भोगमान (आरम्भसे अन्ततक) ६० घड़ी है तो उस तिथिमें आरम्भसे ४ घड़ी प्रतिपदा है, उसके बादकी ४ घड़ी द्वितीया है और उसके बादकी ४ घड़ी तृतीया है। इसी प्रकार आगे भी चतुर्थी आदि सब तिथि प्राप्त होती है। इसी तरह द्वितीयामें भी द्वितीया आदि सब तिथियोंका भोग समझना चाहिये तथा क्षणतिथिमें भी २-२ घड़ी क्षणकरणका मान समझना चाहिये। इसका प्रयोजन यह है कि जिस तिथिमें जो कार्य शुभ या अशुभ कहा गया है, वह क्षणतिथिमें भी शुभ या अशुभ समझना चाहिये। जैसे चतुर्दशीमें क्षौर कराना अशुभ कहा गया है तो तृतीया आदि अन्य तिथियोंमें भी जब चतुर्दशी क्षणतिथिके रूपमें प्राप्त हो तो उसमें क्षौर कराना अशुभ होता है तथा चतुर्दशीमें भी आवश्यक हो तो अन्य तिथिके भोगसमयमें क्षौर करानेमें दोष नहीं समझा जायगा। विशेष आवश्यक शुभ कार्यमें ही तिथि और क्षणतिथिका विचार करना चाहिये।

क्रूर, बुध अखिल (सम्पूर्ण), गुरु लघु, शुक्र मृदु और शनि तीक्ष्ण धर्मवाला है।

(वारोंमें तेल लगानेका फल—) जो मनुष्य रविवारको तेल लगाता है, वह रोगी होता है। सोमवारको तेल लगानेसे कान्ति बढ़ती है। मङ्गलको व्याधि होती है। बुधको तैलाभ्यङ्गसे सौभाग्यकी वृद्धि होती है। गुरुवारको सौभाग्यकी हानि होती है, शुक्रवारको भी हानि होती है तथा शनिवारको तेल लगानेसे धन-सम्पत्तिकी वृद्धि होती है॥ १५६—१५८॥

(रवि आदि वारोंका आरम्भकाल—) जिस समय लङ्घामें (भूमध्यरेखापर) सूर्योदय होता है, उसी समयसे सर्वत्र रवि आदि वारोंका आरम्भ होता है। उस समयसे देशान्तर (लङ्घोदयकालसे अपने उदय कालका अन्तर) और चरार्ध घटीतुल्य आगे या पीछे अन्य देशमें सूर्योदय हुआ करता है॥ १५९॥ जो ग्रह बलवान् होता है, उसके वारमें जो कोई भी कार्य किया जाता है, वह सिद्ध हुआ करता है; किंतु जो ग्रह बलहीन (जातक-अध्यायमें कहे हुए बलसे रहित) होता है, उसके वारमें बहुत यत्न करनेपर भी कार्य सिद्ध नहीं होता है॥ १६०॥ सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्र सम्पूर्ण शुभ कार्योंमें शुभप्रद होते हैं,

अन्य वार (शनि, रवि और मङ्गल) क्रूर कर्ममें इष्टसिद्धिदायक होते हैं॥ १६१॥

सूर्यका वर्ण लाल है, चन्द्रमा गौर वर्णके हैं, मङ्गल अधिक लाल हैं, बुधकी कान्ति दूर्वादलके समान श्याम है, गुरुका वर्ण सुवर्णके सदृश पीत है, शुक्र श्वेत और शनि कृष्ण वर्णके हैं; इसलिये उन ग्रहोंके वारोंमें इनके गुण और वर्णके अनुरूप कार्य ही सिद्ध एवं हितकर होते हैं।

(निन्द्य मुहूर्त—) रविवारसे आरम्भ करके— रविमें ७, ५, ४; सोममें ६, ४, ७; मङ्गलमें ५, ३, २; बुधमें ४, २, ५; गुरुवारमें ३, १, ८; शुक्रवारमें २, ७, ३ और शनिमें १, ६, ८—ये प्रहरार्ध क्रमशः कुलिक, उपकुलिक और वारवेला कहे गये हैं। इनका मान आधे पहरका समझना चाहिये॥ १६२—१६५॥

(प्रत्येक वारमें क्षणवार-कथन—) जिस वारमें क्षणवार जानना हो उस वारमें प्रथम क्षणवार उसी वारपतिका होता है। उससे छठे वारेशका द्वितीय, उससे भी छठेका तृतीय, इस प्रकार छठे-छठेके क्रमसे दिन-रातमें २४ क्षणवार (कालहोरा या होरा) होते हैं। एक-एक क्षणवारका मान ढाई-ढाई घटी (या १ घंटा) है॥ १६६—१६७॥

(क्षणवारका प्रयोजन—) जिस वारमें जो

१. इससे सिद्ध होता है कि अपने-अपने सूर्योदयकालसे देशान्तर और चरार्धकाल आगे या पीछे वारप्रवेश हुआ करता है।

२. दिन-रातमें होरा जाननेका चक्र—

होरा	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
१	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
२	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु
३	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल
४	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि
५	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र
६	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध
७	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम
८	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
९	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु

कर्म शुभ या अशुभ कहा गया है, वह उसके क्षणवारमें भी उसी प्रकार शुभ-अशुभ समझना चाहिये ॥ १६७ १/२ ॥

(नक्षत्राधिपति-कथन—) १ दस्त (अश्विनी-कुमार), २ यम, ३ अग्नि, ४ ब्रह्मा, ५ चन्द्र, ६ शिव, ७ अदिति, ८ गुरु, ९ सर्प, १० पितर, ११ भग, १२ अर्यमा, १३ सूर्य, १४ विश्वकर्मा, १५ वायु, १६ इन्द्र और अग्नि, १७ मित्र, १८ इन्द्र, १९ राक्षस (निर्वृति), २० जल, २१ विश्वेदेव, २२ ब्रह्मा, २३ विष्णु, २४ वसु, २५ वरुण, २६ अजैकपाद, २७ अहिर्बुध्य और २८ पूषा—ये क्रमशः (अभिजित्-सहित) अश्विनी आदि २८ नक्षत्रोंके स्वामी कहे गये हैं ॥ १६८—१७० ॥

(नक्षत्रोंके मुख—) पूर्वफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ी, पूर्व भाद्रपद, मघा, आश्लेषा, कृत्तिका, विशाखा, भरणी, मूल—ये नौ नक्षत्र अधोमुख (नीचे मुखवाले) हैं। इनमें बिलप्रवेश (कुआँ, भूविवर या पाताल आदिमें जाना), गणित, भूतसाधन,

लेखन, शिल्प (चित्र आदि) कला, कुआँ खोदना तथा गाड़े हुए धनको निकालना आदि सब कार्य सिद्ध होते हैं ॥ १७१—१७२ ॥

अनुराधा, मृगशिरा, चित्रा, हस्त, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, रेवती, अश्विनी और स्वाती—ये नौ नक्षत्र तिर्यक् (सामने) मुखवाले हैं। इनमें हल जोतना, यात्रा करना, गाड़ी बनाना, पत्र लिखकर भेजना, हाथी, ऊँट आदिकी सवारी करना, गदहे, बैल आदिसे चलनेवाले रथ बनाना, नौकापर चलना तथा भैंस, घोड़े आदि-सम्बन्धी कार्य करने चाहिये ॥ १७३—१७४ ॥

रोहिणी, श्रवण, आर्द्रा, पुष्य, शतभिषा, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ तथा उत्तर भाद्रपद—ये नौ नक्षत्र ऊर्ध्वमुख (ऊपर मुखवाले) कहे गये हैं। इनमें राज्याभिषेक, मङ्गल (विवाहादि)-कार्य, गजारोहण, ध्वजारोपण, मन्दिर-निर्माण, तोरण (फाटक) बनाना, बगीचे लगाना और चहारदीवारी बनवाना आदि कार्य सिद्ध होते हैं ॥ १७५—१७६ ॥

१०	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल
११	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि
१२	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र
१३	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध
१४	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम
१५	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
१६	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु
१७	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल
१८	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि
१९	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र
२०	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध
२१	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम
२२	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
२३	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु
२४	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल

क्षणवार (होरेश) जाननेका प्रकार यह है कि जिस दिन होरेश (क्षणवार)-का विचार करना हो, उस दिनका प्रथम घंटा उसी दिनका क्षणवार होता है। इससे आगे उससे छठे-छठे दिनका क्षणवार समझे। जैसे रविवारमें वारप्रवेश-कालसे पहला घंटा रविका, दूसरा घंटा रविसे छठे शुक्रका, तीसरा घंटा शुक्रसे छठे बुधका इत्यादि क्रमसे ऊपर चक्रमें देखिये।

(नक्षत्रोंकी ध्रुवादि संज्ञा—) रोहिणी, उत्तरा-फाल्युनी, उत्तराषाढ़ और उत्तर भाद्रपद—ये ध्रुवनामक नक्षत्र हैं। हस्त, अश्विनी और पुष्य—ये क्षिप्रसंज्ञक हैं। विशाखा और कृत्तिका—ये दोनों साधारणसंज्ञक हैं। धनिष्ठा, पुनर्वसु, शतभिषा, स्वाती और श्रवण—ये चरसंज्ञक हैं। मृगशिरा, अनुराधा, चित्रा तथा रेवती—ये मृदुनामक नक्षत्र हैं। पूर्वफाल्युनी, पूर्वाषाढ़, पूर्व भाद्रपद और भरणी—ये उग्रसंज्ञक नक्षत्र हैं। मूल, आद्रा, आश्लेषा और ज्येष्ठा—ये तीक्ष्णनामक नक्षत्र हैं। ये सब अपने नामके अनुसार ही फल देते हैं (इसलिये इन नक्षत्रोंमें इनके नामके अनुरूप ही कार्य करने चाहिये) ॥ १७७—१७८ ॥

(कर्णविध-मुहूर्त—) चित्रा, पुनर्वसु, श्रवण, हस्त, रेवती, अश्विनी, अनुराधा, धनिष्ठा, मृगशिरा और पुष्य—इन नक्षत्रोंमें कर्णविध हितकर होता है।

(हाथी और घोड़ेसम्बन्धी कार्य—) अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा और स्वाती—इनमें तथा स्थिरसंज्ञक नक्षत्रोंमें हाथीसम्बन्धी सब कृत्य करने चाहिये; तथा इन्हीं नक्षत्रोंमें घोड़ेके भी सब कृत्य शुभ होते हैं; किंतु रविवारको इन कृत्योंका त्याग कर देना चाहिये ॥ १७९—१८१ ॥

(अन्य पशुकृत्य—) चित्रा, शतभिषा, रोहिणी तथा तीनों उत्तरा—इन नक्षत्रोंमें पशुओंको कहींसे लाना या ले जाना शुभ है। परंतु अमावास्या, अष्टमी और चतुर्दशीको कदापि पशुओंका कोई कृत्य नहीं करना चाहिये ॥ १८२ ॥

(प्रथम हलप्रवाह—हल जोतना—) मृदु, ध्रुव, क्षिप्र और चरसंज्ञक नक्षत्र, विशाखा, मधा और मूल—इन नक्षत्रोंमें बैलोंद्वारा प्रथम बार हल जोतना शुभ होता है। सूर्य जिस नक्षत्रमें हो, उससे पिछले नक्षत्रसे तीन नक्षत्र हलके आदि (मूल)-में रहते हैं। इनमें प्रथम बार हल जोतने-जुतानेसे बैलका नाश होता है। उसके आगे तीन नक्षत्र हलके अग्रभागमें रहते हैं। इनमें हल जोतनेसे वृद्धि होती है। उससे आगेके पाँच नक्षत्र उत्तर

पार्श्वमें रहते हैं, इनमें लक्ष्मीप्राप्ति होती है। तीन शूलोंमें नौ नक्षत्र रहते हैं; इनमें हल जोतनेसे कृषककी मृत्यु होती है। उससे आगे पाँच नक्षत्रोंमें सम्पत्तिकी वृद्धि होती है; फिर उससे आगेके तीन नक्षत्रोंमें प्रथम बार हल जोतनेसे श्रेष्ठ फल प्राप्त होते हैं ॥ १८३—१८५ ॥

(बीज-वपन—) मृदु, ध्रुव और क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्र, मधा, स्वाती, धनिष्ठा और मूल—इनमें धान्यके बीज बोना श्रेष्ठ होता है। इस बीज-वपनमें राहु जिस नक्षत्रमें हो, उससे तीन नक्षत्र लाङ्गल-चक्रके अग्रभागमें रहते हैं। इन तीनोंमें बीज-वपनसे धान्यका नाश होता है। उससे आगेके तीन नक्षत्र गलेमें रहते हैं, उनमें बीज-वपनसे जलकी अल्पता होती है। उससे आगेके बारह नक्षत्र उदरमें रहते हैं, उनमें बीज बोनेसे धान्यकी वृद्धि होती है। उससे आगेके चार नक्षत्र लाङ्गलमें रहते हैं, इनमें निस्तण्डुलत्व होता है (अर्थात् धानमें दाने नहीं लगते, केवल भूसीमात्र रह जाती है)। उससे आगेके पाँच नक्षत्र नाभिमें रहते हैं, इनमें प्रथम बीज-वपनसे अग्निभय प्राप्त होता है। इस चक्रका विचार बीज-वपनमें अवश्य करना चाहिये ॥ १८६—१८८ ॥

(रोगविमुक्तका स्नान—) स्थिरसंज्ञक, पुनर्वसु, आश्लेषा, रेवती, मधा और स्वाती—इन नक्षत्रोंमें तथा सोम और शुक्रके दिन रोगमुक्त पुरुषको पहले-पहल स्नान नहीं करना चाहिये ॥ १८९ ॥

(नृत्यारम्भ—) उत्तराफाल्युनी, उत्तराषाढ़, उत्तर भाद्रपद, अनुराधा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, शतभिषा, पुष्य, हस्त और रेवती—इन नक्षत्रोंमें नृत्यारम्भ (नाट्य-विद्याका प्रारम्भ) उत्तम कहा गया है ॥ १९० ॥

रेवतीसे छः नक्षत्र पूर्वार्धयोगी, आद्रासे बारह नक्षत्र मध्ययोगी और धनिष्ठासे नौ नक्षत्र परार्धयोगी हैं। इनमेंसे पूर्वयोगीमें यदि वर और कन्या—दोनोंके नक्षत्र पड़ते हों तो स्त्रीका स्वामीमें अधिक प्रेम होता है। मध्ययोगीमें हों तो दोनोंमें

परस्पर समान प्रेम होता है और परार्धयोगीमें दोनोंके नक्षत्र हों तो स्त्रीमें पतिका अधिक प्रेम होता है ॥ १९१ ३ ॥

(बृहत्, सम और अधम नक्षत्र—) शतभिषा, आद्रा, आश्लेषा, स्वाती, भरणी और ज्येष्ठा—ये छः नक्षत्र जघन्य (अधम) कहे गये हैं। ध्रुवसंज्ञक, पुनर्वसु और विशाखा—ये नक्षत्र बृहत् (श्रेष्ठ) कहलाते हैं तथा अन्य नक्षत्र समसंज्ञक हैं। इनका विंशोपक मान क्रमशः ३०, ९० और ६० घड़ी कहा गया है ॥ १९२—१९३ ॥ यदि द्वितीया तिथिको बृहत्संज्ञक नक्षत्रमें चन्द्रोदय हो तो अन्नका भाव सस्ता होता है। समसंज्ञक नक्षत्रमें चन्द्रदर्शन हो तो अन्नादिके भावमें समता होती है और जघन्यसंज्ञक नक्षत्रमें चन्द्रोदय हो तो उस महीनेमें अन्नका भाव महँगा हो जाता है ॥ १९३ ३ ३ ॥

(यात्रा करनेवालेको जय तथा पराजय देनेवाले नक्षत्र—) अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्य, मूल, चित्रा, श्रवण, तीनों उत्तरा, पूर्वाफाल्युनी, मधा, विशाखा, धनिष्ठा^२—इतने नक्षत्र कुलसंज्ञक हैं। रोहिणी, ज्येष्ठा^३, पुनर्वसु, स्वाती, रेवती, हस्त, अनुराधा, पूर्व भाद्रपद, भरणी और आश्लेषा—ये नक्षत्र अकुलसंज्ञक हैं। शेष नक्षत्र कुलाकुलसंज्ञक हैं। इनमें कुलसंज्ञक नक्षत्रोंमें विजयकी इच्छासे यात्रा करनेवाले राजाकी पराजय होती है। अकुलसंज्ञक नक्षत्रोंमें यात्रा करनेसे वह निश्चय ही शत्रुपर विजय प्राप्त करता है और कुलाकुलसंज्ञक नक्षत्रोंमें युद्धार्थ यात्रा करनेपर शत्रुओंके साथ सन्धि होती है। अथवा यदि युद्ध हुआ तो भी दोनोंमें समानता सिद्ध होती है (किसी एक पक्षकी हार या जीत नहीं होती) ॥ १९४—१९७ ३ ॥

(त्रिपुष्कर, द्विपुष्कर योग—) रवि, शनि या मङ्गलवारमें भद्रा, (२, ७, १२) तिथि तथा विषम चरणवाले नक्षत्र (कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तरा फाल्युनी, विशाखा, उत्तराषाढ़ और पूर्व भाद्रपद) हों तो (इन तीनोंके संयोगसे) 'त्रिपुष्कर' नामक योग होता है। तथा उन्हीं रवि, शनि और मङ्गलवार एवं भद्रा तिथियोंमें दो चरणवाले नक्षत्र (मृगशिरा, चित्रा और धनिष्ठा) हों तो 'द्विपुष्कर' योग होता है। त्रिपुष्करयोग त्रिगुणित (तीन गुने) और द्विपुष्करयोग द्विगुणित (दुगुने) लाभ और हानिको देनेवाले हैं। अतः इनमें किसी वस्तुकी हानि हो तो उस दोषकी शान्तिके लिये तीन गोदान या तीन गौओंका मूल्य तथा द्विपुष्कर दोषकी शान्तिके लिये दो गोदान या दो गौओंका मूल्य ब्राह्मणोंको देना चाहिये। इससे उक्त (तिथि, वार और) नक्षत्र-सम्बन्धी दोषका निवारण हो जाता है ॥ १९८—१९९ ३ ॥

(पुष्य नक्षत्रकी प्रशंसा—) पापग्रहसे विद्ध या युक्त होनेपर भी पुष्य नक्षत्र बलवान् होता है और विवाह छोड़कर वह सब शुभ कर्मोंमें अभीष्ट फल देनेवाला है ॥ २०० ३ ॥

(नक्षत्रोंमें योग-ताराओंकी संख्या—) अश्विनी आदि (अभिजितसहित) अद्वाईस नक्षत्रोंमें क्रमशः ३, ३, ६, ५, ३, १, ४, ३, ५, ५, २, २, ५, १, १, ४, ४, ३, ११, २, २, ३, ३, ४, १००, २, २ और ३२ योगताराएँ होती हैं। अपने-अपने आकाशीय विभागमें जो अनेक ताराओंका पुञ्ज होता है, उसमें जो अत्यन्त उद्दीप (चमकीली) ताराएँ दीख पड़ती हैं, वे ही योगताराएँ कहलाती हैं ॥ २०१—२०३ ॥

(नक्षत्रोंसे वृक्षोंकी उत्पत्ति—) जितने भी

१. वास्तवमें किसी भी नक्षत्रका ५६ घटीसे कम और ६६ घटीसे अधिक काल-मान नहीं होता। यहाँ जो 'बृहत्' संज्ञक नक्षत्रोंका ९० घटी (४५ मुहूर्त), समसंज्ञक नक्षत्रोंका ६० घटी (३० मुहूर्त) और जघन्यसंज्ञक नक्षत्रोंका ३० घटी (१५ मुहूर्त) समय बताया गया है, वह क्रमशः सस्ती, समता और महँगीका सूचक है।

२-३. अन्य संहितामें धनिष्ठा नक्षत्र अकुलगणमें, ज्येष्ठा कुलगणमें और मूल कुलाकुलगणमें लिया गया है।

वृष अर्थात् श्रेष्ठ वृक्ष हैं उनकी उत्पत्ति अश्विनीसे हुई है। भरणीसे यमक (जुड़े हुए दो) वृक्ष, कृत्तिकासे उदुम्बर (गूलर), रोहिणीसे जामुन, मृगशिरासे खैर, आर्द्रासे काली पाकर, पुनर्वसुसे बाँस, पुष्ट्यसे पीपल, आश्लेषासे नागकेसर, मधासे बरगद, पूर्वाफाल्युनीसे पलाश, उत्तराफाल्युनीसे रुद्राक्षका वृक्ष, हस्तसे अरिष्ट (रीठीका वृक्ष), चित्रासे श्रीवृक्ष (बेल), स्वातीसे अर्जुन वृक्ष, विशाखासे विकङ्कृत (जिसकी लकड़ीसे कलछियाँ बनती हैं), अनुराधासे बकुल (मौलश्री), ज्येष्ठासे विष्णवृक्ष, मूलसे सर्ज (शालका वृक्ष), पूर्वाषाढ़से वञ्चुल (अशोक), उत्तराषाढ़से कटहल, श्रवणसे आक, धनिष्ठासे शमीवृक्ष, शतभिषासे कदम्ब, पूर्व भाद्रपदसे आम्रवृक्ष, उत्तर भाद्रपदसे पिचुमन्द (नीमका पेड़) तथा रेवतीसे महुआकी उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार ये नक्षत्रसम्बन्धी वृक्ष कहे गये हैं॥ २०४—२१०॥

जब जिस नक्षत्रमें शनैश्चर विद्यमान हो, उस समय उस नक्षत्र-सम्बन्धी वृक्षका यत्पूर्वक पूजन करना चाहिये॥ २११ १/२ ॥

(योगोंके स्वामी—) यम, विश्वेदेव, चन्द्र, ब्रह्मा, गुरु, चन्द्र, इन्द्र, जल, सर्प, अग्नि, सूर्य, भूमि, रुद्र, ब्रह्मा, वरुण, गणेश, रुद्र, कुबेर, विश्वकर्मा, मित्र, षडानन, सावित्री, कमला, गौरी, अश्विनीकुमार, पितर और अदिति—ये क्रमशः विष्कुम्भ आदि सत्ताईस योगोंके स्वामी हैं॥ २१२ १/२ ॥

(निन्द्य योग—) वैधृति और व्यतीपात—ये दोनों महापात हैं, इन दोनोंको शुभ कार्योंमें सदा त्याग देना चाहिये। परिघ योगका पूर्वार्थ और वज्रयोगके आरम्भकी तीन घड़ियाँ, गण्ड और अतिगण्डकी छः घड़ी, व्याधात योगकी ९ घड़ी और शूल योगकी ५ घड़ी सब शुभ कार्योंमें निन्दित हैं।

(खार्जूरचक्र—) इन नौ निन्द्य योगों (वैधृति, व्यतीपात, परिघ, विष्कुम्भ, वज्र, गण्ड, अतिगण्ड,

व्याधात और शूल)–में क्रमशः पुनर्वसु, मृगशिरा, मघा, आश्लेषा, अश्विनी, मूल, अनुराधा, पुष्ट्य और चित्रा—ये नौ मूर्धा (मस्तक)–के नक्षत्र माने गये हैं। एक ऊर्ध्वरेखा लिखे, फिर उसके ऊपर तेह तिरछी रेखाएँ अङ्कित करे। यह 'खार्जूरचक्र' कहलाता है। इस चक्रमें ऊपर कहे हुए निन्द्य योगोंमें उनके मूर्धगत नक्षत्रको रेखाके मस्तकके ऊपर लिखकर क्रमशः २८ नक्षत्रोंको लिखे। इसमें यदि सूर्य और चन्द्रमा एक रेखामें विभिन्न भागमें पड़ें तो उन दोनोंका परस्परका दृष्टिपात 'एकार्गल' दोष कहलाता है, जो शुभकार्यमें त्याज्य है, परंतु यदि सूर्य और चन्द्रमामें कोई एक अभिजितमें हो तो वेध-दोष नहीं होता है॥ २१३—२१७ १/२ ॥

(प्रत्येक योगमें अन्तर्भौंग—) १२ पलरहित २ घड़ीके मानसे एक-एक योगमें सत्ताईस योग बीतते हैं॥ २१८ १/२ ॥

(करणके स्वामी और शुभाशुभ-विभाग—) इन्द्र, ब्रह्मा, मित्र, विश्वकर्मा, भूमि, हरितप्रिया (लक्ष्मी), कीनाश (यम), कलि, रुद्र, सर्प तथा मरुत्—ये ग्यारह देवता, क्रमशः बव आदि (बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि, शकुनि, चतुष्पद, नाग और किंस्तुग्र—इन) ग्यारह करणोंके स्वामी हैं। इनमें बवसे लेकर छः करण शुभ होते हैं। किंतु 'विष्टि' नामक करण क्रमसे आया हो या विपरीतक्रमसे, किसी भी दशामें वह मङ्गलकार्यमें शुभ नहीं है॥ २१९—२२० १/२ ॥

(विष्टिके अङ्गोंमें घटी और फल—) विष्टिके मुखमें पाँच घटी, गलेमें एक, हृदयमें ग्यारह, नाभिमें चार, कटिमें छः और पुच्छमें तीन घड़ियाँ होती हैं। मुखकी घड़ियोंमें कार्य आरम्भ करनेसे कार्यकी हानि होती है। गलेकी घड़ीमें मृत्यु, हृदयकी घड़ीमें निर्धनता, कटिकी घड़ीमें उन्मत्तता, नाभिकी घड़ीमें पतन तथा पुच्छकी घड़ीमें कार्य करनेसे निश्चय ही विजय (सिद्धि) प्राप्त होती है। भद्राके बाद जो चार स्थिर करण हैं, वे मध्यम

हैं, विशेषतः नाग और चतुष्पद ॥ २२१—२२३ ॥

(मुहूर्त-कथन—) दिनमें क्रमशः रुद्र, सर्प, मित्र, पितर, वसु, जल, विश्वेदेव, विधि (अभिजित्), ब्रह्मा, इन्द्र, इन्द्राग्नि, राक्षस, वरुण, अर्यमा और भग—ये पंद्रह मुहूर्त जानने चाहिये। रात्रिमें शिव, अजपाद, अहिर्बुध्य, पूषा, अश्विनीकुमार, यम, अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्रमा, अदिति, बृहस्पति, विष्णु, सूर्य, विश्वकर्मा और वायु—ये क्रमशः पंद्रह मुहूर्त व्यतीत होते हैं। दिनमानका पंद्रहवाँ भाग दिनके मुहूर्तका मान है और रात्रिमानका पंद्रहवाँ भाग रात्रिके मुहूर्तका मान समझना चाहिये; इनसे दिन तथा रात्रिमें क्षण-नक्षत्रका विचार करे* ॥ २२४—२२६ ॥

(वारोंमें निन्द्य मुहूर्त—) रविवारको अर्यमा, सोमवारको ब्राह्म तथा राक्षस, मङ्गलवारको पितर और अग्नि, बुधवारको अभिजित्, गुरुवारको राक्षस और जल, शुक्रवारको ब्राह्म और पितर तथा शनिवारको शिव और सर्प मुहूर्त निन्द्य माने गये हैं; इसलिये इन्हें शुभ कार्योंमें त्याग देना चाहिये ॥ २२७—२२८ ॥

(मुहूर्तका विशेष प्रयोजन—) जिस-जिस नक्षत्रमें यात्रा आदि जो-जो कर्म शुभ या अशुभ कहे गये हैं; वे कार्य उस-उस नक्षत्रके स्वामीके मुहूर्तमें भी शुभ या अशुभ होते हैं। ऐसा समझकर उस मुहूर्तमें सदा वैसे कार्य करने या त्याग देने चाहिये ॥ २२९ ॥

(भूकम्पादि संज्ञाओंसे युक्त नक्षत्र—) सूर्य जिस नक्षत्रमें हो, उससे सातवें नक्षत्रकी भूकम्प, पाँचवेंकी विद्युत्, आठवेंकी शूल, दसवेंकी अशनि, अठारहवेंकी केतु, पंद्रहवेंकी दण्ड, उन्नीसवेंकी उल्का, चौदहवेंकी निर्धातपात, इक्कीसवेंकी मोह, बाईसवेंकी निर्धात, तेईसवेंकी कम्प, चौबीसवेंकी

कुलिश तथा पचीसवेंकी परिवेष संज्ञा समझनी चाहिये; इन संज्ञाओंसे युक्त चन्द्र-नक्षत्रोंमें शुभ कर्म नहीं करने चाहिये ॥ २३०—२३२ ॥

सूर्यके नक्षत्रसे आश्लेषा, मघा, चित्रा, अनुराधा, रेवती तथा श्रवणतककी जितनी संख्या हो, उतनी ही यदि अश्विनीसे चन्द्र-नक्षत्रतककी संख्या हो तो उसपर दुष्टयोगका सम्पात अर्थात् रुद्रके प्रचण्ड अस्त्रका प्रहार होता है। अतः उसका नाम 'चण्डीशचण्डायुध' योग है। उसमें शुभ कर्म नहीं करना चाहिये ॥ २३३—२३४ ॥

(क्रकचयोग—) प्रतिपदादि तिथिकी तथा रवि आदि वारकी संख्या मिलानेसे यदि १३ हो तो वह क्रकचयोग होता है जो शुभ कार्यमें अत्यन्त निन्दित माना गया है ॥ २३५ ॥

(संवर्तयोग—) रविवारको सप्तमी और बुधवारको प्रतिपदा हो तो 'संवर्तयोग' जानना चाहिये। यह शुभ कार्यको नष्ट करनेवाला है ॥ २३६ ॥

(आनन्दादि योग—) १ आनन्द, २ कालदण्ड, ३ धूम्र, ४ धाता, ५ सुधाकर (सौम्य), ६ ध्वादक्ष, ७ केतु, ८ श्रीवत्स, ९ वज्र, १० मुद्रर, ११ छत्र, १२ मित्र, १३ मानस, १४ पद्म, १५ लुम्ब, १६ उत्पात, १७ मृत्यु, १८ काण, १९ सिद्धि, २० शुभ, २१ अमृत, २२ मुसल, २३ अन्तक (गद), २४ कुञ्जर (मातङ्ग), २५ राक्षस, २६ चर, २७ सुस्थिर और २८ वर्धमान—ये क्रमशः पठित २८ योग अपने-अपने नामके समान ही फल देनेवाले कहे गये हैं।

(इन योगोंको जाननेकी रीति—) रविवारको अश्विनी नक्षत्रसे, सोमवारको मृगशिरासे, मङ्गलवारको आश्लेषासे, बुधवारको हस्तसे, गुरुवारको अनुराधासे, शुक्रवारको उत्तराषाढ़से और शनिवारको

१.उदाहरण—जिस समय ब्रह्माका मुहूर्त हो, उस समय उसीका क्षण-नक्षत्र होता है। जैसे—दिनमें नवाँ मुहूर्त ब्रह्माका है और दिनमान ३० घड़ीका है तो १६ घड़ीके बाद १८ घड़ीतक ब्रह्माजीके ही नक्षत्र (रोहिणी)-को क्षण-नक्षत्र समझना चाहिये। इसलिये दिनमें नवम मुहूर्त 'ब्राह्म' या 'रौहिण' कहलाता है, जो श्राद्धमें श्रेष्ठ माना गया है।

शतभिषासे आरम्भ करके उस दिनके नक्षत्रतक गणना करनेपर जो संख्या हो, उसी संख्यावाला योग उस दिन होगा^१ ॥ २३७—२४१ ॥

(सिद्धियोग—) रविवारको हस्त, सोमवारको मृगशिरा, मङ्गलवारको अश्विनी, बुधवारको अनुराधा, बृहस्पतिवारको पुष्य, शुक्रवारको रेवती और शनिवारको रोहिणी हो तो सिद्धियोग होता है ॥ २४२^१ ॥

रवि और मङ्गलवारको नन्दा (१।६।११), शुक्र और सोमवारको भद्रा (२।७।१२), बुधवारको जया (३।८।१३), गुरुवारको रिक्ता (४।९।१४) और शनिवारको पूर्णा (५।१०।१५) हो तो मृत्युयोग^२ होता है । अतः इसमें शुभ कर्म न करे ॥ २४३^१ ॥

(सिद्धियोग—) शुक्रवारको नन्दा, बुधवारको भद्रा, मङ्गलवारको जया, शनिवारको रिक्ता और गुरुवारको पूर्णा तिथि हो तो 'सिद्धियोग' कहा गया है ॥ २४४^१ ॥

(दग्धयोग—) सोमवारको एकादशी, गुरुवारको षष्ठी, बुधवारको तृतीया, शुक्रवारको अष्टमी, शनिवारको नवमी तथा मङ्गलवारको पञ्चमी तिथि हो तो 'दग्धयोग' कहा गया है ॥ २४५—२४६ ॥

(ग्रहोंके जन्मनक्षत्र—) रविवारको भरणी, सोमवारको चित्रा, मङ्गलवारको उत्तराषाढ़, बुधवारको धनिष्ठा, गुरुवारको उत्तराफाल्गुनी, शुक्रवारको ज्येष्ठा और शनिवारको रेवती—ये क्रमशः सूर्यादि ग्रहोंके जन्मनक्षत्र होनेके कारण शुभ कार्यके विनाशक होते हैं ॥ २४७^१ ॥

यदि रवि आदि वारोंमें विशाखा आदि चार-चार नक्षत्र हों अर्थात् रविवारको विशाखासे,

सोमको पूर्वाषाढ़से, मङ्गलको धनिष्ठासे, बुधको रेवतीसे, गुरुवारको रोहिणीसे, शुक्रको पुष्यसे और शनिको उत्तराफाल्गुनीसे चार-चार नक्षत्र हों तो क्रमशः उत्पात, मृत्यु, काण तथा सिद्ध नामक योग कहे गये हैं ॥ २४८^१ ॥

(परिहार—) ये जो ऊपर तिथि और वारके संयोगसे तथा वार और नक्षत्रके संयोगसे अनिष्टकारक योग बताये गये हैं, वे सब हूणोंके देश—भारतके पश्चिमोत्तर-भागमें, बंगालमें और नैपाल देशमें ही त्याज्य हैं । अन्य देशोंमें ये अत्यन्त शुभप्रद हैं ॥ २४९^१ ॥

(सूर्यसंक्रान्तिकथन—) रवि आदि वारोंमें सूर्यकी संक्रान्ति होनेपर क्रमशः घोरा, ध्वांक्षी, महोदरी, मन्दा, मन्दाकिनी, मिश्रा तथा राक्षसी—ये संक्रान्तिके नाम होते हैं । उक्त घोरा आदि संक्रान्तियाँ क्रमशः शूद्र, चोर, वैश्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, गौ आदि पशु तथा चारों वर्णोंसे अतिरिक्त मनुष्योंको सुख देनेवाली होती हैं । यदि सूर्यकी संक्रान्ति पूर्वाह्नमें हो तो वह क्षत्रियोंको हानि पहुँचाती है । मध्याह्नमें हो तो ब्राह्मणोंको, अपराह्नमें हो तो वैश्योंको, सूर्यास्त-समयमें हो तो शूद्रोंको, रात्रिके प्रथम प्रहरमें हो तो पिशाचोंको, द्वितीय प्रहरमें हो तो निशाचरोंको, तृतीय प्रहरमें हो तो नाट्यकारोंको, चतुर्थ प्रहरमें हो तो गोपालकोंको और सूर्योदय-समयमें हो तो लिङ्गधारियों (वेशधारी बहुरूपियों, पाखण्डियों अथवा आत्रम या सम्प्रदायके चिह्न धारण करनेवालों) -को हानि पहुँचाती है ॥ २५०—२५३^१ ॥

यदि सूर्यकी मेष-संक्रान्ति दिनमें हो तो संसारमें अनर्थ और कलह पैदा करनेवाली है । रात्रिमें

१. संक्षिप्त उदाहरण—जैसे रविवारको अश्विनी हो तो आनन्द, भरणी हो तो कालदण्ड इत्यादि । सोमवारको मृगशिरा हो तो आनन्द, आद्रा हो तो कालदण्ड । ऐसे ही मङ्गलादि वारोंमें कथित आश्लेषादिसे गिनकर योगोंका निश्चय करना चाहिये ।

२. अन्य संहिताओंमें इसका नाम मृत्युयोग आया है, इसलिये वैसा लिखा गया है । मूलमें कोई संज्ञा न देकर इन्हें अशुभ बताया है और इनमें शुभ कर्मको त्याज्य कहा है ।

मेष-संक्रान्ति हो तो अनुपम सुख और सुभिक्ष होता है तथा दोनों संध्याओंके समय हो तो वह वृष्टिका नाश करनेवाली है ॥ २५४ १ ॥

(करण-संक्रान्तिवश सूर्यके वाहन-भोजनादि—) बब आदि ग्यारह करणोंमें संक्रान्ति होनेपर क्रमशः १ सिंह, २ बाघ, ३ सूअर, ४ गदहा, ५ हाथी, ६ भैंसा, ७ घोड़ा, ८ कुत्ता, ९ बकरा, १० बैल और ११ मुर्गा—ये सूर्यके वाहन होते हैं तथा १ भुशुण्डी, २ गदा, ३ तलवार, ४ लाठी, ५ धनुष, ६ बरछी, ७ कुन्त (भाला), ८ पाश, ९ अंकुश, १० अस्त्र (जो फेंका जाता है) और ११ बाण—इन्हें क्रमशः सूर्यदेव अपने हाथोंमें धारण करते हैं । १ अन्न, २ खीर, ३ भिक्षान्न, ४ पकवान, ५ दूध, ६ दही, ७ मिठाई, ८ गुड़, ९ मधु, १० घृत और ११ चीनी—ये बब आदिकी संक्रान्तिमें क्रमशः भगवान् सूर्यके हविष्य (भोजन) होते हैं ॥ २५५—२५७ १ ॥

(सूर्यकी स्थिति—) बब, वणिज, विष्टि, बालव और गर—इन करणोंमें सूर्य बैठे हुए, कौलव, शकुनि और किंस्तुग्र—इन करणोंमें खड़े हुए तथा चतुष्पद, तैतिल और नाग—इन तीन करणोंमें सोते हुए, संक्रान्ति करते (एक राशिसे दूसरी राशिमें जाते) हों तो इन तीनों अवस्थाओंकी संक्रान्तिमें प्रजाको क्रमशः धर्म, आयु और वर्षके विषयमें समान, श्रेष्ठ और अनिष्ट फल प्राप्त होते हैं तथा ऊपर कहे हुए अस्त्र, वाहन और भोजन तथा उससे आजीविका या व्यवहार करनेवाले मनुष्यादि प्राणियोंका अनिष्ट होता है एवं जिस प्रकार सोये, बैठे, खड़े हुए संक्रान्ति होती है, उसी प्रकार सोये, बैठे और खड़े हुए प्राणियोंका

अनिष्ट होता है ॥ २५८—२६० १ ॥

नक्षत्रोंकी अन्धाक्षादि संज्ञाएँ—रोहिणी नक्षत्रसे आरम्भ करके चार-चार नक्षत्रोंको क्रमशः अन्ध, मन्दनेत्र, मध्यनेत्र और सुलोचन माने और पुनः आगे इसी क्रमसे सूर्यके नक्षत्रतक गिनकर नक्षत्रोंकी अन्ध आदि चार संज्ञाएँ समझे* ।

(संक्रान्तिकी विशेष संज्ञा—) स्थिर राशियों (वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ)-में सूर्यकी संक्रान्तिका नाम 'विष्णुपदी', द्विस्वभाव राशियों (मिथुन, कन्या, धनु और मीन)-में 'षडशीतिमुखा', तुला और मेषमें 'विषुव' (विषुवत्), मकरमें 'सौम्यायन' और कर्कमें 'याम्यायन' संज्ञा होती है ॥ २६१—२६३ १ ॥

(पुण्यकाल—) याम्यायन और स्थिर राशियोंकी (विष्णुपद) संक्रान्तिमें संक्रान्तिकालसे पूर्व १६ घड़ी, द्विस्वभाव राशियोंकी षडशीतिमुखा और सौम्यायन-संक्रान्तिमें संक्रान्तिकालके पश्चात् १६ घड़ी तथा विषुवत् (मेष, तुला) संक्रान्तिमें मध्य (संक्रान्ति-कालसे ८ पूर्व और ८ पश्चात्)-की १६ घड़ीका समय पुण्यदायक होता है ॥ २६४ ॥

सूर्योदयसे पूर्वकी तीन घड़ी प्रातः—संध्या तथा सूर्योस्तके बादकी तीन घड़ी सायं-संध्या कहलाती है । यदि सायं-संध्यामें याम्यायन या सौम्यायन कोई संक्रान्ति हो तो पूर्व दिनमें और प्रातः—संध्यामें संक्रान्ति हो तो पर दिनमें सूर्योदयके बाद पुण्यकाल होता है ॥ २६५ ॥

जब सूर्यकी संक्रान्ति होती है, उस समय प्रत्येक मनुष्यके लिये जैसा शुभ या अशुभ चन्द्रमा होता है, उसीके अनुसार इस महीनेमें मनुष्योंको चन्द्रमाका शुभ या अशुभ फल प्राप्त होता है ॥ २६६ ॥

*नीचे चक्रमें स्पष्ट देखिये—

अन्धाक्ष मन्दाक्ष मध्याक्ष सुलोचन	रोहिणी मृगशिरा आर्द्रा पुनर्वसु	पुष्य आश्लेषा मधा पूर्वाफालगुनी	उत्तराफालगुनी हस्त चित्रा स्वाती	विशाखा अनुराधा ज्येष्ठा मूल	पूर्वाषाढ़ उत्तराषाढ़ अभिजित् श्रवण	धनिष्ठा शतभिषा पूर्व भाद्रपद उत्तर भाद्रपद	रेवती अश्विनी भरणी कृतिका

किसी संक्रान्तिके बाद सूर्य जितने अंश भोगकर उस संक्रान्तिके आगे अयनसंक्रान्ति करे, उतने समयतक संक्रान्ति या ग्रहणका जो नक्षत्र हो, वह तथा उसके आगे-पीछेवाले दोनों नक्षत्र उपनयन और विवाहादि शुभ कार्योंमें अशुभ होते हैं। संक्रान्ति या ग्रहणजनित अनिष्ट फलों (दोषों)-की शान्तिके लिये तिलोंकी ढेरीपर तीन त्रिशूलवाला त्रिकोण-चक्र लिखे और उसपर यथाशक्ति सुवर्ण रखकर ब्राह्मणोंको दान दे॥ २६७—२६९॥

(ग्रह-गोचर—) ताराके बलसे चन्द्रमा बली होता है और चन्द्रमाके बली होनेपर सूर्य बली हो जाता है तथा संक्रमणकारी सूर्यके बली होनेसे अन्य सब ग्रह भी बली समझे जाते हैं॥ २७०॥

मुनीश्वर! अपनी जन्मराशियोंसे ३, ११, १०, ६ स्थानमें सूर्य शुभ होता है; परंतु यदि क्रमशः जन्मराशिसे ही ९, ५, ४ तथा १२ वें स्थानमें स्थित शनिके अतिरिक्त अन्य ग्रहोंसे वह विद्ध न हो तभी शुभ होता है॥ इसी प्रकार चन्द्रमा जन्मराशिसे ७, ६, ११, १, १० तथा ३ में शुभ होते हैं; यदि क्रमशः २, १२, ८, ५, ४ और ९ वेंमें स्थित बुधसे भिन्न ग्रहोंसे विद्ध न हों। मङ्गल जन्मराशिसे ३, ११, ६ में शुभ हैं; यदि क्रमशः १२, ५ तथा ९ वें स्थानमें स्थित अन्य ग्रहसे विद्ध न हों। शनि भी अपनी जन्मराशिसे इन्हीं ३, ११, ६ स्थानोंमें शुभ हैं; यदि क्रमशः १२, ५, ९ स्थानोंमें स्थित

सूर्यके सिवा अन्य ग्रहोंसे विद्ध न हों। बुध अपनी जन्मराशिसे २, ४, ६, ८, १० और ११ स्थानोंमें शुभ हैं; यदि क्रमशः ५, ३, ९, १, ८ और १२ स्थानोंमें स्थित चन्द्रमाके सिवा अन्य किसी ग्रहसे विद्ध न हों। मुनीश्वर! गुरु जन्मराशिसे २, ११, ९, ५ और ७ इन स्थानोंमें शुभ होते हैं; यदि क्रमशः १२, ८, १०, ४ और ३ स्थानोंमें स्थित अन्य किसी ग्रहसे विद्ध न हों। इसी प्रकार शुक्र भी जन्मराशिसे १, २, ३, ४, ५, ८, ९, १२ तथा ११ स्थानोंमें शुभ होते हैं; यदि क्रमशः ८, ७, १, १०, ९, ५, ११, ६, ३ स्थानोंमें स्थित अन्य ग्रहसे विद्ध न हों॥ २७१—२७६॥

जो ग्रह गोचरमें वेधयुक्त हो जाता है, वह शुभ या अशुभ फलको नहीं देता; इसलिये वेधका विचार करके ही शुभ या अशुभ फल समझना चाहिये॥ २७७॥ वामवेध होने (वेध-स्थानमें ग्रह और शुभ स्थानमें अन्य ग्रहके होने)-से दुष्ट (अशुभ) ग्रह भी शुभकारक हो जाता है। यदि दुष्ट ग्रह भी शुभग्रहसे दृष्ट हो तो शुभकारक हो जाता है तथा शुभप्रद ग्रह भी पापग्रहसे दृष्ट हो तो अनिष्ट फल देता है। शुभ और पाप दोनों ग्रह यदि अपने शत्रुसे देखे जाते हों अथवा नीच राशिमें या अपने शत्रुकी राशिमें हों तो निष्फल हो जाते हैं। इसी प्रकार जो ग्रह अस्त हो वह भी अपने शुभ या अशुभ फलको नहीं देता है। ग्रह

१. भाव यह है कि तारा और ग्रहके बलको देखकर किसी कार्यको आरम्भ करनेका आदेश है। यदि अपनी तारा बलवती हो तो निर्बल चन्द्रमा भी बली माना जाता है तथा रविशुद्धि-विचारसे यदि अपने चन्द्रमा बली हों तो निर्बल सूर्य भी बली हो जाते हैं एवं सूर्यके बली होनेपर अन्य ग्रह अनिष्ट भी हो तो इष्टसाधक हो जाते हैं। इसलिये इन्हीं तीनों (तारा, चन्द्रमा तथा रवि) के बल देखे जाते हैं।

२. सब ग्रहोंके जितने शुभ स्थान कहे गये हैं, क्रमशः उतने ही उनके वेध-स्थान भी कहे गये हैं। जैसे सूर्य तीसरोंमें शुभ होता है; किंतु यदि नवेंमें कोई ग्रह हो तो विद्ध हो जाता है; इसी प्रकार अन्य शुभ-स्थान और वेध-स्थान समझने चाहिये।

३. भाव यह है कि ऊपर जो ग्रहोंके शुभ और वेध-स्थान कहे गये हैं, उनमें मनुष्योंको अपनी-अपनी जन्मराशिसे शुभ स्थानोंमें ग्रहोंके जानेसे शुभ फल और वेध-स्थानमें जानेसे अशुभ फल प्राप्त होते हैं। विशेषता यह है कि शुभ स्थानमें जानेपर भी यदि उन ग्रहोंके वेध-स्थानोंमें कोई अन्य ग्रह हो तो वे शुभ नहीं होते हैं, तथा शुभ और वेध-स्थानोंसे भिन्न स्थानमें रहनेपर ग्रह मध्यम फल देनेवाले होते हैं। इसी बातको संक्षेपमें आगे कहते हैं।

यदि दुष्ट-स्थानमें हो तो यत्पूर्वक उसकी शान्ति कर लेनी चाहिये। हानि और लाभ ग्रहोंके ही अधीन हैं, इसलिये ग्रहोंकी विशेष यत्पूर्वक पूजा करनी चाहिये॥ २७८—२८० १ ॥

सूर्य आदि नवग्रहोंकी तुष्टिके लिये क्रमशः मणि (पद्मराग-लाल), मुक्ता (मोती), विद्मु (मूँगा), मरकत (पत्रा), पुष्पराग (पोखराज), वज्र (हीरा), नीलम, गोमेद-रत्न एवं वैदूर्य (लहसुनिया) धारण करना चाहिये॥ २८१—२८२ ॥

(चन्द्र-शुद्धिमें विशेषता—) शुक्लपक्षके प्रथम दिन प्रतिपदामें जिस व्यक्तिके चन्द्रमा शुभ होते हैं, उसके लिये शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष दोनों ही शुभद होते हैं। अन्यथा (यदि शुक्ल प्रतिपदामें चन्द्रमा अशुभ हो तो) दोनों पक्ष अशुभ ही होते हैं। (पहले जो जन्मराशिसे २, ९, ५ वें चन्द्रमाको अशुभ कहा गया है, वह केवल कृष्णपक्षमें ही होता है।) शुक्ल पक्षमें २, ९ तथा ५ वें स्थानमें स्थित चन्द्रमा भी शुभप्रद ही होता है, यदि वह ६, ८, १२वें स्थानोंमें स्थित अन्य ग्रहोंसे विद्ध न हो॥ २८३—२८४ ॥

(तारा-विचार—) अपने-अपने जन्मनक्षत्रसे नौ नक्षत्रोंतक गिने तो क्रमशः १ जन्म, २ सम्पत्, ३ विपत्, ४ क्षेत्र, ५ प्रत्यरि, ६ साधक, ७ वध, ८ मित्र तथा ९ परम मित्र—इस प्रकार ९ ताराएँ होती हैं। फिर इसी प्रकार आगे गिननेपर १० से १८ तक तथा १९ से २७ तक क्रमशः वे ही ९ ताराएँ होंगी। इनमें १, ३, ५ और ७वीं तारा अपने नामके अनुसार अनिष्ट फल देनेवाली होती हैं। इन चारों ताराओंमें इनके दोषकी शान्तिके लिये ब्राह्मणोंको क्रमशः शाक, गुड़, लवण और

तिलसहित सुवर्णका दान देना चाहिये। कृष्णपक्षमें तारा बलवती होती है और शुक्लपक्षमें चन्द्रमा बलवान् होता है॥ २८५—२८७ ॥

(चन्द्रमाकी अवस्था—) प्रत्येक राशिमें चन्द्रमाकी बारह-बारह अवस्थाएँ होती हैं, जो यात्रा तथा विवाह आदि शुभ कार्योंमें अपने नामके सदृश ही फल देती हैं।

(अवस्थाका ज्ञान—) अभीष्ट दिनमें गत नक्षत्र-संख्याको ६० से गुणा करके उसमें वर्तमान नक्षत्रकी भुक्त (भयात) घड़ीको जोड़ दे, योगफलको चारसे गुणा करके गुणनफलमें ४५ का भाग दे। जो लब्धि आवे, उसमें पुनः १२ से भाग देनेपर १ आदि शेषके अनुसार मेषादि राशियोंमें क्रमशः प्रवास, नष्ट, मृत, जय, हास्य, रति, मुदा, सुसि, भुक्ति, ज्वर, कम्प और सुस्थिति—ये बारह गत अवस्थाएँ सूचित होती हैं*। ये अपने-अपने नामके समान फल देनेवाली होती हैं॥ २८८—२८९ ॥

(मेषादि लग्नोंमें कर्तव्य—) पट्ट-बन्धन (राजसिंहासन, राजमुकुट आदि धारण), यात्रा, उग्र कर्म, संधि, विग्रह, आभूषणधारण, धातु, खानसम्बन्धी कार्य और युद्धकर्म—ये सब मेष लग्नमें आरम्भ करनेसे सिद्ध होते हैं॥ २९० ॥ वृष लग्नमें विवाह मङ्गलकर्म, गृहारम्भ आदि स्थिर-कर्म, जलाशय, गृहप्रवेश, कृषि, वाणिज्य तथा पशुपालन आदि कार्य सिद्ध होते हैं॥ २९१ ॥ मिथुन लग्नमें कला, विज्ञान, शिल्प, आभूषण, युद्ध संश्रव (कीर्ति साधक कर्म), राज-कार्य, विवाह, राज्याभिषेक आदि कार्य करने चाहिये॥ २९२ ॥ कर्क लग्नमें वापी, कूप, तड़ाग, जल रोकनेके लिये बाँध, जल निकालनेके लिये नाली बनाना,

*जैसे रोहिणी नक्षत्रकी १२ घटी बीत जानेपर चन्द्रमाकी क्या अवस्था होगी? यह जानना है तो गत नक्षत्र-संख्या ३ को ६० से गुणा करके गुणनफल १८० में रोहिणीकी गत (भुक्त) घटी १२ जोड़नेसे १९२ हुआ। इसे चारसे गुणा करके गुणनफल ७६८ में ४५ का भाग देनेपर लब्धि १७ हुई। इसमें पुनः १२से भाग देनेपर शेष ५ रहा। अतः उस समय पाँच अवस्थाएँ गत होकर छठी अवस्था वर्तमान है। वृष राशिमें नष्ट आदिके क्रमसे गणना होती है; अतः उक्त गणनासे छठी अवस्था 'मुदा' सूचित होती है।

पौष्टिक कर्म, चित्रकारी तथा लेखन आदि कार्य करने चाहिये ॥ २९३ ॥ सिंह लग्नमें ईख तथा धान्यसम्बन्धी सब कार्य, वाणिज्य (क्रय-विक्रय), हाट, कृषिकर्म तथा सेवा आदि कर्म, स्थिर कार्य, साहस, युद्ध तथा आभूषण बनाना आदि कार्य सम्पन्न होते हैं ॥ २९४ ॥ कन्या लग्नमें विद्यारम्भ, शिल्पकर्म, ओषधिनिर्माण एवं सेवन, आभूषण-निर्माण और उसका धारण, समस्त चर और स्थिर कार्य, पौष्टिक कर्म तथा विवाहादि समस्त शुभ कार्य करने चाहिये ॥ २९५ ॥ तुला लग्नमें कृषिकर्म, व्यापार, यात्रा, पशुपालन, विवाह-उपनयनादि संस्कार तथा तौलसम्बन्धी जितने कार्य हैं, वे सब सिद्ध होते हैं ॥ २९६ ॥ वृश्चिक लग्नमें गृहारम्भादि समस्त स्थिर कार्य, राजसेवा, राज्याभिषेक, गोपनीय और स्थिर कर्मोंका आरम्भ करना चाहिये ॥ २९७ ॥ धनु लग्नमें उपनयन, विवाह, यात्रा, अश्वकृत्य, गजकृत्य, शिल्पकला तथा चर, स्थिर और मिश्रित कार्योंको करना चाहिये ॥ २९८ ॥ मकर लग्नमें धनुष बनाना, उसमें प्रत्यञ्चा बाँधना, बाण छोड़ना, अस्त्र बनाना और चलाना, कृषि, गोपालन, अश्वकृत्य, गजकृत्य तथा पशुओंका क्रय-विक्रय और दास आदिकी नियुक्ति—ये सब कार्य करने चाहिये ॥ २९९ ॥ कुम्भ लग्नमें कृषि, वाणिज्य, पशुपालन, जलाशय, शिल्पकर्म, कला आदि, जलपात्र (कलश आदि) तथा अस्त्र-शस्त्रका निर्माण आदि कार्य करना चाहिये ॥ ३०० ॥ मीन लग्नमें उपनयन, विवाह, राज्याभिषेक, जलाशयकी प्रतिष्ठा, गृहप्रवेश, भूषण, जलपात्रनिर्माण तथा अश्वसम्बन्धी कृत्य शुभ होते हैं ॥ ३०१ ॥

इस प्रकार मेषादि लग्नोंके शुद्ध (शुभ स्वामीसे युक्त या दृष्ट) रहनेसे शुभ कार्य सिद्ध होते हैं। पापग्रहसे युक्त या दृष्ट लग्न हो तो उसमें केवल क्रूर कर्म ही सिद्ध होते हैं, शुभ कर्म नहीं ॥ ३०२ ॥

वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, मीन, तुला और धनु—ये शुभग्रहकी राशि होनेके कारण शुभ हैं

तथा अन्य (मेष, सिंह, वृश्चिक, मकर और कुम्भ—ये) पापराशियाँ हैं ॥ ३०३ ॥ लग्नपर जैसे (शुभ या अशुभ) ग्रहोंका योग या दृष्टि हो उसके अनुसार ही लग्न अपना फल देता है। यदि लग्नमें ग्रहके योग या दृष्टिका अभाव हो तो लग्न अपने स्वभावके अनुकूल फल देता है ॥ ३०४ ॥ किसी लग्नके आरम्भमें कार्यका आरम्भ होनेपर उसका पूर्ण फल मिलता है। लग्नके मध्यमें मध्यम और अन्तमें अल्प फल प्राप्त होता है। यह बात सब लग्नोंमें समझनी चाहिये ॥ ३०५ ॥ कार्यकर्ताके लिये सर्वत्र पहले लग्नबल, उसके बाद चन्द्रबल देखना चाहिये। चन्द्रमा यदि बली हो और सप्तम भावमें स्थित हो तो सब ग्रह बलवान् समझे जाते हैं ॥ ३०६ ॥ चन्द्रमाका बल आधार और अन्य ग्रहोंके बल आधेय हैं। आधारके बलपर ही आधेय स्थिर रहता है ॥ ३०७ ॥ यदि चन्द्रमा शुभदायक हो तो सब ग्रह शुभ फल देनेवाले होते हैं। यदि चन्द्रमा अशुभ हो तो अन्य सब ग्रह भी अशुभ फल देनेवाले हो जाते हैं। लेकिन धन-स्थानके स्वामीको छोड़कर ही यह नियम लागू होता है; क्योंकि यदि धनेश शुभ हो तो वह चन्द्रमाके अशुभ होनेपर भी अपने शुभ फलको ही देता है ॥ ३०८ ॥

लग्नके जितने अंश उद्दित हो गये (क्षितिजसे ऊपर आ गये) हों, उनमें जो ग्रह हो वह लग्नके फलको देता है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि लग्नके जितने भावांश हों, उनके भीतर रहनेवाला ग्रह लग्नभावका फल देता है तथा उससे आगे-पीछे हो तो लग्नराशिमें रहता हुआ भी आगे-पीछेके भावका फल देता है। लग्नके कथित अंशसे जो ग्रह आगे बढ़ जाता है, वह द्वितीय भावका फल देता है। इस प्रकार सब भावोंमें ग्रहोंकी स्थिति और फलकी कल्पना करनी चाहिये। सब गुणोंसे युक्त लग्न तो थोड़े दिनोंमें नहीं मिल सकता; अतः स्वल्प दोष और अधिक गुणोंसे युक्त लग्नको ही सब कार्योंमें सर्वदा ग्रहण करना

चाहिये; क्योंकि अधिक दोषोंसे युक्त कालको ब्रह्माजी भी शुद्ध नहीं कर सकते; इसलिये थोड़े दोषसे युक्त होनेपर भी अधिक गुणवाला लग्न-काल हितकर होता है ॥ ३०९—३११ ॥

(स्त्रियोंके प्रथम रजोदर्शन—) अमावास्या, रिक्ता (४, ९, १४), ८, ६, १२ और प्रतिपदा—इन तिथियोंमें परिघ योगके पूर्वार्धमें, व्यतीपात और वैधुतिमें, संध्याके समय, सूर्य और चन्द्रके ग्रहणकालमें तथा विष्टि (भद्रा)–में स्त्रीका प्रथम मासिकधर्म अशुभ होता है। रवि आदि वारोंमें प्रथम रजोदर्शन हो तो वह स्त्री क्रमशः रोगयुक्ता, पतिकी प्रिया, दुःखयुक्ता, पुत्रवती, भोगवती, पतिव्रता एवं क्लेशयुक्त होती है ॥ ३१२—३१४ ॥ भरणी, कृत्तिका, आद्रा, पूर्वाफाल्युनी, आश्लेषा, विशाखा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़ और पूर्व भाद्रपद—ये नक्षत्र तथा चैत्र, कार्तिक, आषाढ़ और पौष—ये मास प्रथम मासिकधर्ममें अनिष्टकारक कहे गये हैं। भद्रा, सूर्यकी संक्रान्ति, निद्रा-अवस्था—रात्रिकाल, सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहण—ये सब प्रथम मासिकधर्ममें शुभ नहीं हैं। अशुभ योग, निन्द्य नक्षत्र तथा निन्दित दिनमें प्रथम मासिकधर्म हो तो वह स्त्री कुलटा स्वभाववाली होती है ॥ ३१५—३१६ ॥ इसलिये इन सब दोषोंकी शान्तिके लिये विज्ञ पुरुषको चाहिये कि वह तिल, घृत और दूर्वासे गायत्री-मन्त्रद्वारा १०८ बार आहुति करे तथा सुवर्णदान, गोदान एवं तिलदान करे ॥ ३१७ ॥

(गर्भाधान-संस्कार—) मासिकधर्मके आरम्भ-से चार रात्रियाँ गर्भाधानमें त्याज्य हैं। सम रात्रियोंमें जब चन्द्रमा विषमराशि और विषम नवमांशमें हो, लग्नपर पुरुषग्रह (रवि, मङ्गल तथा बृहस्पति)–की दृष्टि हो तो पुत्रार्थी पुरुष सम (२, ४, ६, ८, १०, १२) तिथियोंमें, रेवती, मूल, आश्लेषा और मघा—इन नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें उपवीती और अनग्र (सवस्त्र) होकर स्त्रीका सङ्ग करे ॥ ३१८—३१९ ॥

(पुंसवन और सीमन्तोन्नयन—) प्रथम गर्भ स्थिर हो जानेपर तृतीय या द्वितीय मासमें पुंसवन कर्म करे। उसी प्रकार ४, ६ या ८ वें मासमें उस मासके स्वामी जब बली हों तथा स्त्री-पुरुष दोनोंको चन्द्रमा और ताराका बल प्राप्त हो तो सीमन्त-कर्म करना चाहिये। रिक्ता तिथि और पर्वको छोड़कर अन्य तिथियोंमें ही उसको करनेकी विधि है। मङ्गल, बृहस्पति तथा रविवारमें, तीक्ष्ण और मिश्रसंज्ञक नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें जब चन्द्रमा विषमराशि और विषमराशिके नवमांशमें हो, लग्नसे अष्टम स्थान शुद्ध (ग्रहवर्जित) हो, स्त्री-पुरुषके जन्म-लग्नसे अष्टम राशिलग्न न हो तथा लग्नमें शुभग्रहका योग और दृष्टि हो, पापग्रहकी दृष्टि न हो एवं शुभग्रह लग्नसे ५, १, ४, ७, ९, १० में और पापग्रह ६, ११ तथा ३ में हों एवं चन्द्रमा १२, ८ तथा लग्नसे अन्य स्थानोंमें हो तो उक्त दोनों कर्म (पुंसवन और सीमन्तोन्नयन) करने चाहिये ॥ ३२०—३२४ ॥ यदि एक भी बलवान् पापग्रह लग्नसे १२, ५ और ८ भावमें हो तो वह सीमन्तिनी स्त्री अथवा उसके गर्भका नाश कर देता है ॥ ३२५ ॥

(जातकर्म और नामकर्म—) जन्मके समयमें ही जातकर्म कर लेना चाहिये। किसी प्रतिबन्धकवश उस समय न कर सके तो सूतक बीतनेपर भी उक्त लग्नमें पितरोंका पूजन (नान्दीमुख कर्म) करके बालकका जातकर्म-संस्कार अवश्य करना चाहिये एवं सूतक बीतनेपर अपने-अपने कुलकी रीतिके अनुसार बालकका नामकरण-संस्कार भी करना चाहिये। भलीभाँति सोच-विचारकर देवता आदिका वाचक, मङ्गलदायक एवं उत्तम नाम रखना चाहिये। यदि देश-कालादि-जन्य किसी प्रतिबन्धसे समयपर कर्म न हो सके तो समयके बाद जब गुरु और शुक्रका उदय हो, तब उत्तरायणमें चर, स्थिर, मृदु और क्षिप्र संज्ञक नक्षत्रोंमें शुभग्रहके बार (सोम, बुध, गुरु और शुक्र)–में पिता और

बालकके चन्द्रबल और ताराबल प्राप्त होनेपर शुभ लग्र और शुभ नवांशमें, लग्रसे अष्टम भावमें कोई ग्रह न हो तब बालकका जातकर्म और नामकर्म-संस्कार करने चाहिये ॥ ३२६—३२९ १ ॥

(अन्न-प्राशन—) बालकोंका जन्मसे ६वें या ८वें मासमें और बालिकाओंका जन्मसे ५वें या ७वें मासमें अन्नप्राशनकर्म शुभ होता है। परंतु रिक्ता (४, ९, १४), तिथिक्षय, नन्दा (१, ६, ११), १२, ८—इन तिथियोंको छोड़कर (अन्य तिथियोंमें) शुभ दिनमें चर, स्थिर, मृदु और क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्रमें लग्रसे अष्टम और दशम स्थान शुद्ध (ग्रहरहित) होनेपर शुभ नवांशयुक्त शुभ राशिलग्रमें, लग्रपर शुभग्रहका योग या दृष्टि होनेपर जब पापग्रह लग्रसे ३, ६, ११ भावमें और शुभग्रह १, ४, ७, १०, ५, ९ भावमें हो तथा चन्द्रमा १२, ६, ८ स्थानसे भिन्न स्थानमें हो तो पूर्वाह्नसमयमें बालकोंका अन्नप्राशनकर्म शुभ होता है ॥ ३३०—३३४ ॥

(चूडाकरण—) बालकोंके जन्मसमयसे तीसरे या पाँचवें वर्षमें अथवा अपने कुलके आचार-व्यवहारके अनुसार अन्य वर्षमासमें भी उत्तरायणमें, जब गुरु और शुक्र उदित हों (अस्त न हों), पर्व तथा रिक्तासे अन्य तिथियोंमें, शुक्र, गुरु, सोमवारमें, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, मृगशिरा, ज्येष्ठा, रेवती, हस्त, चित्रा, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा—इन नक्षत्रोंमें अपने-अपने गृहासूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार चूडाकरणकर्म करना चाहिये। राजाओंके पट्टबन्धन, बालकोंके चूडाकरण, अन्नप्राशन और उपनयनमें जन्म-नक्षत्र प्रशस्त (उत्तम) होता है। अन्य कर्मोंमें जन्म-नक्षत्र अशुभ कहा गया है। लग्रसे अष्टम स्थान शुद्ध हो, शुभ राशि लग्र हो, उसमें शुभग्रहका नवमांश हो तथा जन्मराशि या जन्मलग्रसे अष्टम राशिलग्र न हो, चन्द्रमा

लग्रसे ६, ८, १२ स्थानोंसे भिन्न स्थानोंमें हो, शुभग्रह २, ५, ९, १, ४, ७, १० भावमें हों तथा पापग्रह ३, ६, ११ भावमें हों तो चूडाकरण कर्म प्रशस्त होता है ॥ ३३५—३३९ १ ॥

(सामान्य क्षौर-कर्म—) तेल लगाकर तथा प्रातः और सायं संध्याके समयमें क्षौर नहीं कराना चाहिये। इसी प्रकार मङ्गलवारको तथा रात्रिमें भी क्षौरका निषेध है। दिनमें भी भोजनके बाद क्षौर नहीं कराना चाहिये। युद्धयात्रामें भी क्षौर कराना वर्जित है। शय्यापर बैठकर या चन्दनादि लगाकर क्षौर नहीं कराना चाहिये। जिस दिन कहींकी यात्रा करनी हो, उस दिन भी क्षौर न करावे तथा क्षौर करानेके बाद उससे नवें दिन भी क्षौर न करावे। राजाओंके लिये क्षौर करानेके बाद उससे ५ वें-५ वें दिन क्षौर करानेका विधान है। चूडाकरणमें जो नक्षत्र-वार आदि कहे गये हैं, उन्हीं नक्षत्रों और वार आदिमें अथवा कभी भी क्षौरमें विहित नक्षत्र और वारके उदय (मुहूर्त एवं क्षण)-में क्षौर कराना शुभ होता है ॥ ३४०—३४१ १ ॥

(क्षौरकर्ममें विशेष—) राजा अथवा ब्राह्मणोंकी आज्ञासे यज्ञमें, माता-पिताके मरणमें, जेलसे छूटनेपर तथा विवाहके अवसरपर निषिद्ध नक्षत्र, वार एवं तिथि आदिमें भी क्षौर कराना शुभप्रद कहा गया है। समस्त मङ्गल कार्योंमें, मङ्गलार्थ इष्ट देवताके समीप क्षुरोंको अर्पण करना चाहिये* ॥ ३४२—३४३ ॥

(उपनयन—) जिस दिन उपनयनका मुहूर्त स्थिर हो, उससे पूर्व ९ वें, ७ वें, ५ वें या तीसरे दिन उपनयनके लिये विहित नक्षत्र (या उस नक्षत्रके मुहूर्त)-में शुभ वार और शुभ लग्रमें अपने घरोंको चँदोवा, पताका और तोरण आदिसे अच्छी तरह अलंकृत करके, ब्राह्मणोंद्वारा आशीर्वचन, पुण्याहवाचन आदि पुण्य कार्य

*चूडाकरण या उपनयनमें क्षुरसे ही कार्य होता है, इसलिये उसके रक्षार्थ लोग अपने-अपने कुलदेवताके पास क्षुरको समर्पण करते हैं।

कराकर, सौभाग्यवती स्त्रियोंके साथ, माङ्गलिक बाजा बजवाते और मङ्गलगान करते-कराते हुए घरसे पूर्वोत्तर-दिशा (ईशानकोण) - में जाकर पवित्र स्थानसे चिकनी मिट्टी खोदकर ले ले और पुनः उसी प्रकार गीत-वाद्यके साथ घर लौट आवे। वहाँ मिट्टी या बाँसके बर्तनमें उस मिट्टीको रखकर उसमें अनेक वस्तुओंसे युक्त और भाँति-भाँतिके पुष्पोंसे सुशोभित पवित्र जल डाले। (इसी प्रकार और भी अपने कुलके अनुरूप आचारका पालन करे) ॥ ३४४—३४७ ॥ गर्भाधान अथवा जन्मसे आठवें वर्षमें ब्राह्मण-बालकोंका, ग्यारहवें वर्षमें क्षत्रिय बालकोंका और बारहवें वर्षमें वैश्य-बालकोंका मौज़ीबन्धन (यज्ञोपवीत-संस्कार) होना चाहिये ॥ ३४८ ॥ जन्मसे पाँचवें वर्षमें यज्ञोपवीत-संस्कार करनेपर बालक वेद-शास्त्र-विशारद तथा श्रीसम्पत्र होता है। इसलिये उसमें ब्राह्मण-बालकका उपनयन-संस्कार करना चाहिये ॥ ३४९ ॥ शुक्र और बृहस्पति निर्बल हों तब भी वे बालकके लिये शुभदायक होते हैं। अतः शास्त्रोक्त वर्षमें उपनयनसंस्कार अवश्य करना चाहिये। शास्त्रने जिस वर्षमें उपनयनकी आज्ञा नहीं दी है, उसमें वह संस्कार नहीं करना चाहिये ॥ ३५० ॥ गुरु, शुक्र तथा अपने वेदकी शाखाके स्वामी—ये दृश्य हों—अस्त न हुए हों तो उत्तरायणमें उपनयनसंस्कार करना उचित है। बृहस्पति, शुक्र, मङ्गल और बुध—ये क्रमशः ऋक्, यजुः, साम और अथर्ववेदके अधिपति हैं ॥ ३५१ ॥ शरद्, ग्रीष्म और वसन्त—ये व्युत्क्रमसे द्विजातियोंके उपनयनका मुख्य काल हैं अर्थात् शरद-ऋतु वैश्योंके, ग्रीष्म क्षत्रियोंके और वसन्त ब्राह्मणोंके उपनयनका मुख्य काल है। माघ आदि पाँच महीनोंमें उन सबके लिये उपनयनका साधारण काल है ॥ ३५२ ॥ माघ मासमें जिसका उपनयन हो वह अपने कुलोचित आचार तथा धर्मका ज्ञाता होता है। फाल्गुनमें यज्ञोपवीत धारण करनेवाला पुरुष विधिज्ञ तथा धनवान्

होता है। चैत्रमें उपनयन होनेपर ब्रह्मचारी वेद-वेदाङ्गोंका पारगामी विद्वान् होता है ॥ ३५३ ॥ वैशाख मासमें जिसका उपनयन हो, वह धनवान् तथा वेद, शास्त्र एवं विविध विद्याओंमें निपुण होता है और ज्येष्ठमें यज्ञोपवीत लेनेवाला द्विज विधिज्ञोंमें श्रेष्ठ और बलवान् होता है ॥ ३५४ ॥

शुक्लपक्षमें द्वितीया, पञ्चमी, त्रयोदशी, दशमी और सप्तमी तिथियाँ यज्ञोपवीतसंस्कारके लिये ग्राह्य हैं। एकादशी, षष्ठी और द्वादशी—ये तिथियाँ अधिक श्रेष्ठ हैं। शेष तिथियोंको मध्यम माना गया है। कृष्णपक्षमें द्वितीया, तृतीया और पञ्चमी ग्राह्य हैं। अन्य तिथियाँ अत्यन्त निन्दित हैं ॥ ३५५-३५६ ॥ हस्त, चित्रा, स्वाती, रेवती, पुष्य, आर्द्रा, पुनर्वसु, तीनों उत्तरा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी, अनुराधा तथा रोहिणी—ये नक्षत्र उपनयन-संस्कारके लिये उत्तम हैं ॥ ३५७ ॥ जन्मनक्षत्रसे दसवाँ 'कर्म' संज्ञक है, सोलहवाँ 'संघात' नक्षत्र है, अठारहवाँ 'समुदय' नक्षत्र है, तेर्इसवाँ 'विनाश' कारक है और पचीसवाँ 'मानस' है। इनमें शुभ कर्म नहीं आरम्भ करने चाहिये। गुरु, बुध और शुक्र—इन तीनोंके वार उपनयनमें प्रशस्त हैं। सोमवार और रविवार ये मध्यम माने गये हैं। शेष दो वार मङ्गल और शनैश्चर निन्दित हैं। दिनके तीन भाग करके उसके आदि भागमें देव-सम्बन्धी कर्म (यज्ञ-पूजनादि) करने चाहिये ॥ ३५८—३६० ॥ द्वितीय भागमें मनुष्य-सम्बन्धी कार्य (अतिथि-सत्कार आदि) करनेका विधान है और तृतीय भागमें पैतृक कर्म (श्राद्ध-तर्पणादि)-का अनुष्ठान करना चाहिये। गुरु, शुक्र और अपनी वैदिक शाखाके अधिपति अपनी नीच राशिमें या उसके किसी अंशमें हों अथवा अपने शत्रुकी राशिमें या उसके किसी अंशमें स्थित हों तो उस समय यज्ञोपवीत लेनेवाला द्विज कला और शीलसे रहित होता है। इसी प्रकार अपनी शाखाके अधिपति, गुरु एवं शुक्र यदि

अपने अधिशत्रु-गृहमें या उसके किसी अंशमें स्थित हों तो ब्रह्मचर्यव्रत (यज्ञोपवीत) ग्रहण करनेवाला द्विज महापातकी होता है। गुरु, शुक्र एवं अपनी शाखाके अधिपति ग्रह यदि अपनी उच्च राशि या उसके किसी अंशमें हों, अपनी राशि या उसके किसी अंशमें हों अथवा केन्द्र (१, ४, ७, १०) या त्रिकोण (५, ९)-में स्थित हों तो उस समय यज्ञोपवीत लेनेवाला ब्रह्मचारी अत्यन्त धनवान् तथा वेद-वेदाङ्गोंका पारङ्गत विद्वान् होता है॥ ३६१—३६४॥ यदि गुरु, शुक्र अथवा शाखाधिपति परमोच्च स्थानमें हों और मृत्यु (आठवाँ) स्थान शुद्ध हो तो उस समय ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण करनेवाला द्विज वेद-शास्त्रमें 'निष्णात' होता है॥ ३६५॥ गुरु, शुक्र अथवा शाखाधिपति यदि अपने अधिमित्रगृहमें या उसके उच्च गृहमें अथवा उसके अंशमें स्थित हों तो यज्ञोपवीत लेनेवाला ब्रह्मचारी विद्या तथा धनसे सम्पन्न होता है॥ ३६६॥ शाखाधिपतिका दिन हो, बालकको शाखाधिपतिका बल प्राप्त हो तथा शाखाधिपतिका ही लग्र हो—ये तीन बातें उपनयन-संस्कारमें दुर्लभ हैं॥ ३६७॥ उसके चतुर्थांशमें चन्द्रमा हों तो यज्ञोपवीत लेनेवाला बालक विद्यामें निपुण होता है; किंतु यदि वह पापग्रहके अंशमें अथवा अपने अंशमें हो तो यज्ञोपवीती द्विज सदा दरिद्र और दुःखी रहता है॥ ३६८॥ जब श्रवणादि नक्षत्रमें विद्यमान चन्द्रमा कर्कके अंश-विशेषमें स्थित हो तो ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण करनेवाला द्विज वेद, शास्त्र तथा धन-धान्य-समृद्धिसे सम्पन्न होता है॥ ३६९॥ शुभ लग्र हो, शुभग्रहका अंश चल रहा हो, मृत्युस्थान शुद्ध हो तथा लग्र और मृत्यु-स्थान शुभग्रहोंसे संयुक्त हो अथवा उनपर शुभग्रहोंकी दृष्टि हो, अभीष्ट स्थानमें स्थित बृहस्पति, सूर्य और चन्द्रमा आदि पाँच बलवान् ग्रहोंसे लग्रस्थान संयुक्त या दृष्ट हो अथवा स्थान आदिके बलसे पूर्ण चार ही शुभग्रहयुक्त ग्रहोंद्वारा लग्रस्थान देखा जाता हो और वह इक्कीस महादोषोंसे रहित हो

तो यज्ञोपवीत लेना शुभ है। शुभग्रहोंसे संयुक्त या दृष्ट सभी राशियाँ शुभ हैं॥ ३७०—३७२॥ वे शुभ राशियाँ शुभ ग्रहके नवांशमें हों तो ब्रतबन्ध (यज्ञोपवीत)-में ग्राह्य हैं, किंतु कर्कराशिका अंश शुभ ग्रहसे युक्त तथा दृष्ट हो तो भी कभी ग्रहण करने योग्य नहीं है॥ ३७३॥ इसलिये वृष और मिथुनके अंश तथा तुला और कन्याके अंश शुभ हैं। इस प्रकार लग्रगत नवांश होनेपर ब्रतबन्ध उत्तम बताया गया है॥ ३७४॥ तीसरे, छठे और ग्यारहवें स्थानमें पापग्रह हों, छठा, आठवाँ और बारहवाँ स्थान शुभग्रहसे खाली हो और चन्द्रमा छठे, आठवें, लग्र तथा बारहवें स्थानमें न हों तो उपनयन शुभ होता है॥ ३७५॥ चन्द्रमा अपने उच्च स्थानमें होकर भी यदि व्रती पुरुषके ब्रतबन्ध-मुहूर्त-सम्बन्धी लग्रमें स्थित हो तो वह उस बालकको निर्धन और क्षयका रोगी बना देता है॥ ३७६॥ यदि सूर्य केन्द्रस्थानमें प्रकाशित हों तो यज्ञोपवीत लेनेवाले बालकोंके पिताका नाश हो जाता है। पाँच दोषोंसे रहित लग्र उपनयनमें शुभदायक होता है॥ ३७७॥ वसन्त-ऋतुके सिवा और कभी कृष्णपक्षमें, गलग्रहमें, अनध्यायके दिन, भद्रामें तथा षष्ठीको बालकका उपनयन-संस्कार नहीं होना चाहिये॥ ३७८॥ त्रयोदशीसे लेकर चार, सप्तमीसे लेकर तीन दिन और चतुर्थी ये आठ गलग्रह अशुभ कहे गये हैं॥ ३७९॥

(क्षुरिका-बन्धनकर्म—) अब मैं क्षत्रियोंके लिये क्षुरिका-बन्धन कर्मका वर्णन करूँगा, जो विवाहके पहले सम्पन्न होता है। विवाहके लिये कहे हुए मासोंमें, शुक्लपक्षमें, जबकि बृहस्पति, शुक्र और मङ्गल अस्त न हों, चन्द्रमा और ताराका बल प्राप्त हो, उस समय मौज़ीबन्धनके लिये बतायी हुई तिथियोंमें, मङ्गलवारको छोड़कर शेष सभी दिनोंमें यह कर्म किया जाता है। कर्ताका लग्रगत नवांश यदि अष्टमोदयसे रहित न हो, अष्टम शुद्ध हो; चन्द्रमा छठे, आठवें और बारहवेंमें

न होकर लग्रमें स्थित हों; शुभग्रह दूसरे, पाँचवें, नवें, लग्र, चतुर्थ, सप्तम और दशम स्थानोंमें हों; पापग्रह तीसरे, ग्यारहवें और छठे स्थानमें हों तो देवताओं और पितरोंकी पूजा करके क्षुरिका-बन्धनकर्म करना चाहिये ॥ ३८०—३८३ ॥ पहले देवताओंके समीप क्षुरिका (कटार)-की भलीभाँति पूजा करे। तत्पश्चात् शुभ लक्षणोंसे युक्त उस क्षुरिकाको उत्तम लग्रमें अपनी कटिमें बाँधे ॥ ३८४ ॥ क्षुरिकाकी लम्बाईके आधे (मध्यभाग) पर जो विस्तारमान हो उससे क्षुरिकाके विभाग करे। वे छेदखण्ड (विभाग) क्रमसे ध्वज आदि आय कहलाते हैं। उनकी आठ संज्ञाएँ हैं—ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वा, वृष, गर्दभ, गज और ध्वाङ्क्ष। ध्वज नामक आयमें शत्रुका नाश होता है ॥ ३८५ ॥ धूम्र आयमें घात, सिंह नामक आयमें जय, श्वा (कुत्ता) नामक आयमें रोग, वृष आयमें धनलाभ, गर्दभ आयमें अत्यन्त दुःखकी प्राप्ति, गज आयमें अत्यन्त प्रसन्नता और ध्वाङ्क्ष नामक आयमें धनका नाश होता है। खडग और छुरीके मापको अपने अङ्गुलसे गिने ॥ ३८६—३८७ ॥ मापके अङ्गुलोंमेंसे ग्यारहसे अधिक हो तो ग्यारह घटा दे। फिर शेष अङ्गुलोंके क्रमशः फल इस प्रकार हैं ॥ ३८८ ॥ पुत्र-लाभ, शत्रुवध, स्त्रीलाभ, शुभगमन, अर्थहानि, अर्थवृद्धि, प्रीति, सिद्धि, जय और स्तुति ॥ ३८९ ॥

छुरी या तलवारमें यदि ध्वज अथवा वृष आय-विभागके पूर्वभाग *में नष्ट (भङ्ग) हो, तथा सिंह और गज-आयके मध्यभागमें तथा कुकुर और काक-आयके अन्तिम भागमें एवं धूम्र और गर्दभ आयके अन्तिम भागमें नष्ट हो जाय तो शुभ नहीं होता है। (अतः ऐसी छुरी या तलवारका परित्याग कर देना चाहिये; यह बात अर्थतः सिद्ध होती है) ॥ ३९० ॥

(समावर्तन—) उत्तरायणमें जब गुरु और शुक्र दोनों उदित हों, चित्रा, उत्तराफाल्युनी, उत्तराषाढ़,

उत्तर भाद्रपद, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, श्रवण, अनुराधा, रोहिणी—ये नक्षत्र हों तथा रवि, सोम, बुध, गुरु और शुक्रवारमेंसे कोई वार हो तो इन्हीं रवि आदि पाँच ग्रहोंकी राशि, लग्र और नवमांशमें, प्रतिपदा, पर्व, रिक्ता, अमावास्या, तथा सप्तमीसे तीन तिथि—इन सब तिथियोंको छोड़कर अन्य तिथियोंमें गुरुकुलसे अध्ययन समाप्त करके घरको लौटेवाले जितेन्द्रिय द्विजकुमारका समावर्तन-संस्कार (मुण्डन-हवन आदि) करना चाहिये ॥ ३९१—३९३ ॥

(विवाहकथन—) विप्रवर! सब आश्रमोंमें यह गृहस्थाश्रम ही श्रेष्ठ है। उसमें भी जब सुशीला धर्मपत्नी प्राप्त हो तभी सुख होता है। स्त्रीको सुशीलताकी प्राप्ति तभी होती है, जब विवाहकालिक लग्र शुभ हो। इसलिये मैं साक्षात् ब्रह्माजीद्वारा कथित लग्र-शुद्धिको विचार करके कहता हूँ ॥ ३९४—३९५ ॥

प्रथमतः कन्यादान करनेवालोंको चाहिये कि वे किसी शुभ दिनको अपनी अङ्गलिमें पान, फूल, फल और द्रव्य आदि लेकर ज्यौतिषशास्त्रके ज्ञाता समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, प्रसन्नचित्त तथा सुखपूर्वक बैठे हुए विद्वान् ब्राह्मणके समीप जाय और उन्हें देवताके समान मानकर भक्तिपूर्वक प्रणाम करके अपनी कन्याके विवाह-लग्रके विषयमें पूछे ॥ ३९६—३९७ ॥

(ज्यौतिषीको चाहिये कि उस समय लग्र और ग्रह स्पष्ट करके देखे—) यदि प्रश्नलग्रमें पापग्रह हो या लग्रसे सप्तम भावमें मङ्गल हो तो जिसके लिये प्रश्न किया गया है, उस कन्या और वरको ८ वर्षके भीतर ही घातक अरिष्ट प्राप्त होगा, ऐसा समझना चाहिये। यदि लग्रमें चन्द्रमा और उससे सप्तम भावमें मङ्गल हो तो ८ वर्षके भीतर ही उस कन्याके पतिको घातक कष्ट प्राप्त होगा—ऐसा समझे। यदि लग्रसे पञ्चम भावमें

* छुरी या तलवारकी मुट्ठीकी ओर पूर्व और अग्रकी ओर अन्त समझना चाहिये।

पापग्रह हो और वह नीचराशिमें पापग्रहसे देखा जाता हो तो वह कन्या कुलटा स्वभाववाली अथवा मृतवत्सा होती है, इसमें संशय नहीं है ॥ ३९८—४०० ॥ यदि प्रश्नलग्नसे ३, ५, ७, ११ और १० वें भावमें चन्द्रमा हो तथा उसपर गुरुकी दृष्टि हो तो समझना चाहिये कि उस कन्याको शीघ्र ही पतिकी प्राप्ति होगी ॥ ४०१ ॥ यदि प्रश्नलग्नमें तुला, वृष या कर्क राशि हो तथा वह शुक्र और चन्द्रमासे युक्त हो तो विवाहके विषयमें प्रश्न करनेपर वरके लिये कन्या (पत्नी) लाभ होता है अथवा सम राशि लग्न हो, उसमें समराशिका ही द्रेष्काण हो और सम राशिका नवमांश तथा उसपर चन्द्रमा और शुक्रकी दृष्टि हो तो वरको पत्नीकी प्राप्ति होती है ॥ ४०२—४०३ ॥

इसी प्रकार यदि प्रश्नलग्नमें पुरुषराशि और पुरुषराशिका नवमांश हो तथा उसपर पुरुषग्रह (रवि, मङ्गल और गुरु)-की दृष्टि हो तो जिनके लिये प्रश्न किया गया है, उन कन्याओंको पतिकी प्राप्ति होती है ॥ ४०४ ॥

यदि प्रश्नसमयमें कृष्णपक्ष हो और चन्द्रमा सम राशिमें होकर लग्नसे छठे या आठवें भावमें पापग्रहसे देखा जाता हो तो (निकट भविष्यमें) विवाह-सम्बन्ध नहीं हो पाता है ॥ ४०५ ॥ यदि प्रश्नकालमें शुभ निमित्त और शुभ शकुन देखने-सुननेमें आवें तो वर-कन्याके लिये शुभ होता है तथा यदि निमित्त एवं शकुन आदि अशुभ हों तो अशुभ फल होता है ॥ ४०६ ॥

(कन्या-वरण—) पञ्चाङ्ग (तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण)-से शुद्ध दिनमें यदि वर और कन्याके चन्द्रबल तथा ताराबल प्राप्त हों तो विवाहके लिये विहित नक्षत्र या उसके मुहूर्तमें वरको चाहिये कि अपने कुलके श्रेष्ठ जनोंके साथ गीत, वाद्यकी ध्वनि और ब्राह्मणोंके आशीर्वचन (शान्ति-मन्त्रपाठ) आदिसे युक्त होकर विविध आभूषण, शुभ वस्त्र, फूल, फल, पान, अक्षत, चन्दन और सुगन्धादि

लेकर कन्याके घरमें जाय और विनीत भावसे कन्याका वरण करे। (कन्याका वरण वरके बड़े भाई अथवा गुरुजनको करना चाहिये।) उसके बाद कन्याका पिता प्रसन्नचित्त होकर अभीष्ट वरको कन्यादान करे ॥ ४०७—४०९ ॥

कन्याके पिताको चाहिये कि अपनी कन्यासे श्रेष्ठ, कुल, शील, वयस्, रूप, धन और विद्यासे युक्त वरको वरके वयस्से छोटी रूपवती अपनी कन्या दे। कन्यादानसे पूर्व सब गुणोंकी आश्रयभूता, तीनों लोकोंमें सबसे अधिक सुन्दरी, दिव्य गन्ध, माला और वस्त्रसे सुशोभित, सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे युक्त तथा सब आभूषणोंसे मणिडत, अमूल्य मणिमालाओंसे दसों दिशाओंको प्रकाशित करती हुई, सहस्रों दिव्य सहेलियोंसे सुसेविता सर्वगुणसम्पन्ना शची (इन्द्राणी)-देवीकी पूजा करके उनसे प्रार्थना करे—‘हे देवि ! हे इन्द्राणि ! हे देवेन्द्रप्रियभामिनि ! आपको मेरा नमस्कार है। देवि ! इस विवाहमें आप सौभाग्य, आरोग्य और पुत्र प्रदान करें।’ इस प्रकार प्रार्थना करके पूजाके बाद विधानपूर्वक ऊपर कहे हुए गुणयुक्त वरके लिये अपनी कुमारी कन्याका दान करे ॥ ४१०—४१४ ॥

(कन्या-वरकी वर्षशुद्धि—) कन्याके जन्मसमयसे सम वर्षोंमें और वरके जन्मसमयसे विषम वर्षोंमें होनेवाला विवाह उन दोनोंके प्रेम और प्रसन्नताको बढ़ानेवाला होता है। इससे विपरीत (कन्याके विषम और वरके सम वर्षमें) विवाह वर-कन्या दोनोंके लिये घातक होता है ॥ ४१५ ॥

(विवाहविहित मास—) माघ, फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ—ये चार मास विवाहमें श्रेष्ठ तथा कार्तिक और मार्गशीर्ष ये दो मास मध्यम हैं। अन्य मास निन्दित हैं ॥ ४१६ ॥

सूर्य जब आद्रा नक्षत्रमें प्रवेश करे तबसे दस नक्षत्रतक (अर्थात् आद्रासे स्वातीतकके नक्षत्रोंमें जबतक सूर्य रहें, तबतक) विवाह, देवताकी प्रतिष्ठा और उपनयन नहीं करने चाहिये। बृहस्पति

और शुक्र जब अस्त हों, बाल अथवा वृद्ध हों तथा केवल बृहस्पति सिंहराशि या उसके नवमांशमें हों, उस समय भी ऊपर कहे हुए शुभ कार्य नहीं करने चाहिये ॥ ४१७-७१८ ॥

(गुरु तथा शुक्रके बाल्य और वृद्धत्व—)

शुक्र जब पश्चिममें उदय होता है तो दस दिन और पूर्वमें उदय होता है तो तीन दिन तक बालक रहता है तथा जब पश्चिममें अस्त होनेको रहता है तो अस्तसे पाँच दिन पहले और पूर्वमें अस्त होनेसे पंद्रह दिन पहले वृद्ध हो जाता है। गुरु उदयके बाद पंद्रह दिन बालक और अस्तसे पहले पंद्रह दिन वृद्ध रहता है ॥ ४१९ ॥

जबतक भगवान् हृषीकेश शयनावस्थामें हों तबतक तथा भगवान्के उत्सव (उत्थान या जन्मदिन) -में भी अन्य मङ्गलकार्य नहीं करने चाहिये ॥ ४२० ॥ पहले गर्भके पुत्र और कन्याके जन्ममास, जन्मनक्षत्र और जन्म-तिथि-वारमें भी विवाह नहीं करना चाहिये। आद्य गर्भकी कन्या और आद्य गर्भके वरका परस्पर विवाह नहीं कराना चाहिये तथा वर-कन्यामें कोई एक ही ज्येष्ठ (आद्य गर्भका) हो तो ज्येष्ठ मासमें विवाह श्रेष्ठ है। यदि दोनों ज्येष्ठ हों तो ज्येष्ठ मासमें विवाह अनिष्टकारक कहा गया है ॥ ४२१-४२२ ॥

(विवाहमें वर्ज्य—)

भूकम्पादि उत्पात तथा सर्वग्रास सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण हो तो उसके बाद सात दिनतकका समय शुभ नहीं है। यदि खण्डग्रहण हो तो उसके बाद तीन दिन अशुभ होते हैं। तीन दिनका स्पर्श करनेवाली (वृद्धि) तिथि, क्षयतिथि तथा ग्रस्तास्त (ग्रहण लगे चन्द्र, सूर्यका अस्त) हो तो पूर्वके तीन दिन अच्छे नहीं माने जाते हैं। यदि ग्रहण लगे हुए सूर्य, चन्द्रका

उदय हो तो बादके तीन दिन अशुभ होते हैं। संध्यासमयमें ग्रहण हो तो पहले और बादके भी तीन-तीन दिन अनिष्टकारक हैं तथा मध्य रात्रिमें ग्रहण हो तो सात दिन (तीन पहलेके और तीन बादके और एक ग्रहणवाला दिन) अशुभ होते हैं ॥ ४२३-४२४ ॥ मासके अन्तिम दिन, रिक्ता, अष्टमी, व्यतीपात और वैधृतियोग सम्पूर्ण तथा परिघ योगका पूर्वार्ध—ये विवाहमें वर्जित हैं ॥ ४२५ ॥

(विहित नक्षत्र—)

रेवती, रोहिणी, तीनों उत्तरा, अनुराधा, स्वाती, मृगशिरा, हस्त, मधा और मूल—ये ग्यारह नक्षत्र वेधरहित हैं तो इन्हींमें स्त्रीका विवाह शुभ कहा गया है ॥ ४२६ ॥ विवाहमें वरको सूर्यका और कन्याको बृहस्पतिका बल अवश्य प्राप्त होना चाहिये। यदि ये दोनों अनिष्टकारक हों तो यलपूर्वक इनकी पूजा करनी चाहिये ॥ ४२७ ॥ गोचर, वेध और अष्टकवर्ग-सम्बन्धी बल उत्तरोत्तर अधिक है ॥ इसलिये गोचरबल स्थूल (साधारण) माना जाता है। अर्थात् ग्रहोंका अष्टकवर्ग-बल ग्रहण करना चाहिये। प्रथम तो वर-कन्याके चन्द्रबल और ताराबल देखने चाहिये। उसके बाद पञ्चाङ्ग (तिथि, वार आदि)-के बल देखे। तिथिमें एक, वारमें दो, नक्षत्रमें तीन, योगमें चार और करणमें पाँच गुने बल होते हैं। इन सबकी अपेक्षा मुहूर्त बली होता है। मुहूर्तसे भी लग्र, लग्रसे भी होरा (राश्यर्ध), होरासे द्रेष्काण, द्रेष्काणसे नवमांश, नवमांशसे भी द्वादशांश तथा उससे भी त्रिंशांश^३ बली होता है। इसलिये इन सबके बल देखने चाहिये ॥ ४२८-४३१ ॥

विवाहमें शुभग्रहसे युक्त या दृष्ट होनेपर सब राशि प्रशस्त हैं। चन्द्रमा, सूर्य, बुध, बृहस्पति तथा शुक्र आदि पाँच ग्रह जिस राशिके इष्ट हों, वह लग्र

१. आषाढ़ शुक्ला ११ से कार्तिक शुक्ला ११ तक भगवान् हृषीकेशके शयनका काल है।

२. अर्थात् गोचरबल एक, वेधबल दो और अष्टकवर्ग-बल तीनके बराबर है।

३. जातक अध्यायमें देखिये। अभिप्राय यह है कि नक्षत्रविहित (गुणयुक्त) न मिले तो उसका मुहूर्त लेना चाहिये। यदि लग्रराशि निर्बल हो तो उसके नवमांश आदिका बल देखकर निर्बल लग्रको भी प्रशस्त समझना चाहिये।

शुभप्रद होता है। यदि चार ग्रह भी बली हों तो भी उन्हें शुभप्रद ही समझना चाहिये॥ ४३२-४३३॥

मुने! जामित्र (लग्नसे सप्तम स्थान) शुद्ध (ग्रहवर्जित) हो तथा लग्न इक्कीस दोषोंसे रहित हो तो उसे विवाहमें ग्रहण करना चाहिये। अब मैं उन इक्कीस दोषोंके नाम, स्वरूप और फलका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ, सुनो—॥ ४३४१॥

(विवाहके इक्कीस दोष—) पञ्चाङ्ग-शुद्धिका न होना, यह प्रथम दोष कहा गया है। उदयास्तकी शुद्धिका न होना २, उस दिन सूर्यकी संक्रान्तिका होना ३, पापग्रहका षड्वर्गमें रहना ४, लग्नसे छठे भावमें शुक्रकी स्थिति ५, अष्टममें मङ्गलका रहना ६, गण्डान्त होना ७, कर्तरीयोग ८, बारहवें, छठे और आठवें चन्द्रमाका होना तथा चन्द्रमाके साथ किसी अन्य ग्रहका होना ९, वर-कन्याकी जन्मराशिसे अष्टम राशि लग्न हो या दैनिक चन्द्रराशि हो १०, विषघटी ११, दुर्मुहूर्त १२, वार-दोष १३, खार्जूर १४, नक्षत्रैकचरण १५, ग्रहण और उत्पातके नक्षत्र १६, पापग्रहसे विद्ध नक्षत्र १७, पापसे युक्त नक्षत्र १८, पापग्रहका नवमांश १९, महापात २० और वैधृति २१—विवाहमें ये २१ दोष कहे गये हैं॥ ४३५-४३८१॥

मुने! तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण—इन पाँचोंका मेल 'पञ्चाङ्ग' कहलाता है। उसकी शुद्धि 'पञ्चाङ्ग-शुद्धि' कहलाती है। जिस दिन पञ्चाङ्गके दोष हों, उस दिन विवाहलग्न बनाना निरर्थक है। इस प्रकारका लग्न यदि पाँच इष्ट ग्रहोंसे युक्त हो तो भी उसको विषमित्रित दूधके समान त्याग देना चाहिये॥ ४३९-४४०१॥ लग्न या उसके नवमांश अपने-अपने स्वामीसे युक्त या दृष्ट न हों अथवा परस्पर (लग्नेशसे नवमांश और नवमांशपतिसे लग्नेश) युक्त या दृष्ट न हों अथवा अपने स्वामीके शुभग्रह मित्रसे युक्त या दृष्ट न हों तो वरके लिये

घातक होते हैं*। इसी प्रकार लग्नसे सप्तम और उसके नवमांशमें भी ये दोनों यदि अपने-अपने स्वामीसे अथवा परस्पर युक्त या दृष्ट न हों हों या अपने-अपने स्वामीके शुभ मित्रसे युक्त या दृष्ट न हों तो उस दशामें विवाह होनेपर वह वधूके लिये घातक है॥ ४४१-४४२१॥

सूर्यकी संक्रान्तिके समयसे पूर्व और पश्चात् सोलह-सोलह घड़ी विवाह आदि शुभ कार्योंमें त्याज्य है। लग्नका षड्वर्ग (राशि, होरा, द्रेष्काण, नवमांश, द्वादशांश तथा त्रिंशांश) शुभ हो तो विवाह, देवप्रतिष्ठा आदि कार्योंमें श्रेष्ठ माना गया है॥ ४४३-४४४॥

लग्नसे छठे स्थानमें शुक्र हो तो वह 'भृगुषष्ठ' नामक दोष कहलाता है। उच्चस्थ और शुभ ग्रहसे युक्त होनेपर भी उस लग्नको सदा त्याग देना चाहिये। लग्नसे अष्टम स्थानमें मङ्गल हो तो यह 'भौम महादोष' कहलाता है। यदि मङ्गल उच्चमें हो और तीन शुभ ग्रह लग्नमें हों तो इस लग्नका त्याग नहीं करना चाहिये (अर्थात् ऐसी स्थितिमें अष्टम मङ्गलका दोष नष्ट हो जाता है)॥ ४४५-४४६॥

(गण्डान्त-दोष—) पूर्णा (५, १०, १५) तिथियोंके अन्त और नन्दा (१, ६, ११) तिथियोंकी आदिकी सन्धिमें दो घड़ी 'तिथिगण्डान्त-दोष' कहलाता है। यह जन्म, यात्रा, उपनयन और विवाहादि शुभ कार्योंमें घातक कहा गया है॥ ४४७॥ कर्क लग्नके अन्त और सिंह लग्नके आदिकी सन्धिमें, वृश्चिक और धनुकी सन्धिमें तथा मीन और मेष लग्नकी सन्धिमें आधा घड़ी 'लग्नगण्डान्त' कहलाता है। यह भी घातक होता है॥ ४४८॥ आश्लेषके अन्तका चतुर्थ चरण और मध्याका प्रथम चरण तथा ज्येष्ठाके अन्तकी १६ घड़ी और मूलका प्रथम चरण एवं रेवती नक्षत्रके अन्तकी

*यहाँ घातक शब्द अशुभ-सूचक समझना चाहिये अर्थात् ऐसे लग्नमें वरको अशुभ फल प्राप्त होता है।

ग्यारह घड़ी और अश्विनीका प्रथम चरण—इस प्रकार इन दो-दो नक्षत्रोंकी सन्थिका काल ‘नक्षत्रगण्डान्त’ कहलाता है। ये तीनों प्रकारके गण्डान्त महाक्रूर होते हैं ॥ ४४७—४४९ १ ॥

(कर्तरीदोष—) लग्नसे बारहवें मार्गी और द्वितीयमें वक्री दोनों पापग्रह हों तो लग्नमें आगे-पीछे दोनों ओरसे जानेके कारण यह ‘कर्तरीदोष’ कहलाता है। इसमें विवाह होनेसे यह कर्तरीदोष वर-वधू दोनोंके गलेपर छुरी चलानेवाला (उनका अनिष्ट करनेवाला) होता है। ऐसे कर्तरीदोषसे युक्त लग्नका परित्याग कर देना चाहिये ॥ ४५०—४५१ ॥

(लग्न-दोष—) यदि लग्नसे छठे, आठवें तथा बारहवेंमें चन्द्रमा हो तो यह ‘लग्नदोष’ कहलाता है। ऐसा लग्न शुभग्रहों तथा अन्य सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त होनेपर भी दोषयुक्त होता है। वह लग्न बृहस्पति और शुक्रसे युक्त हो तथा चन्द्रमा उच्च, नीच, मित्र या शत्रुराशिमें (कहीं भी) हो, तो भी यत्पूर्वक त्याग देने योग्य है, क्योंकि यह सब गुणोंसे युक्त होनेपर भी वर-वधूके लिये ‘घातक’ कहा गया है ॥ ४५२—४५३ १ ॥

(सग्रहदोष—) चन्द्रमा यदि किसी ग्रहसे युक्त हो तो ‘सग्रह’ नामक दोष होता है। इस दोषमें भी विवाह नहीं करना चाहिये। चन्द्रमा यदि सूर्यसे युक्त हो तो दरिद्रता, मङ्गलसे युक्त हो तो घात अथवा रोग, बुधसे युक्त हो तो अनपत्यता (संतान-हानि), गुरुसे युक्त हो तो दौर्भाग्य, शुक्रसे युक्त हो तो पति-पत्नीमें शत्रुता, शनिसे युक्त हो तो प्रब्रज्या (घरका त्याग), राहुसे युक्त हो तो सर्वस्वहानि और केतुसे युक्त हो तो कष्ट और दरिद्रता होती है ॥ ४५४—४५७ ॥

(पापग्रहकी निन्दा और शुभग्रहोंकी प्रशंसा—) मुने! इस प्रकार सग्रहदोषमें चन्द्रमा यदि पापग्रहसे युक्त हो तो वर-वधू दोनोंके लिये घातक होता है। यदि वह शुभग्रहोंसे युक्त हो तो उस स्थितिमें यदि उच्च या मित्रकी राशिमें चन्द्रमा हो तो लग्न

दोषयुक्त रहनेपर भी वर-वधूके लिये कल्याणकारी होता है। परंतु चन्द्रमा स्वोच्चमें या स्वराशिमें अथवा मित्रकी राशिमें रहनेपर भी यदि पापग्रहसे युक्त हो तो वर-वधू दोनोंके लिये घातक होता है ॥ ४५८—४५९ १ ॥

(अष्टमराशि लग्नदोष—) वर या वधूके जन्मलग्नसे अथवा उनकी जन्मराशिसे अष्टमराशि विवाह-लग्नमें पड़े तो यह दोष भी वर और वधूके लिये घातक होता है। वह राशि या वह लग्न शुभग्रहसे युक्त हो तो भी उस लग्नको, उस नवमांशसे युक्त लग्नको अथवा उसके स्वामीको यत्पूर्वक त्याग देना चाहिये ॥ ४६०—४६१ ॥

(द्वादश राशिदोष) वर-वधूके जन्म-लग्न या जन्मराशिसे द्वादश राशि यदि विवाह-लग्नमें पड़े तो वर-वधूके धनकी हानि होती है। इसलिये उस लग्नको, उसके नवमांशको और उसके स्वामीको भी त्याग देना चाहिये ॥ ४६२ १ ॥

(जन्मलग्न और जन्मराशिकी प्रशंसा—) जन्म- राशि और जन्मलग्नका उदय विवाहमें शुभ होता है तथा दोनोंके उपचय (३, ६, १०, ११) स्थान यदि विवाह-लग्नमें हो तो अत्यन्त शुभप्रद होते हैं ॥ ४६३ १ ॥

(विषघटी ध्रुवाङ्क—) अश्विनीका ध्रुवाङ्क ५०, भरणीका २४, कृत्तिकाका ३०, रोहिणीका ५४, मृगशिराका १३, आर्द्राका २१, पुनर्वसुका ३०, पुष्यका २०, आश्लेषाका ३२, मघाका ३०, पूर्वाफाल्युनीका २०, उत्तराफाल्युनीका १८, हस्तका २१, चित्राका २०, स्वातीका १४, विशाखाका १४, अनुराधाका १०, ज्येष्ठाका १४, मूलका ५६, पूर्वाषाढ़का २४, उत्तराषाढ़का २०, श्रवणका १०, धनिष्ठाका १०, शतभिषाका १८, पूर्व भाद्रपदका १६, उत्तर भाद्रपदका २४ और रेवतीका ध्रुवाङ्क ३० है। इन अश्विनी आदि नक्षत्रोंके अपने-अपने ध्रुवाङ्क तुल्य घड़ीके बाद ४ घड़ीतक विषघटी होती है। विवाह आदि शुभ कार्योंमें विषघटिकाओंका

त्याग करना चाहिये ॥ ४६४—४६८ ॥

रवि आदि वारोंमें जो मुहूर्त निन्दित कहा गया है, वह यदि अन्य लाख गुणोंसे युक्त हो तो भी विवाह आदि शुभ कार्योंमें वर्जनीय ही है ॥ ४६९ ॥ रवि आदि दिनोंमें जो-जो वार-दोष कहे गये हैं, वे अन्य सब गुणोंसे युक्त हों तो भी शुभ कार्यमें वर्जनीय हैं ॥ ४७० ॥

नक्षत्रके जिस चरणमें पूर्वोक्त 'एकार्गल दोष' हो, उस चरण (नवांश)-से युक्त जो लग्न हो उसमें यदि गुरु, शुक्रका योग हो तो भी विषयुक्त दूधके समान उसको त्याग देना चाहिये ॥ ४७१ ॥

ग्रहण तथा उत्पातसे दूषित नक्षत्रको तीन ऋतु (छः मास)-तक शुभ कार्यमें छोड़ देना चाहिये। जब चन्द्रमा उस नक्षत्रको भोगकर छोड़ दे तो वह नक्षत्र जली हुई लकड़ीके समान निष्फल हो जाता है अर्थात् दोष-कारक नहीं रह जाता। शुभ कार्योंमें ग्रहसे विद्ध और पापग्रहसे युक्त सम्पूर्ण नक्षत्रको मदिरामिश्रित पञ्चग्रन्थके समान त्याग देना चाहिये; परंतु यदि नक्षत्र शुभग्रहसे विद्ध हो तो उसका विद्ध चरणमात्र त्याज्य है, सम्पूर्ण नक्षत्र नहीं; किंतु पापग्रहसे विद्ध नक्षत्र शुभकार्यमें सम्पूर्ण रूपसे त्याग देने योग्य है ॥ ४७२—४७४ ॥

१. विशेष—यदि नक्षत्रका मान ६० घड़ी हो तब इतने ध्रुवाङ्क और उसके पंद्रहवें भाग चार घटीतक 'विषघटी' का अवस्थान मध्यममानके अनुसार कहा गया है। इससे यह स्वयं सिद्ध होता है कि यदि नक्षत्रका मान ६० घड़ीसे अधिक या अल्प होगा तो विषघटीका मान और ध्रुवाङ्क भी उसी अनुपातसे अधिक या कम हो जायगा तथा स्पष्ट भभोगमानका पंद्रहवाँ भाग ही विषघटीका स्पष्ट मान होगा।

मान लीजिये कि पुनर्वसुका भभोगमान ५६ घड़ी है तो त्रैराशिकसे अनुपात निकालिये। यदि ६० घड़ीमें ३० ध्रुवाङ्क तो इष्ट भभोग ५६ घड़ीमें क्या होगा? इस प्रकार ५६ से ३० को गुणा करके ६० के द्वारा भाग देनेसे लब्धि २८ पुनर्वसुका स्पष्ट ध्रुवाङ्क हुआ तथा भभोग ५६ का पंद्रहवाँ भाग ३ घड़ी ४४ पल स्पष्ट 'विषघटी' हुई। इसलिये २८ घड़ीके बाद ३ घड़ी ४ पलतक विषघटी रहेगी।

२. किसी भी राशिमें अपना ही नवमांश हो तो वह वर्गोत्तम कहलाता है। जैसे मेषमें मेषका नवमांश तथा वृषभमें वृषका नवमांश इत्यादि।

३. सूर्य जिस नक्षत्रमें वर्तमान हो, उसमें ५, ७, ८, १०, १४, १५, १८, १९, २१, २२, २३, २४, २५—इन संख्याओंके किसी भी नक्षत्रमें चन्द्रमा हो तो 'उपग्रहदोष' कहलाता है।

४. सूर्य यदि धनु या मीनमें हो तो द्वितीया, वृष या कुम्भमें हो तो चतुर्थी, कर्क या मेषमें हो तो षष्ठी, कन्या या मिथुनमें हो तो अष्टमी, सिंह या वृश्चिकमें हो तो दशमी तथा तुला या मकरमें हो तो द्वादशी 'दग्ध तिथि' कहलाती है।

५. कुम्भ, मीन, वृष, मिथुन, मेष, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु और कर्क—ये क्रमशः चैत्र आदि मासोंमें 'दग्ध राशियाँ' हैं।

(विहित नवमांश—) वृष, तुला, मिथुन, कन्या और धनुका उत्तरार्ध तथा इन राशियोंके नवमांश विवाहलग्नमें शुभप्रद हैं। किसी भी लग्नमें अन्तिम नवमांश यदि वर्गोत्तम हो तभी उसे शुभप्रद समझना चाहिये^२। अन्यथा विवाह-लग्नका अन्तिम नवमांश (२६ अंश ४० कलाके बाद) अशुभ होता है। यहाँ अन्य नवमांश नहीं ग्रहण करने चाहिये; क्योंकि वे 'कुनवांश' कहलाते हैं। लग्नमें कुनवांश हो तो अन्य सब गुणोंसे युक्त होनेपर भी वह त्याज्य है। जिस दिन महापात (सूर्य-चन्द्रमाका क्रान्ति-साप्त्य) हो, वह दिन भी शुभ कार्यमें छोड़ देने योग्य है; क्योंकि वह अन्य सब गुणोंसे युक्त होनेपर भी वर-वधुके लिये घातक होता है। इन दोषोंसे भिन्न विद्युत, नीहार (कुहरा) और वृष्टि आदि दोष, जिनका अभी वर्णन नहीं किया गया है, 'स्वल्पदोष' कहलाते हैं ॥ ४७५—४७८ ॥

(लघुदोष—) विद्युत, नीहार, वृष्टि, प्रतिसूर्य (दो सूर्य-सा दीखना), परिवेष (घेरा), इन्द्रधनुष, घनगर्जन, लत्ता, उपग्रह^३, पात, मासदग्ध^४ तिथि, दग्ध, अस्थ, बधिर तथा पङ्ग—इन राशियोंके लग्न, एवं छोटे-छोटे और भी अनेक दोष हैं; अब उनकी व्यवस्थाका प्रतिपादन किया जाता है ॥ ४७९—४८० ॥

विद्युत् (बिजली), **नीहार** (कुहरा या पाला), **वृष्टि** (वर्षा)—ये यदि असमयमें हों तभी दोष समझे जाते हैं। यदि समयपर हों (जैसे जाड़ेके दिनमें पाला पड़े, वर्षा ऋतुमें वर्षा हो तथा सघन मेघमें बिजली चमके, तो सब शुभ ही समझे जाते हैं) ॥ ४८१ ॥ यदि बृहस्पति, शुक्र अथवा बुध इनमेंसे एक भी केन्द्रमें हों तो इन सब दोषोंको नष्ट कर देते हैं। इसमें संशय नहीं है ॥ ४८२ ॥

(पञ्चशलाका-वेद—) पाँच रेखाएँ पड़ी और पाँच रेखाएँ खड़ी खींचकर दो-दो रेखाएँ कोणोंमें खींचने (बनाने)—से पञ्चशलाका-चक्र^१ बनता है। इस चक्रके ईशान कोणवाली दूसरी रेखामें कृतिकाको लिखकर आगे प्रदक्षिण-क्रमसे रोहिणी आदि अभिजित्सहित सम्पूर्ण नक्षत्रोंका उल्लेख करे। जिस रेखामें ग्रह हो, उसी रेखाकी दूसरी ओरवाला नक्षत्र विद्ध^२ समझा जाता है ॥ ४८३ ॥

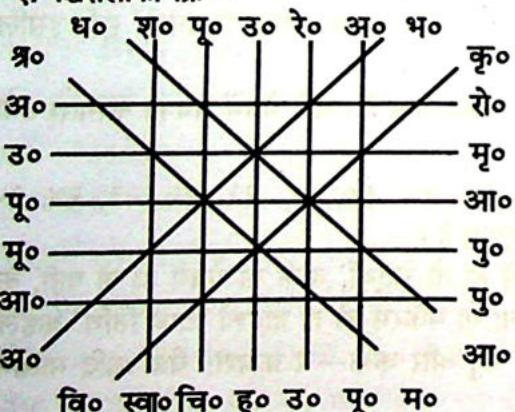
(लत्तादोष—) सूर्य आदि^३ ग्रह क्रमशः अपने आश्रित नक्षत्रसे आगे और पीछे^४ १२, २२, ३, ७, ६, ५, ८ तथा ९ वें दैनिक नक्षत्रको लातोंसे दूषित करते हैं, इसलिये इसका नाम 'लत्तादोष' है।

(पातदोष—) सूर्य जिस नक्षत्रमें हों उससे आश्लेषा, मघा, रेवती, चित्रा, अनुराधा और श्रवणतककी जितनी संख्या हो, उतनी ही यदि

तुला और वृश्चिक—ये दोनों केवल दिनमें तथा धनु और मकर—ये दोनों केवल रात्रिमें 'बधिर' होते हैं। एवं मेष, वृष और सिंह—ये तीनों दिनमें तथा मिथुन, कर्क, कन्या—ये तीनों रात्रिमें 'अन्ध' होते हैं।

दिनमें कुम्भ और रात्रिमें मीन 'पङ्कु' होते हैं।

१. पञ्चशलाकाचक्र—



अश्विनीसे दिन-नक्षत्रतक गिननेसे संख्या हो तो वह नक्षत्र पातदोषसे दूषित समझा जाता है ॥ ४८४-४८५ ॥

(परिहार—) सौराष्ट्र (काठियावाड़) और शाल्वदेशमें लत्तादोष वर्जित है। कलिङ्ग (जगन्नाथपुरीसे कृष्णा नदीतकके भूभाग), बङ्ग (बङ्गाल), वाहिक (बलख) और कुरु (कुरुक्षेत्र) देशमें पातदोष त्याज्य हैं; अन्य देशोंमें ये दोष त्याज्य नहीं हैं ॥ ४८६-४८७ ॥ मासदग्ध तिथि तथा दग्ध लग्र—ये मध्यदेश (प्रयागसे पश्चिम, कुरुक्षेत्रसे पूर्व, विन्ध्य और हिमालयके मध्य)में वर्जित हैं। अन्य देशोंमें ये दूषित नहीं हैं ॥ ४८८ ॥ पङ्कु, अन्ध, काण, लग्र तथा मासोंमें जो शून्य राशियाँ कही गयी हैं, वे गौड़ (बङ्गालसे भुवनेश्वरतक) और मालव (मालवा) देशमें त्याज्य हैं। अन्य देशोंमें निन्दित नहीं हैं ॥ ४८९ ॥

(विशेष—) अधिक दोषोंसे दुष्ट कालको तो ब्रह्माजी भी शुभ नहीं बना सकते हैं; इसलिये जिसमें थोड़ा दोष और अधिक गुण हों, ऐसा काल ग्रहण करना चाहिये ॥ ४९० ॥

(वेदी और मण्डप—) इस प्रकार वर-वधूके लिये शुभप्रद उत्तम समयमें श्रेष्ठ लग्रका निरीक्षण (खोज) करना चाहिये। तदनन्तर एक हाथ ऊँची,

२. जैसे—श्रवणमें कोई ग्रह हो तो मघा नक्षत्र विद्ध समझा जायगा।

३. सूर्य, पूर्ण चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु।

४. इनमें सूर्य अपनेसे आगे और पूर्ण चन्द्र पीछे, फिर मङ्गल आगे और बुध पीछेके नक्षत्रोंको दूषित करते हैं। ऐसा ही क्रम आगे भी समझना चाहिये।

चार हाथ लंबी और चार हाथ चौड़ी उत्तर दिशामें नत (कुछ नीची) वेदी बनाकर सुन्दर चिकने चार खम्भोंका एक मण्डप तैयार करे, जिसमें चारों ओर सोपान (सीढ़ियाँ) बनायी गयी हों। मण्डप भी पूर्व-उत्तरमें निम्र हो। वहाँ चारों तरफ कदलीस्तम्भ गढ़े हों। वह मण्डप शुक आदि पक्षियोंके चित्रोंसे सुशोभित हो तथा वेदी नाना प्रकारके माझलिक चित्रयुक्त कलशोंसे विचित्र शोभा धारण कर रही हो। भाँति-भाँतिके वन्दनवार तथा अनेक प्रकारके फूलोंके शृङ्गारसे वह स्थान सजाया गया हो। ऐसे मण्डपके बीच बनी हुई वेदीपर, जहाँ ब्राह्मणलोग स्वस्तिवाचनपूर्वक आशीर्वाद देते हों, जो पुण्यशीला स्त्रियों तथा दिव्य समारोहोंसे अत्यन्त मनोरम जान पड़ती हो तथा नृत्य, वाद्य और माझलिक गीतोंकी ध्वनिसे जो हृदयको आनन्द प्रदान कर रही हो, वर और वधूको विवाहके लिये बिठावे ॥ ४९१—४९५ ॥

(वर-वधूकी कुण्डलीका मिलान—) आठ प्रकारके भकूट, नक्षत्र, राशि, राशिस्वामी, योनि तथा वर्ण आदि सब गुण यदि ऋजु (अनुकूल या शुभ) हों तो ये पुत्र-पौत्रादिका सुख प्रदान करनेवाले होते हैं ॥ ४९६ ॥

वर और कन्या दोनोंकी राशि और नक्षत्र भिन्न हों तो उन दोनोंका विवाह उत्तम होता है। दोनोंकी राशि भिन्न और नक्षत्र एक हो तो उनका विवाह मध्यम होता है और यदि दोनोंका एक ही नक्षत्र, एक ही राशि हो तो उन दोनोंका विवाह प्राणसंकट उपस्थित करनेवाला होता है ॥ ४९७ ॥

(स्त्रीदूर दोष—) कन्याके नक्षत्रसे प्रथम नवक (नौ नक्षत्रों)-के भीतर वरका नक्षत्र हो तो यह 'स्त्रीदूर' नामक दोष कहलाता है; जो अत्यन्त निन्दित है। द्वितीय नवक (१० से १८ तक)-के भीतर हो तो मध्यम कहा गया है। यदि तृतीय नवक (१९ से २७ तक)-के भीतर हो तो उन

दोनोंका विवाह श्रेष्ठ कहा गया है ॥ ४९८ ॥

(गणविचार—) पूर्वाफाल्युनी, पूर्वाषाढ़, पूर्व भाद्रपद, उत्तरा फाल्युनी, उत्तराषाढ़, उत्तर भाद्रपद, रोहिणी, भरणी और आर्द्रा—ये नक्षत्र मनुष्यगण हैं। श्रवण, पुनर्वसु, हस्त, स्वाती, रेवती, अनुराधा, अश्विनी, पुष्य और मृगशिरा—ये देवगण हैं तथा मघा, चित्रा, विशाखा, कृत्तिका, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, शतभिषा, मूल और आश्लेषा—ये नक्षत्र राक्षसगण हैं ॥ ४९९—५०१ ॥ यदि वर और कन्याके नक्षत्र किसी एक ही गणमें हों तो दोनोंमें परस्पर सब प्रकारसे प्रेम बढ़ता है। यदि एकका मनुष्यगण और दूसरेका देवगण हो तो दोनोंमें मध्यम प्रेम होता है तथा यदि एकका राक्षसगण और दूसरेका देवगण या मनुष्यगण हो तो वर-वधू दोनोंको मृत्युतुल्य क्लेश प्राप्त होता है ॥ ५०२ ॥

(राशिकूट—) वर और कन्याकी राशियोंको परस्पर गिननेसे यदि वे छठी और आठवीं संख्यामें पड़ती हों तो दोनोंके लिये घातक हैं। यदि पाँचवीं और नवीं संख्यामें हों तो संतानकी हानि होती है। यदि दूसरी और बारहवीं संख्यामें हों तो वर-वधू दोनों निर्धन होते हैं। इनसे भिन्न संख्यामें हों तो दोनोंमें परस्पर प्रेम होता है ॥ ५०३ ॥

(परिहार—) द्विद्वादश (२, १२) और नवपञ्चम (९, ५) दोषमें यदि दोनोंकी राशियोंका एक ही स्वामी हो अथवा दोनोंके राशिस्वामियोंमें मित्रता हो तो विवाह शुभ कहा गया है। परंतु षड्षष्टक (६, ८)-में दोनोंके स्वामी एक होनेपर भी विवाह शुभदायक नहीं होता है ॥ ५०४ ॥

(योनिकूट—) १ अश्व, २ गज, ३ मेष, ४ सर्प, ५ सर्प, ६ श्वान, ७ मार्जार, ८ मेष, ९ मार्जार, १० मूषक, ११ मूषक, १२ गौ, १३ महिष, १४ व्याघ्र, १५ महिष, १६ व्याघ्र, १७ मृग, १८ मृग, १९ श्वान, २० वानर, २१ नकुल, २२ नकुल, २३ वानर, २४ सिंह, २५ अश्व, २६ सिंह, २७ गौ तथा २८ गज—ये क्रमशः अश्विनीसे

लेकर रेवतीतक (अभिजितसहित) अद्वाईस नक्षत्रोंकी योनियाँ हैं ॥ ५०५-५०६ ॥ इनमें श्वान और मृगमें, नकुल और सर्पमें, मेष और वानरमें, सिंह और गजमें, गौ और व्याघ्रमें, मूषक और मार्जारमें तथा महिष और अश्वमें परस्पर भारी शत्रुता होती है ॥ ५०७ ॥

(वर्णकूट—) मीन, वृश्चिक और कर्कराशि ब्राह्मण वर्ण हैं, इनके बादवाले क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण हैं । (एक वर्णके वर और वधूमें तो विवाह स्वयंसिद्ध है ही) पुरुष-राशिके वर्णसे स्त्री-राशिका वर्ण हीन हो तो भी विवाह शुभ माना गया है । इससे विपरीत (अर्थात् पुरुषराशिके वर्णसे स्त्रीराशिका वर्ण श्रेष्ठ) हो तो अशुभ समझना चाहिये ॥ ५०८ ॥

(नाडीविचार—) चार चरणवाले नक्षत्र (अश्विनी, भरणी, रोहिणी, आद्रा, पुष्य, आश्लेषा,

मधा, पूर्वाफाल्युनी, हस्त, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़, श्रवण, शतभिषा, उत्तर भाद्रपद, रेवती—इन) में उत्पन्न कन्याके लिये अश्विनीसे आरम्भ करके रेवतीतक तीन पर्वोंपर क्रम-उत्क्रम^३ से गिनकर नाड़ी समझे । तीन चरणवाले (कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तराफाल्युनी, विशाखा, उत्तराषाढ़ और पूर्व भाद्रपद) नक्षत्रोंमें उत्पन्न कन्याके लिये कृत्तिकासे लेकर भरणीतक क्रम-उत्क्रम^३ से चार पर्वोंपर गिनकर नाड़ीका ज्ञान प्राप्त करे तथा दो चरणोंवाले (मृगशिरा, चित्रा, धनिष्ठा) नक्षत्रोंमें उत्पन्न कन्याकी नाड़ी जाननेके लिये मृगशिरासे लेकर रोहिणीतक पाँच पर्वोंपर क्रम-उत्क्रम^३से गिने । यदि वर और वधू दोनोंके नक्षत्र एक पर्वपर पड़ें तो वे उनके लिये घातक हैं और भिन्न पर्वोंपर पड़ें तो उन्हें शुभ समझना चाहिये ॥ ५०९ ॥

१. राशियोंके वर्णको स्पष्ट समझनेके लिये यह कोष्ठ देखें—

मीन	मेष	वृष	मिथुन
कर्क	सिंह	कन्या	तुला
वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ
ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र

२. त्रिनाडी—

१	अश्विनी	आद्रा	पुनर्वसु	उत्तराफाल्युनी	हस्त	ज्येष्ठा	मूल	शतभिषा	पूर्व भाद्रपद
२	भरणी	मृगशिरा	पुष्य	पूर्वाफाल्युनी	चित्रा	अनुराधा	पूर्वाषाढ़	धनिष्ठा	उत्तर भाद्रपद
३	कृत्तिका	रोहिणी	आश्लेषा	मधा	स्वाती	विशाखा	उत्तराषाढ़	श्रवण	रेवती

३. चतुर्नाडी—

१	कृत्तिका	मधा	पूर्वाफाल्युनी	ज्येष्ठा	मूल	उत्तर भाद्रपद	रेवती
२	रोहिणी	आश्लेषा	उत्तराफाल्युनी	अनुराधा	पूर्वाषाढ़	पूर्व भाद्रपद	अश्विनी
३	मृगशिरा	पुष्य	हस्त	विशाखा	उत्तराषाढ़	शतभिषा	भरणी
४	आद्रा	पुनर्वसु	चित्रा	स्वाती	श्रवण	धनिष्ठा	×

४. पञ्चनाडी—

१	मृगशिरा	चित्रा	स्वाती	शतभिषा	पूर्व भाद्रपद	×
२	आद्रा	हस्त	विशाखा	धनिष्ठा	उत्तर भाद्रपद	×
३	पुनर्वसु	उत्तराफाल्युनी	अनुराधा	श्रवण	रेवती	×
४	पुष्य	पूर्वाफाल्युनी	ज्येष्ठा	उत्तराषाढ़	अश्विनी	रोहिणी
५	आश्लेषा	मधा	मूल	पूर्वाषाढ़	भरणी	कृत्तिका

वर और कन्याकी कुण्डली मिलानेके लिये जो वश्य, योनि, राशिकूट, योनिकूट, वर्णकूट तथा नाड़ी आदिका वर्णन किया गया है, उन सबको सुगमतापूर्वक जानने तथा उनके गुणोंको समझनेके लिये निम्नाङ्कित चक्रोंपर दृष्टिपात कीजिये—

शतपदचक्र

नक्षत्र	अ.	भ.	कृ.	रो.	मृ.	आ.	पु.	पु.	आश्ले.	म.	पू.फा.	उ.फा.	ह.	चि.
चरण	चू.चे.	ली.लू.	अ.इ.	ओ.वा.	वे.वो.	कु.घ.	के.को.	हू.हे.	डी.इ०	मा.मी.	मो.टा.	टे.टो.	पू.ष.	पे.यो.
	चो.ला.	ले.लो.	उ.ए.	वी.वू.	का.की.	ड.छ.	हा.ही.	हो.डा.	डे.डो.	मू.मे.	टी.टू.	पा.पी.	ण.ठ.	रा.री.
राशि	मे.	मे.	मे.१ वृ० ३	वृ.	वृ.२ मि. २	मि.	मि.३ क.१	क.	क.	सिं.	सिं.	सिं.१ क.३	क.	क.२ तु.२
वर्ण	क्ष.	क्ष.	क्ष.१ वै.३	वै.	वै.२ शू.२	शू.	शू.३ ब्रा.१	ब्रा.	ब्रा.	क्ष.	क्ष.१ वै.३	वै.	वै.२ शू.२	
वश्य	च.	च.	च.	च.	च.२ न.२	न.	न.३ ज.१	ज.	ज.	व.	व.	व.१ न.३	न.	न.
योनि	अश्व.	गज.	छाग.	सर्प.	सर्प.	श्वान.	मार्जा- र.	छाग.	मार्जा- र.	मूषक.	मूषक.	गौ.	महिष.	व्याघ्र.
राशीश	मं.	मं.	मं.१ शु.३	शु.	शु.२ बु.२	बु.	बु.३ च.१	चं.	चं.	सू.	सू.	सू.१ बु.३	बु.	बु.२ शु.२
गण	दे.	म.	रा.	म.	दे.	म.	दे.	दे.	रा.	रा.	म.	म.	दे.	रा.
नाड़ी	आ.	म.	अं.	अं.	म.	आ.	आ.	म.	अं.	अं.	म.	आ.	आ.	म.

नक्षत्र	स्वा.	वि.	अ.	ज्ये.	मू.	पू.षा.	उ.षा.	श्र.	ध.	श.	पू.भा.	उ.भा.	रे.
चरण	रु.रे. रो.ता.	ती.तू. ते.तो.	ना.नी. नू.ने.	नो.या. यी.यू.	ये.यो. भा.भी.	भू.ध फ.ठ.	भे.भो. जा.जी.	खी.खू. खे.खो.	गा.गी. गू.गे.	गो.सा. सी.सू.	से.सो. दा.दी.	दू.थ. झ.अ.	दे.दो. चा.ची.
राशि	तु.	तु.३ वृ.१	वृ.	वृ.	ध.	ध.	ध.१ म.३	म.	म.२ कु.१	कुं.	कुं.३ मी.१	मी.	मी.
वर्ण	शू.	शू.३ ब्रा.१	ब्रा.	ब्रा.	क्ष.	क्ष.	क्ष.१ वै.३	वै.	वै.२ शू.२	शू.	शू.३ ब्रा.१	ब्रा.	ब्रा.
वश्य	न.	न.३ की.१	की.	की.	न.	॥ न. ३ ॥ च.	च.	१ ॥ च. २ ॥ जा.	ज.२ न.२	न.	न.३ ज.१	ज.	ज.
योनि	महिष.	व्याघ्र.	मृग.	मृग	श्वान.	वानर.	नकुल.	वानर.	सिंह.	अश्व.	सिंह.	गौ.	गज.
राशीश	शु.	शु.३ मं.१	मं.	मं.	वृ.	वृ.	बृ.१ श.३	श.	श.	श.	श.३ बृ.१	बृ.	बृ.
गण	दे.	रा.	दे.	रा.	रा.	म.	म.	दे.	रा.	रा.	म.	म.	दे.
नाड़ी	अं.	अं.	म.	आ.	आ.	म.	अं.	अं.	म.	आ.	आ.	म.	अं.

६ गणगुण। वर					८ नाडी-गुण। वर				
कृष्ण		दे.	म.	रा.	कृष्ण	आ.	म.	अं.	
	देव	६	५	१		आदि	०	८	८
	मनुष्य	६	६	०		मध्य	८	०	८
	राक्षस	०	०	६		अन्त	८	८	०

७ भक्तूत्तर्गुण

मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
मे.	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७
वृ.	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७
मि.	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०
क.	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०
सि.	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७
क.	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०	७
तु.	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०
वृ.	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७	०
ध.	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७
म.	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०
कुं.	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७
मी.	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०

कृष्ण	३ तारागुण। वर								
	१	२	३	४	५	६	७	८	९
	१	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३
	२	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३
	३	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥
	४	३	३	१	३	१॥	३	१॥	३
	५	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥
	६	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३
	७	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥
	८	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३
	९	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३

५ ग्रहमैत्रीगुण। वर

कृष्ण	सू.	चं.	मं.	बु.	वृ.	शु.	ज्ञ.
	सूर्य	५	५	५	४	५	०
	चन्द्र	५	५	४	१	४	॥
	मङ्गल	५	४	५	॥	५	३
	बुध	४	१	॥	५	॥	५
	गुरु	५	४	५	॥	५	३
	शुक्र	०	॥	३	५	॥	५
	शनि	०	॥	॥	४	३	५

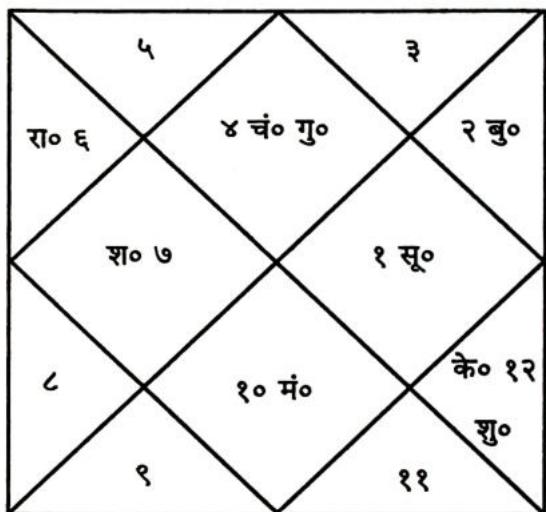
४ योनिगुण। वर														
अश्व	४	२	३	२	२	३	३	२	०	१	३	२	२	१
गज	२	४	३	२	२	३	३	३	३	१	३	२	२	
मेष	३	३	४	२	२	३	३	३	३	१	३	०	१	
सर्प	२	२	२	४	२	१	१	२	२	२	१	०	२	
श्वान	२	२	२	२	४	१	१	२	२	०	२	२	२	
मार्जार	३	३	३	१	१	४	०	३	३	२	२	२	२	
मूषक	३	२	२	१	२	०	४	३	३	२	१	२	२	
गौ	२	३	३	२	२	३	३	४	३	०	३	२	१	
महिष	०	३	३	२	२	३	३	४	१	३	२	२	१	
व्याघ्र	१	१	१	२	२	२	२	०	१	४	१	२	३	
मृग	३	३	३	२	०	३	३	३	३	१	४	२	१	
वानर	२	२	०	१	२	२	२	२	२	२	४	२	२	
नकुल	२	२	२	०	२	२	१	२	२	२	४	२	२	
सिंह	१	०	१	२	२	२	२	१	१	३	२	४	४	

कृष्ण	१ विवाहमें वर्णगुण। वर				
	ब्रा०	क्ष०	वै०	शू०	
	ब्राह्मण	१	०	०	
	क्षत्रिय	१	१	०	
	वैश्य	१	१	१	
	शूद्र	१	१	१	

कृष्ण	२ वश्यगुण। वर				
	च०	मा.	ज.	व.	की.
	चतुष्पद	२	१	१	०
	मानव	१	२	॥	०
	जलचर	१	॥	२	१
वनचर	०	०	१	२	०
कीट	१	१	१	०	२

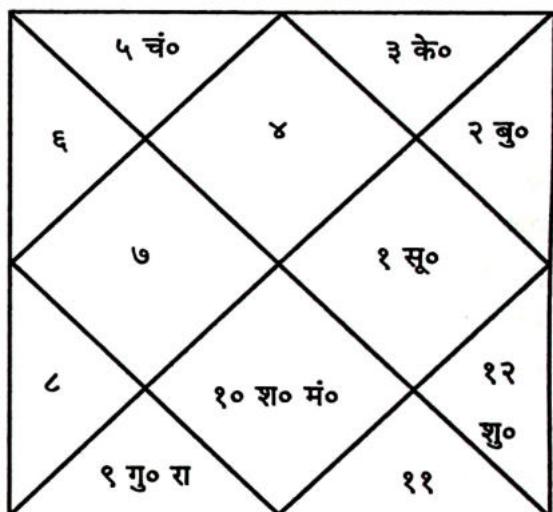
जन्मकालिक ग्रहोंकी स्थिति तथा जन्म-नक्षत्र-सम्बन्धी आठ प्रकारके कूण्डलीका मिलान किया जाता है। यदि जन्म-लग्न या जन्म-राशि (चन्द्रमा) से १, ४, ७, ८ या १२ वें स्थानमें मङ्गल या अन्य पापग्रह वरकी कुण्डलीमें हों तो पलीके लिये और कन्याकी कुण्डलीमें हों तो वरके लिये अनिष्टकारी होते हैं। यदि दोनोंकी कुण्डलियोंमें उक्त स्थानोंमें पापग्रहकी संख्या समान हो तो उक्त दोष नहीं माना जाता है। उदाहरणके लिये—

वरकी कुण्डली



पुनर्वसुके चतुर्थ चरणमें जन्म

कन्याकी कुण्डली



पूर्वाफाल्युनीके प्रथम चरणमें जन्म

यहाँ वरकी कुण्डलीमें ४थे और ७वें स्थानमें शनि और मङ्गल दो पापग्रह हैं तथा कन्याकी कुण्डलीमें भी ७ वें स्थानमें शनि, मङ्गल हैं, जिससे दोनोंके परस्पर माङ्गलिक दोष नष्ट होनेके कारण इन दोनोंका वैवाहिक सम्बन्ध श्रेष्ठ सिद्ध होता है। यहाँ भकूटके गुण इस प्रकार हैं—

वर	कन्या	गुण
१ वर्ण—	ब्राह्मण	क्षत्रिय
२ वश्य—	जलचर	वनचर
३ तारा—	५	६
४ योनि—	मार्जर	मूषक
५ ग्रह (राशीश)—	चन्द्र	सूर्य
६ गण—	देव	मनुष्य
७ भकूट—	२	१२
८ नाड़ी—	१	२

गुणोंका योग=२२ ॥

इस तरह नक्षत्रमेलापकमें भी गुणोंका योग २२ ॥ है। अठारहसे अधिक होनेके कारण इन दोनोंका विवाह-सम्बन्ध श्रेष्ठ सिद्ध होता है।

इसी प्रकार अन्य कुण्डलियोंसे भी ग्रह और नक्षत्रका मेल देखकर विवाहका निर्णय करना चाहिये।

(विवाहोंके भेद—) ऊपर बताये हुए शुभ समयमें (१) प्राजापत्य, (२) ब्राह्म, (३) दैव और (४) आर्ष—ये चार प्रकारके विवाह करने चाहिये। ये ही चारों विवाह उपर्युक्त फल देनेवाले होते हैं। इससे अतिरिक्त जो गान्धर्व, आसुर, पैशाच तथा राक्षस विवाह हैं, वे तो सब समय समान ही फल देनेवाले होते हैं॥५१०-५११॥

(अभिजित् और गोधूलि लग्न—) सूर्योदय-कालमें जो लग्न रहता है, उससे चतुर्थ लग्नका नाम अभिजित् है और सातवाँ गोधूलि-लग्न कहलाता है। ये दोनों विवाहमें पुत्र-पौत्रकी वृद्धि करनेवाले होते हैं॥५१२॥ पूर्व तथा कलिङ्ग देशवासियोंके लिये गोधूलि-लग्न प्रधान है और अभिजित्-लग्न तो सब देशोंके लिये मुख्य कहा गया है, क्योंकि वह सब दोषोंका नाश करनेवाला है॥५१३॥

(अभिजित्-प्रशंसा—) सूर्यके मध्य आकाशमें जानेपर अभिजित् मुहूर्त होता है, वह समस्त दोषोंको नष्ट कर देता है, ठीक उसी तरह, जैसे त्रिपुरासुरको श्रीशिवजीने नष्ट किया था॥५१४॥

पुत्रका विवाह करनेके बाद छः मासोंके भीतर पुत्रीका विवाह नहीं करना चाहिये। एक पुत्र या पुत्रीका विवाह करनेके बाद दूसरे पुत्रका उपनयन भी नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार एक मङ्गल कार्य करनेके बाद छः मासोंके भीतर दूसरा मङ्गल कार्य नहीं करना चाहिये। एक गर्भसे उत्पन्न दो कन्याओंका विवाह यदि छः मासके भीतर हो तो निश्चय ही तीन वर्षके भीतर उनमेंसे एक विधवा होती है॥५१५-५१६॥ अपने पुत्रके साथ जिसकी पुत्रीका विवाह हो, फिर उसके पुत्रके साथ अपनी पुत्रीका विवाह करना 'प्रत्युद्घाह' कहलाता है। ऐसा कभी नहीं करना चाहिये तथा किसी एक ही वरको अपनी दो कन्याएँ नहीं देनी चाहिये। दो सहोदर वरोंको दो सहोदरा कन्याएँ नहीं देनी चाहिये। दो सहोदरोंका एक ही दिन (एक साथ) विवाह या मुण्डन नहीं करना

चाहिये॥५१७ १॥

(गण्डान्त-दोष—) पूर्वकथित गण्डान्तमें यदि दिनमें बालकका जन्म हो तो वह पिताका, रात्रिमें जन्म हो तो माताका और संध्या (सायं या प्रातः) कालमें जन्म हो तो वह अपने शरीरके लिये घातक होता है। गण्डका यह परिणाम अन्यथा नहीं होता है। मूलमें उत्पन्न होनेवाली संतान पुत्र हो या कन्या, श्वशुरके लिये घातक होती है, किंतु मूलके चतुर्थ चरणमें जन्म लेनेवाला बालक श्वशुरका नाश नहीं करता है तथा आश्लेषाके प्रथम चरणमें जन्म लेनेवाला बालक भी पिताका या श्वशुरका विनाश करनेवाला नहीं होता है। ज्येष्ठाके अन्तिम चरणमें उत्पन्न बालक ही श्वशुरके लिये घातक होता है, कन्या नहीं। किसी प्रकार पूर्वांषाढ़ या मूलमें उत्पन्न कन्या भी माता या पिताका नाश करनेवाली नहीं होती है। ज्येष्ठा नक्षत्रमें उत्पन्न कन्या अपने पतिके बड़े भाईके लिये और विशाखामें जन्म लेनेवाली कन्या अपने देवरके लिये घातक होती है॥५१८-५२१॥

(वधू-प्रवेश—) विवाहके दिनसे ६, ८, १० और ७वें दिनमें वधू-प्रवेश (पतिगृहमें प्रथम प्रवेश) हो तो वह सम्पत्तिकी वृद्धि करनेवाला होता है। द्वितीय वर्ष, जन्म-राशि, जन्म-लग्न और जन्म-दिनको छोड़कर अन्य समयमें सम्मुख शुक्र रहनेपर भी वैवाहिक यात्रा (वधू-प्रवेश) शुभ होती है॥५२२-५२३॥

(देव-प्रतिष्ठा—) उत्तरायणमें, बृहस्पति और शुक्र उदित हों तो चैत्रको छोड़कर माघ आदि पाँच मासोंके शुक्लपक्षमें और कृष्णपक्षमें भी आरम्भसे आठ दिनतक सब देवताओंकी स्थापना शुभदायक होती है। जिस देवताकी जो तिथि है, उसमें उस देवताकी और २, ३, ५, ६, ७, १०, ११, १२, १३ तथा पूर्णिमा—इन तिथियोंमें सब देवताओंकी स्थापना शुभ होती है। तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, मृगशिरा, रेवती, हस्त, चित्रा, स्वाती, पुष्य, अश्विनी, रोहिणी,

शतभिषा, श्रवण, अनुराधा और धनिष्ठा—इन नक्षत्रोंमें तथा मङ्गलवारको छोड़कर अन्य वारोंमें देव-प्रतिष्ठा करनी चाहिये। स्थापना करनेवाले (यजमान)–के लिये सूर्य, तारा और चन्द्रमा बलवान् हों, उस दिनके पूर्वाह्नमें, शुभ समय, शुभ लग्न और शुभ नवमांशमें तथा यजमानकी जन्मराशिसे अष्टम राशिको छोड़कर अन्य लग्नोंमें देवताओंकी प्रतिष्ठा शुभदायक होती है॥ ५२४—५२९॥

मेष आदि सब राशियाँ शुभ ग्रहसे युक्त या दृष्ट हों तो देवस्थापनके लिये श्रेष्ठ समझी जाती हैं। प्रत्येक कार्यमें पञ्चाङ्ग (तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण) शुभ होने चाहिये और लग्नसे अष्टम स्थान भी शुभ (ग्रहवर्जित) होना आवश्यक है॥ ५३०॥ (१) लग्नमें चन्द्रमा, सूर्य, मङ्गल, राहु, केतु और शनि कर्ताके लिये घातक होते हैं। अन्य (बुध, गुरु और शुक्र) लग्नमें धन, धान्य और सब सुखोंको देनेवाले होते हैं। (२) द्वितीय भावमें पापग्रह अनिष्ट फल देनेवाले और शुभग्रह धनकी वृद्धि करनेवाले होते हैं। (३) तृतीय भावमें शुभ और पाप सब ग्रह पुत्र-पौत्रादि सुखको बढ़ानेवाले होते हैं। (४) चतुर्थ भावमें शुभग्रह शुभफल और पापग्रह पाप-फलको देते हैं। (५) पञ्चम भावमें पापग्रह कष्टदायक और शुभग्रह पुत्रादि सुख देनेवाले होते हैं। (६) षष्ठ भावमें शुभग्रह शत्रुको बढ़ानेवाले और पापग्रह शत्रुके लिये घातक होते हैं। (७) सप्तम भावमें पापग्रह रोगकारक और शुभग्रह शुभ फल देनेवाले होते हैं। (८) अष्टम भावमें शुभग्रह और पापग्रह सभी कर्ता (यजमान)–के लिये घातक होते हैं। (९) नवम भावमें पापग्रह हों तो वे धर्मको नष्ट करनेवाले हैं और शुभग्रह शुभ फल देनेवाले होते हैं। (१०) दशम भावमें पापग्रह दुःखदायक और शुभग्रह सुखशकी वृद्धि करनेवाले होते हैं। (११) एकादश स्थानमें पाप और शुभ सब ग्रह सब प्रकारसे लाभकारक ही होते हैं। (१२)

लग्नसे द्वादश स्थानमें पाप या शुभ सभी ग्रह व्यय (खर्च)–को बढ़ानेवाले होते हैं॥ ५३१—५३६॥

(प्रतिष्ठामें अन्य विशेष बात—) प्रतिष्ठा करनेवाले पुरोहित (या आचार्य)–को अर्थज्ञान न हो तो यजमानका अनिष्ट होता है। मन्त्रोंका अशुभ उच्चारण हो तो ऋत्विजों (यज्ञ करनेवालों)–का और कर्म विधिहीन हो तो कर्ताकी स्त्रीका अनिष्ट होता है। इसलिये नारद! देव-प्रतिष्ठाके समान दूसरा शत्रु भी नहीं है। यदि लग्नमें अधिक गुण हों और थोड़े–से दोष हों तो उसमें देवताओंकी प्रतिष्ठा कर लेनी चाहिये। इससे कर्ता (यजमान)–के अभीष्ट मनोरथकी सिद्धि होती है। मुने! अब मैं संक्षेपसे ग्राम, मन्दिर तथा गृह आदिके निर्माणकी बात बताता हूँ॥ ५३७—५३९॥

(गृहनिर्माणके विषयमें ज्ञातव्य बातें—) गृह आदि बनाना हो तो पहले गन्ध, वर्ण, रस तथा आकृतिके द्वारा क्षेत्र (भूमि)–की परीक्षा कर लेनी चाहिये। यदि उस स्थानकी मिट्टीमें मधु (शहद)–के समान गन्ध हो तो ब्राह्मणोंके, पुष्पसदृश गन्ध हो तो क्षत्रियोंके, आम्ल (खटाई)–के समान गन्ध हो तो वैश्योंके और मांसकी–सी गन्ध हो तो वह स्थान शूद्रोंके बसनेयोग्य जानना चाहिये। वहाँकी मिट्टीका रंग श्वेत हो तो ब्राह्मणोंके, लाल हो तो क्षत्रियोंके, पीत (पीला) हो तो वैश्योंके और कृष्ण (काला) हो तो वह शूद्रोंके निवासके योग्य है। यदि वहाँके मिट्टीका स्वाद मधुर हो तो ब्राह्मणोंके, कडुवा (मिर्चके समान) हो तो क्षत्रियोंके, तिक्क हो तो वैश्योंके और कषाय (कसैला) स्वाद हो तो उस स्थानको शूद्रोंके निवास करनेयोग्य समझना चाहिये॥ ५४०—५४१॥ ईशान, पूर्व और उत्तर दिशामें प्लव (नीची) भूमि सबके लिये अत्यन्त वृद्धि देनेवाली होती है। अन्य दिशाओंमें प्लव (नीची) भूमि सबके लिये हानि करनेवाली होती है॥ ५४२॥

(गृहभूमि-परीक्षा—) जिस स्थानमें घर बनाना

हो वहाँ अरति (कोहिनीसे कनिष्ठा अंगुलितक) के बराबर लम्बाई, चौड़ाई और गहराई करके कुण्ड बनावे। फिर उसे उसी खोदी हुई मिट्टीसे भरे। यदि भरनेसे मिट्टी शेष बच जाय तो उस स्थानमें वास करनेसे सम्पत्तिकी वृद्धि होती है। यदि मिट्टी कम हो जाय तो वहाँ रहनेसे सम्पत्तिकी हानि होती है। यदि सारी मिट्टीसे वह कुण्ड भर जाय तो मध्यम फल समझना चाहिये ॥ ५४३ ॥ अथवा उसी प्रकार अरतिके मापका कुण्ड बनाकर सायंकाल उसको जलसे पूरित कर दे और प्रातःकाल देखे; यदि कुण्डमें जल अवशिष्ट हो तो उस स्थानमें वृद्धि होगी। यदि कीचड़ (गीली मिट्टी) ही बची हो तो मध्यम फल है और यदि कुण्डकी भूमिमें दरार पड़ गयी हो तो उस स्थानमें वास करनेसे हानि होगी ॥ ५४४ ॥

मुने! इस प्रकार निवास करनेयोग्य स्थानकी भलीभाँति परीक्षा करके उक्त लक्षणयुक्त भूमिमें दिक्साधन (दिशाओंका ज्ञान) करनेके लिये समतल भूमिमें वृत्त (गोल रेखा) बनावे। वृत्तके मध्य भागमें द्वादशांगुल शंकु (बाहर विभाग या पर्वसे युक्त एक सीधी लकड़ी)-की स्थापना करे और दिक्साधनविधिसे दिशाओंका ज्ञान करे। फिर कतके नामके अनुसार षट्कर्ण शुद्ध क्षेत्रफल (वास्तुभूमिकी लम्बाई-चौड़ाईका गुणनफल) ठीक करके अभीष्ट लम्बाई-चौड़ाईके बराबर (दिशासाधित रेखानुसार) चतुर्भुज बनावे। उस चतुर्भुज रेखामार्गपर सुन्दर प्राकार (चहारदीवारी) बनावे। लम्बाई और चौड़ाईमें पूर्व आदि चारों दिशाओंमें आठ-आठ द्वारके भाग होते हैं। प्रदक्षिणक्रमसे उनके निमाङ्कित फल हैं। (जैसे पूर्वभागमें उत्तरसे दक्षिणतक) १- हानि, २- निर्धनता, ३- धनलाभ, ४- राजसम्मान, ५- बहुत धन, ६- अति चोरी, ७- अति क्रोध तथा ८- भय—ये क्रमशः आठ द्वारोंके फल हैं। दक्षिण दिशामें क्रमशः १- मरण, २- बन्धन, ३- भय, ४- धनलाभ, ५- धनवृद्धि, ६- निर्भयता, ७- व्याधिभय तथा ८- निर्बलता—ये (पूर्वसे

पश्चिमतकके) आठ द्वारोंके फल हैं। पश्चिम दिशामें क्रमशः १- पुत्रहानि, २- शत्रुवृद्धि, ३- लक्ष्मीप्राप्ति, ४- धनलाभ, ५- सौभाग्य, ६- अति दौर्भाग्य, ७- दुःख तथा ८- शोक—ये दक्षिणसे उत्तरतकके आठ द्वारोंके फल हैं। इसी प्रकार उत्तर दिशामें (पश्चिमसे पूर्वतक) १- स्त्री-हानि, २- निर्बलता, ३- हानि, ४- धान्यलाभ, ५- धनागम, ६- सम्पत्ति-वृद्धि, ७- भय तथा ८- रोग—ये क्रमशः आठ द्वारोंके फल हैं ॥ ५४५—५५२ ॥

इसी तरह पूर्व आदि दिशाओंके गृहादिमें भी द्वार और उसके फल समझने चाहिये। द्वारका जितना विस्तार (चौड़ाई) हो, उससे दुगुनी ऊँची किवाड़ें बनाकर उन्हें घरमें (चहारदीवारीके) दक्षिण या पश्चिम भागमें लगावे ॥ ५५३ ॥ चहारदीवारीके भीतर जितनी भूमि हो, उसके इक्यासी पद (समान खण्ड) बनावे। उनके बीचके नौ खण्डोंमें ब्रह्माका स्थान समझे। यह गृहनिर्माणमें अत्यन्त निन्दित है। चहारदीवारीसे मिले हुए जो चारों ओरके ३२ भाग हैं, वे पिशाचांश कहलाते हैं। उनमें घर बनाना दुःख, शोक और भय देनेवाला होता है। शेष अंशों (पदों)-में घर बनाये जायें तो पुत्र, पौत्र और धनकी वृद्धि करनेवाले होते हैं ॥ ५५४-५५५ ॥

वास्तुभूमिकी दिशा-विदिशाओंकी रेखा वास्तुकी शिरा कहलाती है। एवं ब्रह्मभाग, पिशाचभाग तथा शिराका जहाँ-जहाँ योग हो, वहाँ-वहाँ वास्तुकी मर्मसन्धि समझनी चाहिये। वह मर्मसन्धि गृहारम्भ तथा गृह-प्रवेशमें अनिष्टकारक समझी जाती है ॥ ५५६-५५७ ॥

(गृहारम्भमें प्रशस्त मास—) मार्गशीर्ष, फाल्गुन, वैशाख, माघ, श्रावण और कार्तिक—ये मास गृहारम्भमें पुत्र, आरोग्य और धन देनेवाले होते हैं ॥ ५५८ ॥

(दिशाओंमें वर्ग और वर्गेश—) पूर्व आदि आठों दिशाओंमें क्रमशः अकारादि आठ वर्ग होते हैं। इन दिशावर्गोंके क्रमशः गरुड, मार्जार, सिंह,

श्वान, सर्प, मूषक, गज और शशक (खरगोश) — ये योनियाँ होती हैं। इन योनि-वर्गोंमें अपने पाँचवें वर्गवाले परस्पर शत्रु होते हैं^१ ॥ ५५९-५६० ॥

(जिस ग्राममें या जिस दिशामें घर बनाना हो, वह साध्य तथा घर बनानेवाला साधक, कर्ता और भर्ता आदि कहलाता है। इसको ध्यानमें रखना चाहिये।) साध्य (ग्राम)-की वर्ग-संख्याको लिखकर, उसके पीछे (बायें भागमें) साधककी वर्ग-संख्या लिखे। उसमें आठका भाग देकर जो शेष बचे, वह साधकका धन होता है। इसके विपरीत विधिसे (अर्थात् साधककी वर्ग-संख्याके बायें भागमें साध्यकी वर्ग-संख्या रखकर जो संख्या बने, उसमें आठसे भाग देकर शेष) साधकका

ऋण होता है। इस प्रकार ऋणकी संख्या अल्प और धन-संख्या अधिक हो तो शुभ माने (अर्थात् उस ग्राम या उस दिशामें बनाया हुआ घर रहने योग्य है, ऐसा समझे)^२ ॥ ५६१(क-ख) ॥

इसी प्रकार साधकके नक्षत्र साध्यके नक्षत्रतक गिनकर जो संख्या हो उसको चारसे गुणा करके गुणनफलमें सातसे भाग दे तो शेष साधकका धन होता है ॥ ५६२ ॥

(वास्तुभूमि तथा घरके धन, ऋण, आय, नक्षत्र, वार और अंशके ज्ञानका साधन—) वास्तुभूमि या घरकी चौड़ाईको लम्बाईसे गुणा करनेपर गुणनफल 'पद' कहलाता है। उस (पद)-को (६ स्थानोंमें रखकर) क्रमशः ८, ३, ९, ८,

१. दिशा और वर्ग जाननेका चक्र, यथा—

	पूर्व १				
८ ईशान	शवर्ग	अवर्ग	कर्वर्ग	अग्नि २	
	शशक	गरुड़	मार्जार		
७ उत्तर	यवर्ग		चर्वर्ग	दक्षिण ३	
	गज		सिंह		
६ वायु	पवर्ग	तवर्ग	टवर्ग	नैऋत्य	
	मूषक	सर्प	श्वान	पश्चिम ५	

उदाहरण—अवर्ग (अ इ उ ऋ लु ए ऐ ओ औ) -की पूर्व दिशा और गरुडयोनि है। वहाँसे क्रमशः दिशा गिननेपर पाँचवीं दिशा (पश्चिम) -में तवर्ग और सर्प इस अवर्ग एवं गरुडका शत्रु है। इस प्रकार परस्पर सम्मुख दिशामें शत्रुता होती है। इसी तरह कर्वर्ग (क ख ग घ ङ) -की दिशा अग्निकोण ओर योनि मार्जार (बिलाव) है। चर्वर्ग (च छ ज झ ज) -की दक्षिण दिशा और सिंह योनि है। टवर्ग (ट ठ ड ढ ण) -की नैऋत्य दिशा और श्वान योनि है। तवर्ग (त थ द ध न) -की पश्चिम दिशा और सर्प योनि है। पवर्ग (प फ ब भ म) -की वायुकोण दिशा और मूषक (चूहा) योनि है। यवर्ग (य र ल व) -की उत्तर दिशा और गज (हाथी) योनि है। शवर्ग (श ष स ह) -की ईशान दिशा और शशक (खरगोश) योनि है। इसका प्रयोजन यह है कि अपने-अपने नामके आदि अक्षरसे अपना वर्ग समझकर दिशा और योनिका ज्ञान करे। शत्रु-दिशामें अपने रहनेके लिये घर न बनावे। अर्थात् उस दिशाके घरमें स्वयं वास न करे तथा शत्रुवर्गवाले गाँवमें जाकर वास न करे इत्यादि। इसके सिवा, विशेष प्रयोजन मूलमें कहे गये हैं।

२. उदाहरण—विचार करना है कि 'जयनारायण' नामक व्यक्तिको गोरखपुरमें बसने या व्यापार करनेमें किस प्रकारका लाभ होगा? तो साध्य (गोरखपुर)-की वर्ग-संख्या २ के बायें भागमें साधक (जयनारायण)-की वर्ग-संख्या ३ रखनेसे ३२ हुआ। इसमें ८ से भाग देनेपर शून्य अर्थात् ८ बचा, यह साधक (जयनारायण)-का धन हुआ तथा इससे विपरीत वर्ग-संख्या २ इको रखकर इसमें ८ का भाग देनेसे शेष ७ बचा। यह साधक (जयनारायण)-का ऋण हुआ। यहाँ ऋण ७ से धन अधिक है; अतः जयनारायणके लिये गोरखपुर निवास करनेयोग्य है—यह सिद्ध हुआ। तात्पर्य यह कि जयनारायणको गोरखपुरमें ८ लाभ और ७ खर्च होता रहेगा।

९, ६ से गुणा करे और गुणनफलमें क्रमशः १२, ८, ८, २७, ७, ९ से भाग दे। फिर जो शेष बचें, वे क्रमशः धन, ऋण, आय, नक्षत्र, वार तथा अंश होते हैं। धन अधिक हो तो वह घर शुभ होता है। यदि ऋण अधिक हो तो अशुभ होता है तथा विषम (१, ३, ५, ७) आय शुभ और सम (२, ४, ६, ८) आय अशुभ होता है। घरका जो नक्षत्र हो, वहाँसे अपने नामके नक्षत्रतक गिनकर जो संख्या हो, उसमें ९ से भाग दे। फिर यदि शेष (तारा) ३ बचे तो धनका नाश होता है। ५ बचे तो यशकी हानि होती है और ७ बचे तो गृहकर्ताका ही मरण होता है। घरकी राशि और अपनी राशि गिननेपर परस्पर २, १२ हो तो धनहानि होती है; ९, ५ हो तो पुत्रकी हानि होती है और ६, ८ हो तो अनिष्ट होता है; अन्य संख्या हो तो शुभ समझना चाहिये। सूर्य और मङ्गलके वार तथा अंश हो तो उस घरमें अग्निभय होता है। अन्य वार-अंश हो तो सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंकी सिद्धि होती है^१ ॥ ५६३—५६७ ॥

(वास्तुपुरुषकी स्थिति—) भादों आदि तीन-तीन मासोंमें क्रमशः पूर्व आदि दिशाओंकी ओर मस्तक करके बायीं करवटसे सोये हुए महासर्पस्वरूप 'चर' नामक वास्तुपुरुष प्रदक्षिणक्रमसे विचरण करते रहते हैं। जिस समय जिस दिशामें वास्तुपुरुषका मस्तक हो, उस समय उसी दिशामें घरका दरवाजा

बनाना चाहिये। मुखसे विपरीत दिशामें घरका दरवाजा बनानेसे रोग, शोक और भय होते हैं। किंतु यदि घरमें चारों दिशाओंमें द्वार हो तो यह दोष नहीं होता है ॥ ५६८—५७० ॥

गृहारम्भकालमें नींवके भीतर हाथभरके गड्ढमें स्थापित करनेके लिये सोना, पवित्र स्थानकी रेण (धूलि), धान्य और सेवारसहित इंट घरके भीतर संग्रह करके रखे। घरकी जितनी लंबाई हो, उसके मध्यभागमें वास्तुपुरुषकी नाभि रहती है। उसके तीन अङ्गुल नीचे (वास्तुपुरुषके पुच्छभागकी ओर) कुक्षि रहती है। उसमें शंकुका न्यास करनेसे पुत्र आदिकी वृद्धि होती है ॥ ५७१—५७२ ॥

(शांकुप्रमाण—) खदिर (खैर), अर्जुन, शाल (शाखा), युगपत्र (कचनार) रक्तचन्दन, पलाश, रक्तशाल, विशाल आदि वृक्षोंसे किसीकी लकड़ीसे शंकु बनता है। ब्राह्मणादि वर्णोंके लिये क्रमशः २४, २३, २० और १६ अङ्गुलके शंकु होने चाहिये। उस शंकुके बराबर-बराबर तीन भाग करके ऊपरवाले भागमें चतुष्कोण, मध्यवाले भागमें अष्टकोण और नीचेवाले (तृतीय) भागमें बिना कोणका (गोलाकार) उसका स्वरूप होना उचित है। इस प्रकार उत्तम लक्षणोंसे युक्त कोमल और छेदरहित शंकु शुभ दिनमें बनावे। उसको षड्वर्गद्वारा शुद्ध सूत्रसे सूत्रित^२ भूमि (गृहक्षेत्र)-में मृदु, ध्रुव क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्रोंमें, अमावास्या और रिक्ताको छोड़कर अन्य

१.उदाहरण—मान लीजिये, घरकी लंबाई २५ हाथ और चौड़ाई १५ हाथ है तो इनको परस्पर गुणा करनेसे ३७५ यह पद हुआ। इसको ८ से गुणा करनेपर गुणनफल ३००० हुआ। इसमें १२ का भाग देनेपर शेष ० अर्थात् १२ धन हुआ। फिर पदको ३ से गुणा किया तो ११२५ हुआ। इसमें ८से भाग देनेपर शेष ७ आय हुआ। पुनः पद ३७५ को ९ से गुणा किया तो ३३७५ हुआ। इसमें ८ से भाग देनेपर शेष ७ आय हुआ। इसी तरह पदको ८ से गुणा करनेपर ३००० हुआ। इसमें २७ से भाग दिया तो शेष ३ नक्षत्र हुआ। फिर पदको ९ से गुणा किया तो ३३७५ हुआ। इसमें ७ से भाग देनेपर शेष १ वार हुआ। पुनः पद ३७५ को ६ से गुणा किया तो २२५० हुआ। इसमें ९ से भाग देनेपर शेष ० अर्थात् ९ अंश हुआ। यहाँ सब वस्तुएँ शुभ हैं, केवल वार १ रवि हुआ। इसलिये इस प्रकारके घरमें सब कुछ रहते हुए भी अग्निका भय रहेगा; ऐसा समझना चाहिये; इसलिये ऐसा पद देखकर लेना चाहिये, जिसमें सर्वथा शुभ हो।

२.पूर्वोक्त आय और षट्वर्गादिसे शोधित गृहके चारों ओरकी लंबाई-चौड़ाईके प्रमाण-तुल्य सूत्रसे घिरी हुई भूमिको ही यहाँ सूत्रित कहा है।

तिथियोंमें, रविवार, मङ्गलवार तथा चर लग्रको छोड़कर अन्य वारों और अन्य (स्थिर या द्विस्वभाव) लग्रोंमें, जब पापग्रह लग्रमें न हो, अष्टम स्थान शुद्ध (ग्रहरहित) हो; शुभ राशि लग्र हो और उसमें शुभ नवमांश हो, उस लग्रमें शुभग्रहका संयोग या दृष्टि हो; ऐसे समय (सुलग्र)-में ब्राह्मणोंद्वारा पुण्याहवाचन कराते हुए माङ्गलिक वाद्य और सौभाग्यवती स्त्रियोंके मङ्गलगीत आदिके साथ मुहूर्त बतानेवाले दैवज्ञ (ज्योतिषके विद्वान् ब्राह्मण) के पूजन (सत्कार)-पूर्वक कुक्षिस्थानमें शंकुकी स्थापना करे। लग्रसे के न्द्र और त्रिकोणमें शुभ ग्रह तथा ३, ६, ११ में पापग्रह और चन्द्रमा हो तो यह शंकुस्थापन श्रेष्ठ है॥ ५७३—५७९१॥

घरके छः भेद होते हैं—१-एकशाला, २-द्विशाला, ३-त्रिशाला, ४-चतुश्शाला, ५-सप्तशाला तथा ६- दशशाला। इन छहों शालाओंमेंसे प्रत्येकके १६ भेद होते हैं। उन सब भेदोंके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—१-ध्रुव, २-धान्य, ३-जय, ४-नन्द, ५-खर, ६-कन्त, ७-मनोरम, ८ सुमुख, ९ दुर्मुख, १० क्रूर, ११ शत्रुद, १२ स्वर्णद, १३ क्षय, १४

आक्रन्द, १५ विपुल और १६ वाँ विजय नामक गृह होता है। चार अक्षरोंके प्रस्तारके भेदसे क्रमशः इन गृहोंकी गणना करनी चाहिये॥ ५८०—५८२१॥

(प्रस्तारभेद—) प्रथम ४ गुरु (१) चिह्न लिखकर उनमें प्रथम गुरुके नीचे लघु (१) चिह्न लिखे। फिर आगे जैसा ऊपर हो उसी प्रकारके गुरु या लघु चिह्न लिखना चाहिये। फिर उसके नीचे (तीसरी पद्धतिमें) प्रथम गुरु चिह्नके नीचे लघु चिह्न लिखकर आगे (दाहिने भागमें) जैसे ऊपर गुरु या लघु हो वैसा ही चिह्न लिखे तथा पीछे (बायें भागमें) गुरु चिह्नसे पूरा करे। इसी प्रकार पुनः-पुनः तबतक लिखता जाय जबतक कि पंक्ति (प्रस्तार)-में सब चिह्न लघु न हो जाय। इस प्रकार चार दिशा होनेके कारण ४ अक्षरोंसे १६ भेद होते हैं। प्रत्येक भेदमें चारों चिह्नोंको प्रदक्षिणक्रमसे पूर्व आदि दिशा समझकर जहाँ-जहाँ लघु चिह्न पड़े, वहाँ-वहाँ घरका द्वार और अलिन्द (द्वारके आगेका भाग=चबूतरा) बनाना चाहिये। इस प्रकार पूर्वादि दिशाओंमें अलिन्दके भेदोंसे १६ प्रकारके घर होते हैं*॥ ५८३—५८४१॥

१.प्रस्तारस्वरूप—

संख्या	स्वरूप				नाम	द्वारकी दिशा
	पूर्व,	दक्षिण,	पश्चिम,	उत्तर		
१	S	S	S	S	ध्रुव	ऊर्ध्व (ऊपर)
२	I	S	S	S	धान्य	पूर्व
३	S	I	S	S	जय	दक्षिण
४	I	I	S	S	नन्द	पूर्व-दक्षिण
५	S	S	I	S	खर	पश्चिम
६	I	S	I	S	कन्त	पूर्व-पश्चिम
७	S	I	I	S	मनोरम	दक्षिण-पश्चिम
८	I	I	I	S	सुमुख	पूर्व-दक्षिण-पश्चिम
९	S	S	S	I	दुर्मुख	उत्तर
१०	I	S	S	I	क्रूर	पूर्व-उत्तर
११	S	I	S	I	शत्रुद	दक्षिण-उत्तर
१२	I	I	S	I	स्वर्णद	पूर्व-दक्षिण-उत्तर
१३	S	S	I	I	क्षय	पश्चिम-उत्तर
१४	I	S	I	I	आक्रन्द	पूर्व-पश्चिम-उत्तर
१५	S	I	I	I	विपुल	दक्षिण-पश्चिम-उत्तर
१६	I	I	I	I	विजय	पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तर

वास्तुभूमिकी पूर्वदिशामें स्नानगृह, अग्निकोणमें पाकगृह (रसोईघर), दक्षिणमें शयनगृह, नैऋत्यकोणमें शस्त्रागार, पश्चिममें भोजनगृह, वायुकोणमें धन-धान्यादि रखनेका घर, उत्तरमें देवताओंका गृह और ईशानकोणमें जलका गृह (स्थान) बनाना चाहिये तथा आग्नेयकोणसे आरम्भ करके उक्त दो-दो घरोंके बीच क्रमशः मन्थन (दूध-दहीसे घृत निकालने)-का, घृत रखनेका, पैखानेका, विद्याभ्यासका, स्त्रीसहवासका, औषधका और शृङ्गारकी सामग्री रखनेका घर बनाना शुभ कहा गया है। अतः इन सब घरोंमें उन-उन सब वस्तुओंको रखना चाहिये ॥ ५८५—५८८ १ ॥

(आयोके नाम और दिशा—) पूर्वादि आठ दिशाओंमें क्रमसे ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वान, वृक्ष, खर (गदहा), गज और ध्वांक्ष (काक)—ये आठ आय होते हैं ॥ ५८९ १ ॥

(घरके समीप निन्द्य वृक्ष—) पाकर, गूलर, आम, नीम, बहेड़ा तथा कॉटेवाले और दुग्धवाले सब वृक्ष, पीपल, कपित्थ (कैथ), अगस्त्य वृक्ष, सिन्धुवार (निर्गुण्डी) और इमली—ये सब वृक्ष घरके समीप निन्दित कहे गये हैं। विशेषतः घरके दक्षिण और पश्चिम-भागमें ये सब वृक्ष हों तो धन आदिका नाश करनेवाले होते हैं ॥ ५९०—५९९ १ ॥

(गृह-प्रमाण—) घरके स्तम्भ (खम्बे) घरके पैर होते हैं। इसलिये वे समसंख्या (४, ६, ८ आदि)-में होनेपर ही उत्तम कहे गये हैं; विषम संख्यामें नहीं। घरको न तो अधिक ऊँचा ही करना चाहिये, न अधिक नीचा ही। इसलिये अपनी इच्छा (निर्वाह)-के अनुसार भित्ति (दीवार) की ऊँचाई करनी चाहिये। घरके ऊपर जो घर (दूसरा मंजिल) बनाया जाता है, उसमें भी इस

प्रकारका विचार करना चाहिये। घरोंकी ऊँचाईके प्रमाण आठ प्रकारके कहे गये हैं, जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—१-पाञ्चाल, २-वैदेह, ३-कौरव, ४-कुञ्जन्यक^१, ५-मागध, ६-शूरसेन, ७ गान्धार और ८ आवन्तिक

। जहाँ घरकी ऊँचाई उसकी चौड़ाईसे सवागुनी अधिक होती है, वह भूतलसे ऊपरतकका पाञ्चालमान कहलाता है, फिर उसी ऊँचाईको उत्तरोत्तर सवागुनी बढ़ानेसे वैदेह आदि सब मान होते हैं। इनमें पाञ्चालमान तो सर्वसाधारण जनोंके लिये शुभ है। ब्राह्मणोंके लिये आवन्तिकमान, क्षत्रियोंके लिये गान्धारमान तथा वैश्योंके लिये कौजन्यमान है। इस प्रकार ब्राह्मणादि वर्णोंके लिये यथोत्तर गृहमान समझना चाहिये तथा दूसरे मंजिल और तीसरे मंजिलके मकानमें भी पानीका बहाव पहले बताये अनुसार ही बनाना चाहिये^२ ॥ ५९२—५९८ ॥

(घरमें प्रशस्त आय—) ध्वज अथवा गज आयमें ऊँट और हाथीके रहनेके लिये घर बनवावे तथा अन्य सब पशुओंके घर भी उसी (ध्वज और गज) आयमें बनाने चाहिये। द्वार, शव्या, आसन, छाता और ध्वजा—इन सबोंके निर्माणके लिये सिंह, वृष अथवा ध्वज आय होने चाहिये ॥ ५९९ १ ॥

अब मैं नूतनगृहमें प्रवेशके लिये वास्तुपूजाकी विधि बताता हूँ—घरके मध्यभागमें तन्दुल (चावल)-पर पूर्वसे पश्चिमकी ओर एक-एक हाथ लम्बी दस रेखाएँ खींचे। फिर उत्तरसे दक्षिणकी ओर भी उतनी ही लम्बी-चौड़ी दस रेखाएँ बनावे। इस प्रकार उसमें बराबर-बराबर ८१ पद (कोष्ठ) होते हैं। उनमें आगे बताये जानेवाले ४५ देवताओंका यथोक्त स्थानमें नामोल्लेख करे। बत्तीस देवता बाहर (प्रान्तके कोष्ठोंमें) और तेरह देवता भीतर

१. मूलमें 'कुञ्जन्यकम्' पाठ है; परंतु कुञ्जन्य कोई प्रसिद्ध देश नहीं है; इसलिये प्रतीत होता है कि यहाँ 'कान्यकुञ्जकम्' के स्थानमें 'कुञ्जकन्यकम्' था। फिर लेखकादिके दोषसे 'कुञ्जन्यकम्' हो गया है।

२. पूर्व या उत्तर प्लवभूमिमें घर बनाना प्रशस्त कहा गया है। यदि नीचेके तल्लेमें पूर्व दिशामें जलस्राव हो तो ऊपरके मंजिलमें भी पूर्व दिशामें ही जलस्राव होना चाहिये।

पूजनीय होते हैं। उन ४५ देवताओंके स्थान और नामका क्रमशः वर्णन करता हूँ। किनारेके बत्तीस कोष्ठोंमें ईशान कोणसे आरम्भ करके क्रमशः बत्तीस देवता पूज्य हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—कृपीट योनि (अग्नि) १, पर्जन्य २, जयन्त, ३, इन्द्र ४, सूर्य ५, सत्य ६, भृश ७, आकाश ८, वायु ९, पूषा १०, अनृत (वितथ) ११, गृहक्षत^१ १२, यम १३, गन्धर्व १४, भृङ्गराज १५, मृग १६, पितर १७, दौवारिक १८, सुग्रीव १९, पुष्प-दन्त २०, वरुण २१, असुर २२, शेष २३, राजयक्षमा^२ २४, रोग २५, अहि २६, मुख्य २७, भल्लाटक २८, सोम २९, सर्प ३०, अदिति ३१ और दिति ३२,— ये चारों किनारोंके देवता हैं। ईशान, अग्नि, नैऋत्य और वायुकोणके देवोंके समीप क्रमशः आप ३३, सावित्र ३४, जय ३५, तथा रुद्र ३६ के पद हैं। ब्रह्माके चारों ओर पूर्व आदि आठों दिशाओंमें क्रमशः अर्यमा ३७, सविता ३८, विवस्वान् ३९, विबुधाधिप ४०, मित्र ४१, राजयक्षमा ४२, पृथ्वीधर

४३, आपवत्स ४४ हैं और मध्यके नव पदोंमें (४५) ब्रह्माजीको स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार सब पदोंमें ये पैंतालीस देवता पूजनीय होते हैं। जैसे ईशान-कोणमें आप, आपवत्स, पर्जन्य, अग्नि और दिति—ये पाँच देव एकपद होते हैं, उसी प्रकार अन्य कोणोंके पाँच-पाँच देवता भी एक-पदके भागी हैं। अन्य जो बाह्य-पद्धतिके (जयन्त, इन्द्र आदि) बीस देवता हैं, वे सब द्विपद दो-दो पदोंके भागी हैं तथा ब्राह्मसे पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशामें जो अर्यमा, विवस्वान्, मित्र और पृथ्वीधर—ये चार देवता हैं, वे त्रिपद (तीन-तीन पदोंके भागी) हैं, अतः वास्तु-विधिके ज्ञाता विद्वान् पुरुषको चाहिये कि ब्रह्माजीसहित इन एकपद, द्विपद तथा त्रिपद देवताओंका वास्तुमन्त्रों-द्वारा दूर्वा, दही, अक्षत, फूल, चन्दन, धूप, दीप और नैवेद्यादिसे विधिवत् पूजन करे। अथवा ब्राह्ममन्त्रसे आवाहनादि षोडश (या पञ्च) उपचारोंद्वारा उन्हें दो श्वेत वस्त्र समर्पित करेः ॥ ६००—६१३ ॥

१-२. अन्य संहितामें १२ वाँ बृहत्क्षत; २४ वाँ पापयक्षमा कहा गया है।

३. एकाशीतिपद वास्तुचक्र—

शिखी १	पर्जन्य २	जयन्त ३	इन्द्र ४	सूर्य ५	सत्य ६	भृश ७	आकाश ८	वायु ९
दिति ३२	आप ३३	जयन्त	इन्द्र	सूर्य	सत्य	भृश	सावित्र ३४	पूषा १०
अदिति ३१	अदिति	४४ आपवत्स	अर्यमा	३७ अर्यमा	अर्यमा	३८ सविता	वितथ ११	वितथ ११
सर्प ३०	सर्प	पृथ्वीधर				विवस्वान्	गृहक्षत १२	गृहक्षत १२
सोम २९	सोम	पृथ्वीधर ४३				विवस्वान् ३९	यम १३	यम १३
भल्लाटक २८	भल्लाटक	पृथ्वीधर				विवस्वान्	गन्धर्व १४	गन्धर्व १४
मुख्य २७	मुख्य	राजयक्षमा ४२	मित्र	मित्र ४१	मित्र	विबुधाधिप ४०	भृङ्ग १५	भृङ्ग १५
अहि २६	रुद्र ३६	शेष	असुर	वरुण	पुष्पदन्त	सुग्रीव १९	जय ३५	मृग १६
रोग २५	राजयक्षमा २४	शेष २३	असुर २२	वरुण २१	पुष्पदन्त २०	सुग्रीव १९	दौवारिक १८	पितर १७

नैवेद्यमें तीन प्रकारके (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य) अन्न माङ्गलिक गीत और वाद्यके साथ अर्पण करे । अन्तमें ताम्बूल (पान-सोपारी) अर्पण करके वास्तुपुरुषकी इस प्रकार प्रार्थना करे ॥ ६१४ ॥

वास्तुपुरुष नमस्तेऽस्तु भूशव्यानिरत प्रभो ।

मदगृहं धनधान्यादिसमृद्धं कुरु सर्वदा ॥

‘ भूमिशव्यापर शयन करनेवाले वास्तुपुरुष ! आपको मेरा नमस्कार है । प्रभो ! आप मेरे घरको धन-धान्य आदिसे सम्पन्न कीजिये । ’

इस प्रकार प्रार्थना करके देवताके समक्ष पूजा करनेवाले (पुरोहित) - को यथाशक्ति दक्षिणा दे तथा अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें भी दक्षिणा दे । जो मनुष्य सावधान होकर गृहारम्भ या गृहप्रवेशके समय इस विधिसे वास्तुपूजा करता है, वह आरोग्य, पुत्र, धन और धान्य प्राप्त करके सुखी होता है । जो मनुष्य वास्तुपूजा न करके नये घरमें प्रवेश करता है, वह नाना प्रकारके रोग, क्लेश और संकट प्राप्त करता है ॥ ६१५—६१८ ॥

जिसमें किंवाढ़ें न लगी हों, जिसे ऊपरसे छत आदिके द्वारा छाया न गया हो तथा जिसके लिये (पूर्वोक्त रूपसे वास्तुपूजन करके) देवताओंको बलि (नैवेद्य) और ब्राह्मण आदिको भोजन न दिया गया हो, ऐसे नूतन गृहमें कभी प्रवेश न करे; क्योंकि वह विपत्तियोंकी खान (स्थान) होता है ॥ ६१९ ॥

(यात्रा-प्रकरण —) अब मैं जिस प्रकारसे यात्रा करनेपर वह राजा तथा अन्य जनोंके लिये अभीष्ट फलकी सिद्धि करनेवाली होती है, उस विधिका वर्णन करता हूँ । जिनके जन्म-समयका ठीक-ठीक ज्ञान है, उन राजाओं तथा अन्य

जनोंको उस विधिसे यात्रा करनेपर उत्तम फलकी प्राप्ति होती है । जिन मनुष्योंका जन्मसमय अज्ञात है, उनको तो घुणाक्षर* न्यायसे ही कभी फलकी प्राप्ति हो जाती है, तथापि उनको भी प्रश्नलग्नसे तथा निमित्त और शकुन आदिद्वारा शुभाशुभ देखकर यात्रा करनेसे अभीष्ट फलका लाभ होता है ॥ ६२०—६२१ ॥

(यात्रामें निषिद्ध तिथियाँ —) षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा और शुक्लपक्षकी प्रतिपदा—इन तिथियोंमें यात्रा करनेसे दरिद्रता तथा अनिष्टकी प्राप्ति होती है ॥ ६२२ ॥

(विहित नक्षत्र —) अनुराधा, पुनर्वसु, मृगशिरा, हस्त, रेवती, अश्विनी, श्रवण, पुष्य और धनिष्ठा—इन नक्षत्रोंमें यदि अपने जन्म-नक्षत्रसे सातवीं, पाँचवीं और तीसरी तारा न हो तो यात्रा अभीष्ट फलको देनेवाली होती है ॥ ६२३ ॥

(दिशाशूल —) शनि और सोमवारके दिन पूर्व दिशाकी ओर न जाय, गुरुवारको दक्षिण न जाय, शुक्र और रविवारको पश्चिम न जाय तथा बुध और मङ्गलको उत्तर दिशाकी यात्रा न करे ॥ ६२४ ॥ ज्येष्ठा, पूर्वभाद्रपद, रोहिणी और उत्तराफालगुनी—ये नक्षत्र क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशामें शूल होते हैं ।

(सर्वदिग्गमन नक्षत्र —) अनुराधा, हस्त, पुष्य और अश्विनी—ये चार नक्षत्र सब दिशाओंकी यात्रामें प्रशस्त हैं ॥ ६२५ ॥

(दिग्द्वार-नक्षत्र —) कृत्तिकासे आरम्भ करके सात-सात नक्षत्रसमूह पूर्वादि दिशाओंमें रहते हैं । तथा अग्निकोणसे वायुकोणतक परिघदण्ड रहता है; अतः इस प्रकार यात्रा करनी चाहिये,

* जैसे घुण (कीटविशेष) काठको खोदता रहता है तो उससे कहीं अकारादि अक्षरका स्वरूप अकस्मात् बन जाता है; उसी प्रकार जो अपने जन्मसमयसे अपरिचित हैं, वे लग्न आदिको न जानकर भी यात्रा करते-करते कभी संयोगवश शुभ फलके भागी हो जाते हैं ।

जिससे परिघदण्डका लङ्घन न हो^१ ॥ ६२६ ॥

पूर्वके नक्षत्रोंमें अग्निकोणकी यात्रा करे। इसी प्रकार दक्षिणके नक्षत्रोंमें अग्निकोण तथा पश्चिम और उत्तरके नक्षत्रोंमें वायुकोणकी यात्रा कर सकते हैं।

(दिशाओंकी राशियाँ—) पूर्व आदि चार दिशाओंमें मेष आदि १२ राशियाँ पुनः पुनः (तीन आवृत्तिसे) आती हैं^२ ॥ ६२७ ॥

(लालाटिकयोग—) जिस दिशामें यात्रा करनी हो, उस दिशाका स्वामी ललाटगत (सामने) हो तो यात्रा करनेवाला लौटकर नहीं आता है। पूर्व दिशामें यात्रा करनेवालेको लग्नमें यदि सूर्य हो तो वह ललाटगत माना जाता है। यदि शुक्र लग्नसे ग्यारहवें या बारहवें स्थानमें हों तो अग्निकोणमें यात्रा करनेसे, मङ्गल दशम भावमें हो तो दक्षिणयात्रा करनेसे, राहु नवें और आठवें भावमें हो तो नैऋत्य कोणकी यात्रासे, शनि

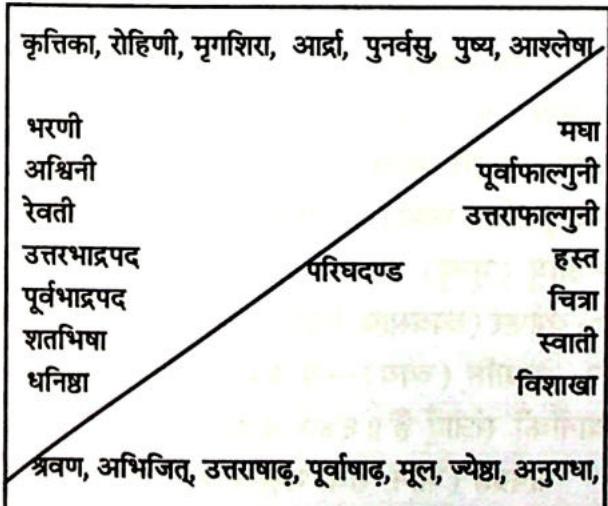
सप्तम भावमें हो तो पश्चिम-यात्रासे, चन्द्रमा पाँचवें और छठे भावमें हो तो वायुकोणकी यात्रासे, बुध चतुर्थ भावमें हो तो उत्तरकी यात्रासे, गुरु तीसरे और दूसरे भावमें हो तो ईशानकोणकी यात्रा करनेसे ललाटगत होते हैं। जो मनुष्य जीवनकी इच्छा रखता हो, वह इस ललाटयोगको त्यागकर यात्रा करे ॥ ६२८—६३२ ॥

लग्नमें वक्रगति ग्रह या उसके षड्वर्ग (राशि-होरादि) हों तो यात्रा करनेवाले राजाओंकी पराजय होती है ॥ ६३३ ॥

जब जिस अयन^३ में सूर्य और चन्द्रमा दोनों हों, उस समय उस दिशाकी यात्रा शुभ फल देनेवाली होती है। यदि दोनों भिन्न अयनमें हों तो जिस अयनमें सूर्य हों उधर दिनमें तथा जिस अयनमें चन्द्रमा हों उधर रात्रिमें यात्रा शुभ होती है। अन्यथा यात्रा करनेसे यात्रीकी पराजय होती है ॥ ६३४ ॥

१. पूर्व नक्षत्रमें पश्चिम या दक्षिण जानेसे परिघदण्डका लङ्घन होगा। चक्र देखिये—

(पूर्व)



२. दिग्राशिबोधक चक्र—

(पूर्व)

मेष	सिंह	धनु
१	५	९
मीन १२		२ वृष
वृश्चिक ८		६ कन्या
कर्क ४		१० मकर
कुम्भ	तुला	मिथुन
११	७	३

३. मकरसे ६ राशि उत्तरायण है। इनमें सूर्य-चन्द्रमा हों तो उत्तरकी यात्रा शुभ होती है, क्योंकि दोनों सम्मुख होते हैं। इससे सिद्ध होता है कि यदि सूर्य और चन्द्रमा दाहिने भागमें पड़ें तो भी यात्रा शुभ हो सकती है। इसलिये उस समय पश्चिम-यात्रा भी शुभ ही समझनी चाहिये एवं कर्कसे छः राशि दक्षिणायन समझें।

(शुक्रदोष—) शुक्र अस्त हों तो यात्रामें हानि होती है। यदि वह सम्मुख हो तो यात्रा करनेसे पराजय होती है। सम्मुख शुक्रके दोषको कोई भी ग्रह नहीं हटा सकता है। किंतु वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, भरद्वाज और गौतम—इन पाँच गोत्रवालोंको सम्मुख शुक्रका दोष नहीं होता है। यदि एक ग्रामके भीतर ही यात्रा करनी हो या विवाहमें जाना हो या दुर्धिक्ष होनेपर अथवा राजाओंमें युद्ध होनेपर तथा राजा या ब्राह्मणोंका कोप होनेपर कहीं जाना पड़े तो इन अवस्थाओंमें सम्मुख शुक्रका दोष नहीं होता है। शुक्र यदि नीच राशिमें या शत्रुराशिमें अथवा वक्रगति या पराजित* हो तो यात्रा करनेवालोंकी पराजय होती है। यदि शुक्र अपनी उच्चराशि (मीन)—में हो तो यात्रामें विजय होती है॥ ६३५—६३८)

अपने जन्मलग्न या जन्मराशिसे अष्टम राशि या लग्नमें तथा शत्रुकी राशिसे छठी राशिमें या लग्नमें अथवा इन सबोंके स्वामी जिस राशिमें हों, उस लग्न या राशिमें यात्रा करनेवालेकी मृत्यु होती है। परंतु यदि जन्मलग्नराशिपति और अष्टम राशिपतिमें परस्पर मैत्री हो तो उक्त अष्टमराशिजन्य दोष स्वयं नष्ट हो जाता है॥ ६३९—६४०॥

द्विस्वभाव लग्न यदि पापग्रहसे युक्त या दृष्ट हो तो यात्रामें पराजय होती है तथा स्थिर राशि पापग्रहसे युक्त न हो तो वह यात्रालग्नमें अशुभ है। यदि स्थिर राशिलग्नमें शुभग्रहका योग या दृष्टि हो तो शुभ फल होता है॥ ६४१॥

धनिष्ठा नक्षत्रके उत्तरार्धसे आरम्भ करके (रेवतीपर्यन्त) पाँच नक्षत्रोंमें गृहार्थ तृण-काष्ठोंका संग्रह, दक्षिणकी यात्रा, शश्या (तकिया, पलङ्घ आदि)-का बनाना, घरको छवाना आदि कार्य

नहीं करने चाहिये॥ ६४२॥

यदि यात्रालग्नमें जन्मलग्न, जन्मराशि या इन दोनोंके स्वामी हों अथवा जन्मलग्न या जन्मराशिसे ३, ६, ११, १० वीं राशि हो तो शत्रुओंका नाश होता है॥ ६४३॥

यदि शीर्षोदय (मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, कुम्भ) तथा दिग्द्वार (यात्राकी दिशा)-की राशि लग्नमें हो अथवा किसी भी लग्नमें शुभग्रहके वर्ग (राशि-होरादि) हों तो यात्रा करनेवाले राजाके शत्रुओंका नाश होता है॥ ६४४॥

शत्रुके जन्मलग्न या जन्मराशिसे अष्टम राशि या उन दोनोंके स्वामी जिस राशिमें हों वह राशि यात्रालग्नमें हो तो शत्रुका नाश होता है॥ ६४५॥

मीन लग्नमें या लग्नगत मीनके नवमांशमें यात्रा करनेसे मार्ग (रास्ता) टेढ़ा हो जाता है। (अर्थात् बहुत घूमना पड़ता है।) तथा कुम्भलग्न और लग्नगत कुम्भका नवमांश भी यात्रामें अत्यन्त निन्दित है॥ ६४६॥

जलचर राशि (कर्क, मीन) या जलचर राशिका नवमांश लग्नमें हो तो नौकाद्वारा नदी-नद आदि मार्गसे यात्रा शुभ होती है॥ ६४६ १/२॥

(लग्नभावोंकी संज्ञा—) १- मूर्ति (तन), २-कोष (धन), ३-धन्वी (पराक्रम, भ्राता), ४-वाहन (सवारी, माता), ५-मन्त्र (विद्या, संतान), ६-शत्रु (रोग, मामा), ७-मार्ग (यात्रा, पति-पत्नी), ८-आयु (मृत्यु), ९-मन (अन्तःकरण, भाव्य), १०-व्यापार (व्यवसाय, पिता), ११- प्रासि (लाभ), १२- अप्रासि (व्यय)—ये क्रमसे लग्न आदि १२ स्थानोंकी संज्ञाएँ हैं॥ ६४७-६४८॥

पापग्रह (शनि, रवि, मङ्गल, राहु तथा केतु—ये) तीसरे और ग्यारहवेंको छोड़कर अन्य सब

* जब मङ्गलादि ग्रहोंमें किन्हीं दो ग्रहोंकी एक राशिमें अंशकला बराबर हो तो दोनोंमें युद्ध समझा जाता है। उन दोनोंमें जो उत्तर रहता है, वह विजयी तथा दक्षिण रहनेवाला पराजित होता है।

भावोंमें जानेसे भावफलको नष्ट कर देते हैं। तीसरे और ग्यारहवें भावमें जानेसे वे इन दोनों भावोंको पुष्ट करते हैं। सूर्य और मङ्गल ये दोनों दशम भावको भी नष्ट नहीं करते, अपितु दशम भावमें जानेसे उस भावफल (व्यापार, पिता, राज्य तथा कर्म)- को पुष्ट ही करते हैं और शुभग्रह (चन्द्र, बुध, गुरु तथा शक्र) जिस भावमें जाते हैं, उस भावफलको पुष्ट ही करते हैं; केवल षष्ठ (६) भावमें जानेसे उस भावफल (शत्रु और रोग)-को नष्ट करते हैं ॥ ६४९ ॥ शुभ ग्रहोंमें शुक्र सप्तम भावको और चन्द्रमा लग्न एवं अष्टम (१, ८) को पुष्ट नहीं करते हैं। (अपितु नष्ट ही करते हैं।)

(अभिजित्-प्रशंसा—) अभिजित् मुहूर्त (दिनका मध्यकाल=१२ बजेसे १ घड़ी आगे और १ घड़ी पीछे) अभीष्ट फल सिद्ध करनेवाला योग है। यह दक्षिण दिशाकी यात्रा छोड़कर अन्य दिशाओंकी यात्रामें शुभ फल देता है। इस (अभिजित् मुहूर्त)-में पञ्चाङ्ग (तिथि-वारादि) शुभ न हो तो भी यात्रामें वह उत्तम फल देनेवाला होता है ॥ ६५०-६५१ ॥

(यात्रा-योग—) लग्न और ग्रहोंकी स्थितिसे नाना प्रकारके यात्रा-योग होते हैं। अब उन योगोंका वर्णन करता हूँ, क्योंकि राजाओं (क्षत्रियों)-को योगबलसे ही अभीष्ट सिद्ध प्राप्त होती है। ब्राह्मणोंको नक्षत्रबलसे तथा अन्य मनुष्योंको मुहूर्तबलसे इष्टसिद्धि होती है। तत्करोंको शकुनबलसे अपने अभीष्टकी प्राप्ति होती है ॥ ६५२ ॥ शुक्र, बुध और बृहस्पति—इन तीनमेंसे कोई भी यदि केन्द्र या त्रिकोणमें हो तो 'योग' कहलाता है। यदि उनमेंसे दो ग्रह केन्द्र या त्रिकोणमें हों तो 'अधियोग' कहलाता है तथा यदि तीनों लग्नसे केन्द्र (१, ४, ७, १०) या त्रिकोण (९, ५)-में हों तो योगाधियोग कहलाता है ॥ ६५३ ॥ योगमें

यात्रा करनेवालोंका कल्याण होता है। अधियोगमें यात्रा करनेसे विजय प्राप्त होती है और योगाधियोगमें यात्रा करनेवालेको कल्याण, विजय तथा सम्पत्तिका भी लाभ होता है ॥ ६५४ ॥ लग्नसे दसवें स्थानमें चन्द्रमा, षष्ठ स्थानमें शनि और लग्नमें सूर्य हों तो इस समयमें यात्रा करनेवाले राजाको विजय तथा शत्रुकी सम्पत्ति भी प्राप्त होती है ॥ ६५५ ॥ शुक्र, रवि, बुध, शनि और मङ्गल—ये पाँचों ग्रह क्रमसे लग्न चतुर्थ, सप्तम, तृतीय और षष्ठ भावमें हों तो यात्रा करनेवाले राजाके सम्मुख आये हुए शत्रुगण आगमें पड़ी हुई लाहकी भाँति नष्ट हो जाते हैं ॥ ६५६ ॥ बृहस्पति लग्नमें और अन्य ग्रह यदि दूसरे और ग्यारहवें भावमें हों तो इस योगमें यात्रा करनेवाले राजाके शत्रुओंकी सेना यमराजके घर पहुँच जाती है ॥ ६५७ ॥ यदि लग्नमें शुक्र, ग्यारहवेंमें रवि और चतुर्थ भावमें चन्द्रमा हो तो इस योगमें यात्रा करनेवाला राजा अपने शत्रुओंको उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे हाथियोंके झुंडको सिंह ॥ ६५८ ॥

अपने उच्च (मीन)-में स्थित शुक्र लग्नमें हो अथवा अपने उच्च (वृष्ट)-का चन्द्रमा लाभ (११) भावमें स्थित हो तो यात्रा करनेवाला नरेश अपने शत्रुकी सेनाको उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे भगवान् श्रीकृष्णने पूतनाको नष्ट किया था ॥ ६५९ ॥) यदि यात्राके समय शुभग्रह केन्द्रमें या त्रिकोणमें हों तथा पापग्रह तीसरे, छठे और ग्यारहवें स्थानमें हों तो यात्रा करनेवाले राजाके शत्रुकी लक्ष्मी अभिसारिकाकी भाँति उसके समीप आ जाती है ॥ ६६० ॥ गुरु, रवि और चन्द्रमा—ये क्रमशः लग्न, ६ और ८ में हों तो यात्रा करनेवाले राजाके सामने दुर्जनोंकी मैत्रीके समान शत्रुओंकी सेना नहीं ठहरती है ॥ ६६१ ॥ यदि लग्नसे ३, ६, ११ में पापग्रह हों और शुभ-ग्रह बलवान् होकर

२. जैसे पापग्रह लग्न (तनुभाव)-में रहता है तो शरीरमें कष्ट-पीड़ा देता है तथा धन-भावमें धनका नाश करता है। किंतु जब तीसरेमें रहता है तो पराक्रमको और ग्यारहवें रहता है तो लाभको पुष्ट करता है।

अपने उच्चादि स्थानमें (स्थित) हों तो शत्रुकी भूमि यात्रा करनेवाले राजाके हाथमें आ जाती है ॥ ६६२ १ ॥ अपने उच्च (कर्क)-में स्थित बृहस्पति यदि लग्नमें हों और चन्द्रमा ११ भावमें स्थित हों तो यात्रा करनेवाला नरेश अपने शत्रुको उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे त्रिपुरासुरको श्रीशिवजीने नष्ट किया था ॥ ६६३ १ ॥ शीर्षोदय (मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ) राशिमें स्थित शुक्र यदि लग्नमें हों और गुरु ग्यारहवें स्थानमें हों तो यात्रा करनेवाला पुरुष तारकासुरको कार्तिकेयकी भाँति अपने शत्रुको नष्ट कर देता है ॥ ६६४ १ ॥ गुरु लग्नमें और शुक्र किसी केन्द्र या त्रिकोणमें हों तो यात्री नरेश अपने शत्रुओंको वैसे ही भस्म कर देता है, जैसे वनको दावानल ॥ ६६५ १ ॥ यदि बुध लग्नमें और अन्य शुभग्रह किसी केन्द्रमें हों तथा नक्षत्र भी अनुकूल हो तो उसमें यात्रा करनेवाला राजा अपने शत्रुओंको वैसे ही सोख लेता है, जैसे सूर्यकी किरणें ग्रीष्म-ऋतुमें क्षुद्र नदियोंको सोख लेती है ॥ ६६६ १ ॥ सम्पूर्ण शुभग्रह केन्द्र या त्रिकोणमें हों तथा सूर्य या चन्द्रमा ग्यारहवें भावमें स्थित हों तो यात्रा करनेवाला नरेश अन्धकारको सूर्यकी भाँति अपने शत्रुको नष्ट कर देता है ॥ ६६७ १ ॥

शुभग्रह यदि अपनी राशिमें स्थित होकर केन्द्र (१, ४, ७, १०), त्रिकोण (५, ९) तथा आय (११) भावमें हो तो यात्रा करनेवाला राजा रुईको अग्निके समान अपने शत्रुओंको जलाकर भस्म कर देता है ॥ ६६८ १ ॥ चन्द्रमा दसवें भावमें और बृहस्पति केन्द्रमें हों तो उसमें यात्रा करनेवाला राजा अपने सम्पूर्ण शत्रुओंको उसी प्रकार नष्ट कर देता है जैसे प्रणवसहित पञ्चाक्षर-मन्त्र (ॐ नमः शिवाय) पाप-समूहका नाश कर देता है ॥ ६६९ १ ॥ अकेला शुक्र भी यदि वर्गोत्तम नवमांशगत लग्नमें स्थित हो तो उसमें भी यात्रा करनेसे राजा अपने शत्रुओंको उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे पापोंको श्रीभगवान् का

स्मरण ॥ ६७० १ ॥ शुभग्रह केन्द्र या त्रिकोणमें हों तथा चन्द्रमा यदि वर्गोत्तम नवमांशमें हो तो यात्रा करनेसे राजा अपने शत्रुओंको उसी प्रकार सपरिवार नष्ट करता है, जैसे इन्द्र पर्वतोंको ॥ ६७१ १ ॥ बृहस्पति अथवा शुक्र अपने मित्रकी राशिमें होकर केन्द्र या त्रिकोणमें हों तो ऐसे समयमें यात्रा करनेवाला भूपाल सर्पोंको गरुड़के समान अपने शत्रुओंको अवश्य नष्ट कर देता है ॥ ६७२ १ ॥ यदि एक भी शुभग्रह वर्गोत्तम नवमांशमें स्थित होकर केन्द्रमें हो तो यात्रा करनेवाला नरेश पाप-समूहोंको गङ्गाजीके समान अपने शत्रुओंको क्षणभरमें नष्ट कर देता है ॥ ६७३ १ ॥ जो राजा शत्रुओंको जीतनेके लिये उपर्युक्त राजयोगोंमें यात्रा करता है, उसका कोपानल शत्रुओंकी स्त्रियोंके अश्रुजलसे शान्त होता है ॥ ६७४ १ ॥ आश्विन मासके शुक्लपक्षकी दशमी तिथि 'विजय' कहलाती है। उसमें जो यात्रा करता है, उसे अपने शत्रुओंपर विजय प्राप्त होती है अथवा शत्रुओंसे सन्धि (मेल) हो जाती है। किसी भी दशामें उसकी पराजय नहीं होती है ॥ ६७५ १ ॥

(मनोजय-प्रशंसा—) यात्रा आदि सभी कार्योंमें निमित्त और शकुन आदि (लग्न एवं ग्रहयोग)-की अपेक्षा भी मनोजय (मनको वशमें तथा प्रसन्न रखना) प्रबल है। इसलिये मनस्वी पुरुषोंके लिये यत्नपूर्वक फलसिद्धिमें मनोजय ही प्रधान कारण होता है ॥ ६७६ १ ॥

(यात्रामें प्रतिबन्ध—) यदि घरमें उत्सव, उपनयन, विवाह, प्रतिष्ठा या सूतक उपस्थित हो तो जीवनकी इच्छा रखनेवालोंको बिना उत्सवको समाप्त किये यात्रा नहीं करनी चाहिये ॥ ६७७ १ ॥

(यात्रामें अपशकुन—) यात्राके समय यदि परस्पर दो भैंसों या चूहोंमें लड़ाई हो, स्त्रीसे कलह हो या स्त्रीका मासिक धर्म हुआ हो, वस्त्र आदि शरीरसे खिसककर गिर पड़े, किसीपर क्रोध हो जाय या मुखसे दुर्वचन कहा गया हो

तो उस दशामें राजाको यात्रा नहीं करनी चाहिये ॥ ६७८ १/२ ॥

(दिशा, वार तथा नक्षत्र दोहद*—) यदि राजा घृतमिश्रित अन्न खाकर पूर्व दिशाकी यात्रा करे, तिलचूर्ण मिलाया हुआ अन्न खाकर दक्षिण दिशाको जाय और घृतमिश्रित खीर खाकर उत्तर दिशाकी यात्रा करे तो निश्चय ही वह शत्रुओंपर विजय पाता है। रविवारको सज्जिका (मिसिरी और मसाला मिला हुआ दही), सोमवारको खीर, मङ्गलवारको काँजी, बुधवारको दूध, गुरुवारको दही, शुक्रवारको दूध तथा शनिवारको तिल और भात खाकर यात्रा करे तो शत्रुओंको जीत लेता है। अश्विनीमें कुलमाष (उड़दका एक भेद), भरणीमें तिल, कृत्तिकामें उड़द, रोहिणीमें गायका दही, मृगशिरामें गायका धी, आद्रिमें गायका दूध, आश्लेषामें खीर, मधामें नीलकण्ठका दर्शन, हस्तमें षाष्ठिक्य (साठी धान्य)-के चावलका भात, चित्रामें प्रियंगु (कँगनी), स्वातीमें अपूप (मालपूआ), अनुराधामें फल (आम, केला आदि), उत्तराषाढ़में शाल्य (अगहनी धानका चावल), अभिजित्में हविष्य, श्रवणमें कृशरान्न (खिचड़ी), धनिष्ठामें मूँग, शतभिषामें जौका आटा, उत्तरभाद्रपदमें खिचड़ी तथा रेवतीमें दही-भात खाकर राजा यदि हाथी, घोड़े, रथ या नरयान (पालकी)-पर बैठकर यात्रा करे तो वह शत्रुओंपर विजय पाता है और उसका अभीष्ट सिद्ध होता है ॥ ६७९—६८४ ॥

(यात्राविधि—) प्रज्वलित अग्निमें तिलोंसे हवन करके जिस दिशामें जाना हो, उस दिशाके स्वामीको उन्हींके समान रङ्गवाले वस्त्र, गन्ध तथा पुष्प आदि उपचार अर्पण करके उन दिक्षपालोंके मन्त्रोंद्वारा विधिपूर्वक उनका पूजन करे। फिर

अपने इष्टदेव और ब्राह्मणोंको प्रणाम करके ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद लेकर राजाको यात्रा करनी चाहिये ॥ ६८५ १/२ ॥

(दिक्षपालोंके स्वरूपका ध्यान—) (१ पूर्व दिशाके स्वामी) देवराज इन्द्र शचीदेवीके साथ ऐरावतपर आरूढ़ हो बड़ी शोभा पा रहे हैं। उनके हाथमें वज्र है। उनकी कान्ति सुवर्ण-सदृश है तथा वे दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं। (२ अग्निकोणके अधीश्वर) अग्निदेवके सात हाथ, सात जिह्वाएँ और छः मुख हैं। वे भेड़पर सवार हैं, उनकी कान्ति लाल है, वे स्वाहादेवीके प्रियतम हैं तथा स्तुक्-स्तुवा और नाना प्रकारके आयुध धारण करते हैं। (३ दक्षिण दिशाके स्वामी) यमराजका दण्ड ही अस्त्र है। उनकी आँखें लाल हैं और वे भैंसेपर आरूढ़ हैं। उनके शरीरका रङ्ग कुछ लाली लिये हुए साँवला है। वे ऊपरकी ओर मुँह किये हुए हैं तथा शुभस्वरूप हैं। (४ नैऋत्यकोणके अधिपति) निरैतिका वर्ण नील है। वे अपने हाथोंमें ढाल और तलवार लिये रहते हैं; मनुष्य ही उनका वाहन है। उनकी आँखें भयंकर तथा केश ऊपरकी ओर उठे हुए हैं। वे सामर्थ्यशाली हैं और उनकी गर्दन बहुत बड़ी है। (५ पश्चिम दिशाके स्वामी) वरुणकी अङ्गकान्ति पीली है। वे नागपाश धारण करते हैं। ग्राह उनका वाहन है। वे कालिकादेवीके प्राणनाथ हैं और रलमय आभूषणोंसे विभूषित हैं। (६ वायव्य कोणके अधिपति) वायुदेव काले रङ्गके मृगपर आरूढ़ हैं। अञ्जनीके पति हैं, वे समस्त प्राणियोंके प्राणस्वरूप हैं। उनकी दो भूजाएँ हैं और वे हाथमें दण्ड धारण करते हैं। इस प्रकार उनका ध्यान और पूजन करे। (७ उत्तर दिशाके

१. दोहद—जिसे जिस वस्तुकी विशेष चाह होती है, जिसकी प्रासिसे मन प्रसन्न हो जाता है, वह उसका 'दोहद' कहलाता है। पूर्व दिशाकी अधिष्ठात्रीदेवी चाहती है कि लोग घृतमिश्रित अन्न खायें। रविवारका अधिपति चाहता है कि लोग रसाला (सिखरन—मिसिरी और मसाला मिला हुआ दही) खायें इत्यादि। इसी प्रकार अन्य वारादिमें भी जानना चाहिये। दोहद-भक्षण करनेसे उस वार आदिका दोष नष्ट हो जाता है।

स्वामी) कुबेर घोड़ेपर सवार हैं। उनकी दो भुजाएँ हैं। वे हाथमें कलश धारण करते हैं। उनकी अङ्गकान्ति सुवर्णके सदृश है। वे चित्रलेखादेवीके प्राणवल्लभ तथा यक्षों और गन्धर्वोंके राजा हैं। (८ ईशानकोणके स्वामी) गौरीपति भगवान् शङ्कर हाथमें पिनाक लिये वृषभपर आरूढ़ हैं। वे सबसे श्रेष्ठ देवता हैं। उनकी अङ्गकान्ति श्वेत है। माथेपर चन्द्रमाका मुकुट सुशोभित होता है और सर्पमय यज्ञोपवीत धारण करते हैं। (इस प्रकार इन सब दिक्पालोंका ध्यान और पूजन करना चाहिये) ॥ ६८६—६९३ १॥

(प्रस्थानविधि—) यदि किसी आवश्यक कार्यवश निश्चित यात्रा-लग्नमें राजा स्वयं न जा सके तो छत्र, ध्वजा, शस्त्र, अस्त्र या वाहनमेंसे किसी एक वस्तुको यात्राके निर्धारित समयमें घरसे निकालकर जिस दिशामें जाना हो, उसी दिशाकी ओर दूर रखा दे। अपने स्थानसे निर्गमस्थान (प्रस्थान रखनेकी जगह) २०० दण्ड (चार हाथकी लग्नी)-से दूर होना उचित है। अथवा चालीस या कम-से-कम बारह दण्डकी दूरी होनी आवश्यक है। राजा स्वयं प्रस्तुत होकर जाय तो किसी एक स्थानमें सात दिन न ठहरे। अन्य (राज-मन्त्री तथा साधारण) जन भी प्रस्थान करके एक स्थानमें छः या पाँच दिन न ठहरे। यदि इससे अधिक ठहरना पड़े तो उसके बाद दूसरा शुभ मुहूर्त और उत्तम लग्न विचारकर यात्रा करे। ॥ ६९४—६९६ १॥

असमयमें (पौषसे चैत्रपर्यन्त) बिजली चमके, मेघकी गर्जना हो या वर्षा होने लगे तथा त्रिविध (दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम) उत्पात होने लग जाय तो राजाको सात राततक अन्य स्थानोंकी यात्रा नहीं करनी चाहिये। ॥ ६९७ १॥

(शकुन—) यात्राकालमें रला नामक पक्षी, चूहा, सियारिन, कौआ तथा कबूतर—इनके शब्द वामभागमें सुनायी दें तो शुभ होता है। छहुंदर, पिंगला (उल्लू), पल्ली और गदहा—ये यात्राके

समय वामभागमें हों तो श्रेष्ठ हैं। कोयल, तोता और भरदूल आदि पक्षी यदि दाहिने भागमें आ जायँ तो श्रेष्ठ हैं। काले रंगको छोड़कर अन्य सब रंगोंके चौपाये यदि वाम भागमें दीख पड़ें तो श्रेष्ठ हैं तथा यात्रासमयमें कृकलास (गिरगिट) का दर्शन शुभ नहीं है। ॥ ६९८—७०० ॥

यात्राकालमें सूअर, खरगोश, गोधा (गोह) और सर्पोंकी चर्चा शुभ होती है, किंतु किसी भूली हुई वस्तुको खोजनेके लिये जाना हो तो इनकी चर्चा अच्छी नहीं होती है। वानर और भालुओंकी चर्चाका विपरीत फल होता है। ॥ ७०१ ॥

यात्रामें मोर, बकरा, नेवला, नीलकण्ठ और कबूतर दीख जायँ तो इनके दर्शनमात्रसे शुभ होता है; परंतु लौटकर अपने नगरमें आने या घरमें प्रवेश करनेके समय ये दर्शन दें तो सब अशुभ ही समझना चाहिये। यात्राकालमें रोदन शब्दरहित कोई शब्द (मुर्दा) सामने दीख पड़े तो यात्राके उद्देश्यकी सिद्धि होती है। परंतु लौटकर घर आने तथा नवीन गृहमें प्रवेश करनेके समय यदि रोदन शब्दके साथ मुर्दा दीख पड़े तो वह घातक होता है। ॥ ७०२—७०३ ॥

(अपशकुन—) यात्राके समय पतित, नपुंसक, जटाधारी, पागल, औषध आदि खाकर वमन (उलटी) करनेवाला, शरीरमें तेल लगानेवाला, वसा, हड्डी, चर्म, अङ्गार (ज्वालारहित अग्नि), दीर्घ रोगी, गुड़, कपास (रुई), नमक, प्रश्न (पूछने या टोकनेका शब्द), तृण, गिरगिट, बन्ध्या स्त्री, कुबड़ा, गेरुआ वस्त्रधारी, खुले केशवाला, भूखा तथा नंगा—ये सब सामने उपस्थित हो जायें तो अभीष्ट-सिद्धि नहीं होती है। ॥ ७०४—७०५ ॥

(शुभ शकुन—) प्रज्वलित अग्नि, सुन्दर घोड़ा, राजसिंहासन, सुन्दरी स्त्री, चन्दन आदिकी सुगन्ध, फूल, अक्षत, छत्र, चामर, डोली या पालकी, राजा, खाद्य पदार्थ, ईख, फल, चिकनी मिट्टी, अन्न, शहद, घृत, दही, गोबर, चूना, धुला

हुआ वस्त्र, शङ्ख, श्वेत बैल, ध्वजा, सौभाग्यवती स्त्री, भरा हुआ कलश, रत्न (हीरा, मोती आदि), भृङ्गर (गड़ुआ), गौ, ब्राह्मण, नगाड़ा, मृदङ्ग, दुन्दुभि, घण्टा तथा वीणा (बाँसुरी) आदि वाद्योंके शब्द, वेदमन्त्र एवं मङ्गल गीत आदिके शब्द—ये सब यात्राके समय यदि देखने या सुननेमें आवें तो यात्रा करनेवाले लोगोंके सब कार्य सिद्ध करते हैं ॥ ७०६—७०९ ॥

(अपशकुन-परिहार—) यात्राके समय प्रथम बार अपशकुन हो तो खड़ा होकर इष्टदेवका स्मरण करके फिर चले। दूसरा अपशकुन हो तो ब्राह्मणोंकी पूजा (वस्त्र, द्रव्य आदिसे उनका सत्कार) करके चले। यदि तीसरी बार अपशकुन हो जाय तो यात्रा स्थगित कर देनी चाहिये ॥ ७१० ॥

(छींकके फल—) यात्राके समय सभी दिशाओंकी छींक निन्दित है। गौकी छींक घातक होती है, किंतु बालक, वृद्ध, रोगी या कफवाले मनुष्यकी छींक निष्फल होती है ॥ ७११ ॥

परस्त्रियोंका स्पर्श करनेवाला तथा ब्राह्मण और देवताके धनका अपहरण करनेवाला तथा अपने छोड़े हुए हाथी और घोड़ेको बाँध लेनेवाला, शत्रु यदि सामने आ जाय तो राजा उसे अवश्य मार डाले; परंतु स्त्रियों तथा शस्त्रहीन मनुष्योंपर कदापि हाथ न उठावे ॥ ७१२ ॥

(गृह-प्रवेश—) नये घरमें प्रथम बार प्रवेश करना हो तो उत्तरायणके शुभ मुहूर्तमें करे। पहले दिन विधिपूर्वक वास्तु-पूजा और बलि (नैवेद्य) अर्पण करके गृहमें प्रवेश करना चाहिये ॥ ७१३ ॥

(गृह-प्रवेशमें विहित मास—) माघ, फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ—इन चार मासोंमें गृहप्रवेश श्रेष्ठ होता है। तथा अगहन और कार्तिक इन दो मासोंमें मध्यम होता है।

(विहित नक्षत्र—) मृगशिरा, पुष्य, रेवती, शतभिषा, चित्रा, अनुराधा और स्थिर-संज्ञक (तीनों उत्तरा और रोहिणी) नक्षत्रोंमें बृहस्पति

और शुक्र दोनों उदित हों तब रवि और मङ्गलको छोड़कर अन्य वारोंमें रिक्ता (४, ९, १४) तथा अमावास्या छोड़कर अन्य तिथियोंमें दिन या रात्रिके समय गृहप्रवेश शुभप्रद होता है। चन्द्रबल और ताराबलसहित उपद्रवरहित दिनके पूर्वाह्न भागमें स्थिर राशिके नवमांशयुक्त स्थिर लग्नमें जब लग्नसे अष्टम स्थान शुद्ध (ग्रहरहित) हो, शुभग्रह त्रिकोण या केन्द्रमें हों, पापग्रह ३, ६, ११ भावोंमें हों और चन्द्रमा लग्न, १२, ८, ६ इनसे भिन्न स्थानोंमें हों, तब गृह-प्रवेश करनेवाले यजमानकी जन्मराशि, जन्मलग्न या इन दोनोंसे उपचय (३, ६, १०, ११ वर्षों) राशिके गृह-प्रवेश लग्नमें विद्यमान होनेपर सब प्रकारके सुख और सम्पत्तिकी वृद्धि होती है। अन्यथा इससे विपरीत समयमें गृह-प्रवेश किया जाय तो शोक और निर्धनता प्राप्त होती है ॥ ७१४—७१९ ॥

(प्रवेश-विधि—) जिस नूतन गृहमें प्रवेश करना हो, उसको चित्र आदिसे सजाकर तथा पुष्य-तोरण आदिसे अलंकृत करके वेद-ध्वनि, शान्तिपाठ, सौभाग्यवती स्त्रियोंके माङ्गलिक गीत तथा वाद्य आदिके शब्दोंके साथ सूर्यको वाम भागमें रखकर जलसे भरे हुए कलशको आगे करके उसमें प्रवेश करना चाहिये ॥ ७२० ॥

(वृष्टि-विचार—) वर्षा-प्रवेश (आद्रा नक्षत्रमें सूर्यके प्रवेश)-के समय यदि शुक्लपक्ष हो, चन्द्रमा जलचर राशिमें या लग्नसे केन्द्र (१, ४, ७, १०)-में स्थित होकर शुभग्रहसे देखे जाते हों तो अधिक वृष्टि होती है। यदि उस समय चन्द्रमापर पापग्रहकी दृष्टि हो तो दीर्घकालमें अल्पवृष्टि समझनी चाहिये। (इससे सिद्ध होता है कि यदि चन्द्रमापर पाप और शुभ दोनों ग्रहोंकी दृष्टि हो तो मध्यम वृष्टि होती है।) जिस प्रकार चन्द्रमासे फल कहा गया है, उसी प्रकार उस समय शुक्रसे भी समझना चाहिये। (अर्थात् सूर्यके आद्रा-प्रवेशके समय चन्द्रमा और शुक्र

दोनोंकी स्थिति देखकर तारतम्यसे फल समझना चाहिये) ॥७२१-७२२ ॥

वर्षाकालमें आर्द्धसे स्वातीतक सूर्यके रहनेपर चन्द्रमा यदि शुक्रसे सप्तम स्थानमें अथवा शनिसे पञ्चम, नवम तथा सप्तम स्थानमें हो, उसपर शुभ ग्रहकी वृष्टि पड़े तो उस समय अवश्य वर्षा होती है ॥७२३ ॥

यदि बुध और शुक्र समीपवर्ती (एक राशिमें स्थित) हों तो तत्काल वर्षा होती है। किंतु उन दोनों (बुध और शुक्र)-के बीचमें सूर्य हों तो वृष्टिका अभाव होता है ॥७२४ ॥

यदि मध्य आदि पाँच नक्षत्रोंमें शुक्र पूर्व दिशामें उदित हों और स्वातीसे तीन नक्षत्रों (स्वाती, विशाखा, अनुराधा)-में शुक्र पश्चिम दिशामें उदित हों तो निश्चय ही वर्षा होती है। इससे विपरीत हो तो वर्षा नहीं समझनी चाहिये ॥७२५ ॥

यदि सूर्यके समीप (एक राशिके भीतर होकर) कोई ग्रह आगे या पीछे पड़ते हों तो वे वर्षा अवश्य करते हैं; किंतु उनकी गति वक्र न हुई हो तभी ऐसा होता है ॥७२६ ॥

दक्षिण गोल (तुलासे मीनतक)-में शुक्र यदि सूर्यसे वाम भागमें पड़े तो वृष्टिकारक होता है। उदय या अस्तके समय यदि आर्द्धमें सूर्यका प्रवेश हो तो भी वर्षा होती है ॥७२७ ॥

यदि सूर्यका आर्द्ध-प्रवेश सन्ध्याके समय हो तो शस्य (धान)-की वृद्धि होती है। यदि रात्रिमें हो तो मनुष्योंको सब प्रकारकी सम्पत्ति प्राप्त होती है। यदि प्रवेशकालमें चन्द्रमा, गुरु, बुध एवं शुक्रसे आर्द्ध भेदित हो तो क्रमशः अल्पवृष्टि, धान्य-हानि, अनावृष्टि और धान्य-वृद्धि होती है; इसमें संशय नहीं है। यदि ये चारों चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र प्रवेश-लग्नसे केन्द्रमें पड़ते हों तो ईति (खेतीके टिड़ी आदि सब उपद्रव)-का नाश होता है ॥७२८-७२९ ॥

यदि सूर्य पूर्वांशाढ़ नक्षत्रमें प्रवेशके समय मेघोंसे आच्छन्न हों तो आर्द्धसे मूलतक प्रतिदिन वर्षा होती है ॥७३० ॥

यदि रेवतीमें सूर्यके प्रवेश करते समय वर्षा हो जाय तो उससे दस नक्षत्र (रेवतीसे आश्लेषा)-तक वर्षा नहीं होती है। सिंह-प्रवेशमें लग्न यदि मङ्गलसे भिन्न (भेदित) हो, कर्क-प्रवेशमें अभिन्न हो एवं कन्या-प्रवेशमें भिन्न हो तो उत्तम वृष्टि होती है ॥७३१ ॥ उत्तर भाद्रपद पूर्वधान्य, रेवती परधान्य तथा भरणी सर्वधान्य नक्षत्र है। अश्विनीको सर्वधान्योंका नाशक नक्षत्र कहा गया है। वर्षाकाल (चातुर्मास्य)-में पश्चिम उदित हुए शुक्र यदि गुरुसे सप्तम राशिमें निर्बल हों तो आर्द्धसे सात नक्षत्रतक प्रतिदिन अतिवृष्टि होती है। चन्द्रमण्डलमें परिवेष (घेरा) हो और उत्तर दिशामें बिजली दीख पड़े या मेढ़कोंके शब्द सुनायी पड़ें तो निश्चय ही वर्षा होती है। पश्चिम भागमें लटका हुआ मेघ यदि आकाशके बीचमें होकर दक्षिण दिशामें जाय तो शीघ्र वर्षा होती है। बिलाव अपने नाखूनोंसे धरतीको खोदे, लोहे (तथा ताँबे और कांसी आदि)-में मल जमने लगे अथवा बहुत-से बालक मिलकर सड़कोंपर पुल बाँधें तो ये वर्षके सूचक चिह्न हैं।

चौंटीकी पङ्क्ति छिन्न-भिन्न हो जाय, आकाशमें बहुतेरे जुगुनू दीख पड़ें तथा सर्पोंका वृक्षपर चढ़ना और प्रसन्न होना देखा जाय तो ये सब दुर्वृष्टि-सूचक हैं।

उदय या अस्त-समयमें यदि सूर्य या चन्द्रमाका रंग बदला हुआ जान पड़े या उनकी कान्ति मधुके समान दीख पड़े तथा बड़े जोरकी हवा चलने लगे तो अतिवृष्टि होती है ॥७३२-७३८ ॥

(पृथ्वीके आधार कूर्मके अङ्ग-विभाग—) कूर्मदेवता पूर्वकी ओर मुख करके स्थित हैं, उनके नव अङ्गोंमें इस भारत भूमिके नौ विभाग

करके प्रत्येक खण्डमें प्रदक्षिणक्रमसे विभिन्न मण्डलों (देशों)-को समझे। अन्तर्वेदी (मध्यभाग)-में पाञ्चालदेश स्थित है, वही कूर्मभगवान्‌का नाभिमण्डल है। मगध और लाट देश पूर्व दिशामें विद्यमान हैं, वे ही उनका मुखमण्डल हैं। स्त्री, कलिङ्ग और किरात देश भुजा हैं। अवन्ती, द्रविड़ और भिल्लदेश उनका दाहिना पार्श्व हैं। गौड़, कौंकण, शाल्व, आन्ध्र और पौण्ड्र देश—ये सब देश दोनों अगले पैर हैं। सिन्धु, काशी, महाराष्ट्र तथा सौराष्ट्र देश पुच्छ-भाग हैं। पुलिन्द, चीन, यवन और गुर्जर—ये सब देश दोनों पिछले पैर हैं। कुरु, काश्मीर, मद्र तथा मत्स्य-देश वाम पार्श्व हैं। खस (नेपाल) अङ्ग, वङ्ग, वाहीक और काम्बोज—ये दोनों हाथ हैं॥७३९—७४४॥

इन नवों अङ्गोंमें क्रमशः कृत्तिका आदि तीन-तीन नक्षत्रोंका न्यास करे। जिस अङ्गके नक्षत्रमें पापग्रह रहते हैं, उस अङ्गके देशोंमें तबतक अशुभ फल होता है और जिस अङ्गके नक्षत्रोंमें शुभग्रह रहते हैं, उस अङ्गके देशोंमें शुभ फल होते हैं॥७४५॥

(मूर्ति-प्रतिमा-विकार—) देवताओंकी प्रतिमा यदि नीचे गिर पड़े, जले, बार-बार रोये, गावे, पसीनेसे तर हो जाय, हँसे, अग्नि, धुआँ, तेल, शोणित, दूध या जलका वमन करे, अधोमुख हो जाय, एक स्थानसे दूसरे स्थानमें चली जाय तथा इसी तरहकी अनेक अद्भुत बातें दीख पड़ें तो यह प्रतिमा-विकार कहलाता है। यह विकार अशुभ फलका सूचक होता है।

(विविध विकार—) यदि आकाशमें गन्धर्वनगर (ग्रामके समान आकार), दिनमें ताराओंका

दर्शन, उल्कापतन, काष्ठ, तृण और शोणितकी वर्षा, गन्धर्वोंका दर्शन, दिग्दाह, दिशाओंमें धूम छा जाना, दिन या रात्रिमें भूकम्प होना, बिना आगके स्फुलिङ्ग (अङ्गार) दीखना, बिना लकड़ीके आगका जलना, रात्रिमें इन्द्रधनुष या परिवेष (घेरा) दीखना, पर्वत या वृक्षादिके ऊपर उजला कौआ दिखायी देना तथा आगकी चिनगारियोंका प्रकट होना आदि बातें दिखायी देने लगें, गौ, हाथी और घोड़ोंके दो या तीन मस्तकवाला बच्चा पैदा हो, प्रातःकाल एक साथ ही चारों दिशाओंमें अरुणोदय-सा प्रतीत हो, गाँवमें गीदड़ोंका दिनमें बास हो, धूम-केतुओंका दर्शन होने लगे तथा रात्रिमें कौओंका और दिनमें कबूतरोंका क्रन्दन हो तो ये भयंकर उत्पात हैं। वृक्षोंमें बिना समयके फूल या फल दीख पड़ें तो उस वृक्षको काट देना चाहिये और उसकी शान्ति कर लेनी चाहिये। इस प्रकारके और भी जो बड़े-बड़े उत्पात दृष्टिगोचर होते हैं, वे स्थान (देश या ग्राम)-का नाश करनेवाले होते हैं। कितने ही उत्पात घातक होते हैं; कितने ही शत्रुओंसे भय उपस्थित करते हैं। कितने ही उत्पातोंसे भय, यश, मृत्यु, हानि, कीर्ति, सुख-दुःख और ऐश्वर्यकी भी प्राप्ति होती है। यदि वल्मीक (दीमककी मिट्टीके ढेर)-पर शहद दीख पड़े तो धनकी हानि होती है। द्विजश्रेष्ठ! इस तरहके सभी उत्पातोंमें यत्पूर्वक कल्पोक्त विधिसे शान्ति अवश्य कर लेनी चाहिये। नारदजी! इस प्रकार संक्षेपसे मैंने ज्यौतिषशास्त्रका वर्णन किया है। अब वेदके छहों अङ्गोंमें श्रेष्ठ छन्दःशास्त्रका परिचय देता हूँ॥७४६—७५८॥ (पूर्वभाग द्वितीय पाद अध्याय ५६)

छन्दःशास्त्रका संक्षिप्त परिचय^१

सनन्दनजी कहते हैं—नारद! छन्द दो प्रकारके बताये जाते हैं—वैदिक^२ और लौकिक^३। मात्रा और वर्णके भेदसे वे लौकिक या वैदिक छन्द भी पुनः दो-दो प्रकारके हो जाते हैं (मात्रिक^४ छन्द और वर्णिक^५ छन्द) ॥ १ ॥ छन्दःशास्त्रके विद्वानोंने मगण, यगण, रगण, सगण, तगण, जगण, भगण और नगण तथा गुरु एवं लघु—इन्हींको छन्दोंकी सिद्धिमें कारण बताया है ॥ २ ॥ जिसमें सभी अर्थात् तीनों अक्षर गुरु हों उसे मगण

(५५) कहा गया है। जिसका आदि अक्षर लघु (और शेष दो अक्षर गुरु) हो, वह यगण (५५) माना गया है। जिसका मध्यवर्ती अक्षर लघु हो, वह रगण (५१५) और जिसका अन्तिम अक्षर गुरु हो, वह सगण (५५) है ॥ ३ ॥ जिसमें अन्तिम अक्षर लघु हो, वह तगण (५५) कहा गया है, जहाँ मध्य गुरु हो, वह जगण (५१) और जिसमें आदि गुरु हो, वह भगण (५१) है। मुने! जिसमें तीनों अक्षर लघु हों, वह नगण (११)

१. शास्त्रकारोंने द्विजातियोंके लिये छहों अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंके अध्ययनका आदेश दिया है। उन्हीं अङ्गोंमेंसे छन्द भी एक अङ्ग है। इसे वेदका चरण माना गया है—‘छन्दः पादौ तु वेदस्य।’ (पा० शि० ४१) ‘अनुष्टुभा यजति, बृहत्या गायति, गायत्र्या स्तौति।’ (पिं० सूत्रवृत्ति अध्याय १) (अनुष्टुप्से यजन करे, बृहती छन्दद्वारा गान करे, गायत्री छन्दसे स्तुति करे) इत्यादि विधियोंका श्रवण होनेसे छन्दका ज्ञान परम आवश्यक सिद्ध होता है। छन्द न जाननेसे प्रत्यवाय भी होता है; जैसा कि छन्दोग ब्राह्मणका वचन है—‘यो ह वा अविदितार्थेयच्छन्दोदैवतविनियोगेन ब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वाध्यापयति वा स स्थाणुं वच्छ्रृतिं गर्त वा पद्यते प्रमीयते वा पापीयान् भवति यातयामान्यस्य छन्दांसि भवन्ति।’ (पिं० सूत्रवृत्ति अध्याय १) (जो ऋषि छन्द, देवता तथा विनियोगको जाने बिना ब्राह्मणमन्त्रसे यज्ञ कराता और शिष्योंको पढ़ाता है, वह दूँठे काठके समान हो जाता है, नरकमें गिरता है, वेदोक्त आयुका पूरा उपभोग न करके बीचमें ही मृत्युको प्राप्त होता है अथवा महान् पापका भागी होता है। उसके किये हुए समस्त वेदपाठ यातयाम (प्रभाव-शून्य व्यर्थ) हो जाते हैं); इसलिये छन्दका ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिये। इसीके लिये इस छन्दःशास्त्रका आरम्भ हुआ है।

२. वेदमन्त्रोंमें जो गायत्री, अनुष्टुप्, बृहती और त्रिष्टुप् आदि छन्द प्रयुक्त हुए हैं, उनको वैदिक छन्द कहते हैं। यथा—

तत्सवितुर्वरीण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

—यह गायत्री छन्द है।

३. इतिहास, पुराण, काव्य आदिके पद्योंमें प्रयुक्त जो छन्द हैं, वे लौकिक कहे गये हैं। यथा—
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

—यह ‘श्लोक अनुष्टुप् छन्द है।

४. परिगणित मात्राओंसे पूर्ण होनेवाले छन्दोंको ‘मात्रिक’ कहते हैं। जैसे—आर्या छन्दके प्रथम और तृतीय पाद बारह मात्राओंसे, द्वितीय पाद अठारह मात्राओंसे और चतुर्थ पाद पन्द्रह मात्राओंसे पूर्ण होते हैं। आर्याके पूर्वार्ध सदृश उत्तरार्ध भी हो तो ‘गीति’ और उत्तरार्ध-सदृश पूर्वार्ध हो तो ‘उपगीति’ छन्द होते हैं।

आर्याका उदाहरण—

वृन्दावने सलीलं वलुद्गुमकाण्डनिहितनुयष्टिः। स्मेरमुखार्पितवेणुः कृष्णो यदि मनसि कः स्वर्गः ॥

५. परिगणित अक्षरोंसे सिद्ध होनेवाले छन्दोंको ‘वर्णिक’ कहते हैं। यथा—

जयन्ति गोविन्दमुखारविन्दे मरन्दसान्द्राधरमन्दहासाः। चित्ते चिदानन्दमयं तमोग्नमन्दमिन्द्रवमुद्दिरन्तः ॥

—यह इन्द्रवज्रा-उपेन्द्रवज्राके मेलसे बना हुआ उपजाति नामक छन्द है।

कहा गया है। तीन अक्षरोंके समुदायका नाम गण है० ॥४॥ आर्या आदि छन्दोंमें चार मात्रावाले पाँच गण कहे गये हैं, जो चार लघुवाले गणसे युक्त है० २। यदि लघु अक्षरसे परे संयोग, विसर्ग और अनुस्वार हो तो वह लघुकी दीर्घताका बोधक होता है० ३। इस छन्दःशास्त्रमें 'ग' का अर्थ गुरु या दीर्घ माना गया है और 'ल' का अर्थ लघु समझा जाता है। पद्य या श्लोकके एक-

चौथाई भागको पाद कहते हैं। विच्छेद या विरामका नाम 'यति' है ॥५-६॥ नारद! वृत्त (छन्द)-के तीन भेद माने गये हैं—सम वृत्त, अर्धसम वृत्त तथा विषम वृत्त। जिसके चारों चरणोंमें समान लक्षण लक्षित होता हो, वह सम वृत्त^५ कहलाता है ॥७॥ जिसके प्रथम और तीसरे चरणोंमें एवं दूसरे तथा चौथे चरणोंमें समान लक्षण हों, वह अर्धसम^६ वृत्त है। जिसके चारों चरणोंमें एक-

१. गणोंके सम्बन्धमें कुछ ज्ञातव्य बातें निम्नाङ्कित कोष्ठकसे जाननी चाहिये—

गणनाम	मगण	यगण	रगण	सगण	तगण	जगण	भगण	नगण
स्वरूप	१५५	१५	५१५	११५	५५१	१५१	५११	१११
देवता	पृथ्वी	जल	अग्नि	वायु	आकाश	सूर्य	चन्द्रमा	स्वर्ग
फल	लक्ष्मी-वृद्धि	वृद्धि या अभ्युदय	विनाश	भ्रमण	धन-नाश	रोग	सुयश	आयु
मित्रआदि संज्ञाएँ	मित्र	भृत्य	शत्रु	शत्रु	उदासीन	उदासीन	भृत्य	मित्र

यदि काव्यमें ऐसे छन्दको चुना गया, जो जगण आदि अनिष्टकारी गणोंसे संयुक्त हो तो उसकी शान्तिके लिये प्रारम्भमें भगवद्वाचक एवं देवतावाचक शब्दोंका प्रयोग करना चाहिये; जैसा कि भामहका वचन है—

देवतावाचकाः शब्द ये च भद्रादिवाचकाः । ते सर्वे नैव निन्द्याः स्युर्लिपितो गणतोऽपि वा ॥ (पिङ्गलसूत्रकी हलायुध-वृत्तिसे उद्धृत)

'जो देवतावाचक और मङ्गलादिवाचक शब्द हैं, वे सब लिपिदोष या गणदोषसे भी निन्दित नहीं होते।' (उनके द्वारा उक्त दोषोंका निवारण हो जाता है।)

२. यथा—	सर्वगुरु	अन्त्यगुरु	मध्यगुरु	आदिगुरु	चतुर्लघु
	५५	११५	१५१	५११	१११
	१	२	३	४	५

इन भेदोंके नाम क्रमशः इस प्रकार है—कर्ण, करतल, पयोधर, वसुचरण और विष्ट।

३. जैसे—रामं । रामः । रामस्य । यहाँ 'राम' शब्दके 'म' में हस्त अकार है, तथापि उसमें अनुस्वार और विसर्गका सम्बन्ध होनेसे वह दीर्घ ही माना जाता है। इसी प्रकार 'स्य' यह संयुक्त अक्षर परे होनेसे 'रामस्य' में मकारके परवर्ती अकारको दीर्घ समझा जाता है। पादके अन्तमें जो लघु अक्षर हो, वह भी विकल्पसे 'गुरु' माना जाता है।

४. सम वृत्तका उदाहरण—

मुखे ते ताम्बूलं नयनयुगले कज्जलकला ललाटे काश्मीरं विलसति गले मौक्किकलता ।

स्फुरत्काञ्ची शाटी पृथुक्टिटटे हाटकमयी भजामि त्वां गौरी नगपतिक्षोरीमविरतम् ॥

(इस 'शिखरिणी' छन्दके चारों चरणोंमें एक समान हस्त-दीर्घवाले सत्रह-सत्रह अक्षर हैं।)

५. अर्धसम वृत्तका उदाहरण—

॥ ११५ ॥ १५ ॥ ५५ ॥ १५ ॥ ५५ ॥ ५५

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरणौरवराम्बरं दधाने । वपुरलकुलावृताननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या ॥

यह 'पुष्पिताग्रा' छन्द है। इसके प्रथम और तृतीय चरण एक समान लक्षणवाले बारह-बारह अक्षरके हैं। उनमें २

दूसरेसे भिन्न लक्षण लक्षित होते हों, वह विषम^१ वृत्त है ॥ ८ ॥ एक अक्षरके पादसे आरम्भ करके एक-एक अक्षर बढ़ाते हुए जबतक छब्बीस अक्षरका पाद पूरा हो तबतक पृथक्-पृथक् छन्द बनते हैं। छब्बीस अक्षरसे अधिकका चरण होनेपर चण्डवृष्टिप्रपात आदि दण्डक^२ बनते हैं। तीन या छः पादोंसे गाथा^३ होती है। अब क्रमशः एकसे

छब्बीस अक्षरतकके पादवाले छन्दोंकी संज्ञा सुनो ॥ ९-१० ॥ उक्ता, अत्युक्ता, मध्या, प्रतिष्ठा, सुप्रतिष्ठा, गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, अष्टि, अत्यष्टिधृति, विधृति (या अतिधृति), कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, संकृति, अतिकृति या अभिकृति तथा उत्कृति^४ ॥ ११—१३ ॥ ये छन्दोंकी

नगण, १ रगण और १ यगण हैं और द्वितीय तथा चतुर्थ चरणमें एक-से लक्षणवाले तेरह-तेरह अक्षर हैं। इनमें १ नगण, २ जगण, १ रगण और १ गुरु हैं।

अर्धसम वृत्तोंमें 'पुष्टिताग्रा' के अतिरिक्त हरिणप्लुता तथा वैतालीय या वियोगिनी आदि और भी अनेक छन्द होते हैं। वैतालीय अथवा वियोगिनीके प्रथम और तृतीय चरणोंमें २ सगण, १ जगण और १ गुरु होते हैं। द्वितीय और चतुर्थ चरणोंमें १ सगण, १ भगण, १ रगण, १ लघु और १ गुरु होते हैं। पादान्तमें विराम होता है।

उदाहरण—

॥५ ॥ १ ॥ ५ ॥ १ ॥ ५ ॥ ५ ॥ ५ ॥ ५ ॥ ५ ॥ ५ ॥ ५ ॥

जगद्म्ब विचित्रमत्र किं परिपूर्णा करुणास्ति चेन्मयि ।
अपराधपरम्परापरं न हि माता समुपेक्षते सुतम् ॥

'हरिणप्लुता' (में विषम पादोंमें ३ सगण, १ लघु, १ गुरु होते हैं और सम पादोंमें १ नगण, २ भगण और १ रगण होते हैं। इसके दूसरे, चौथे पाद हृतविलम्बितके ही समान हैं।)

उदाहरण—

॥५ ॥ ५ ॥ ५ ॥ ५ ॥ ५ ॥ ५ ॥ ५ ॥ ५ ॥ ५ ॥

स्फुटफेनचया हरिणप्लुता वलिमनोज्जटा तरणेः सुता ।
कलहंसकुलारवशालिनी विहरतो हरति स्म हरेमनः ॥

१. विषम वृत्तका उदाहरण—

नलिनेक्षणं शशिमुखं च रुचिरदशनं घनच्छविम् । चारुचरणकमलं कमलाङ्गितमाव्रज व्रजमहेन्द्रनन्दनम् ॥
(—इस 'उद्गता' नामक छन्दमें चारों चरणोंके भिन्न-भिन्न लक्षण हैं। इसके प्रथम पादमें स, ज, स, ल; २ में न, स, ज, ग; ३ में भ, न, ज, ल, ग और ४ में स, ज, स, ज, ग होते हैं।)

२. छब्बीस अक्षरोंसे अधिकका एक-एक चरण होनेपर जो छन्द बनता है उसे, 'दण्डक' कहते हैं। सत्ताईस अक्षरोंके दण्डकका नाम 'चण्डवृष्टिप्रपात' है। इसमें दो 'नगण' और सात 'रगण' होते हैं। पादान्तमें विराम होता है।

उदाहरण—

इह हि भवति दण्डकारण्यदेशे स्थितिः पुण्यभाजं मुनीनां मनोहारिणी
त्रिदशविजयिवीर्यदृप्यदशग्रीवलक्ष्मीविरामेण रामेण संसेविते ।
जनकयजनभूमिसम्भूतसीमन्तिनीसीमसीतापदस्पर्शपूताश्रमे
भुवननमितपादपद्माभिधानाम्बिकातीर्थयात्रागतानेकसिद्धाकुले ॥

३.आचार्य पिङ्गलके मतमें पिङ्गल सूत्रोंमें जिनके नामका उल्लेख नहीं हुआ है, ऐसे छन्दोंकी 'गाथा' संज्ञा है। यहाँ मूलमें तीन पाद या छः पादके छन्दोंको 'गाथा' कहा गया है। अतः उसके किसी विशेष लक्षण या उदाहरणका उल्लेख नहीं किया गया।

४. (१) जिसके प्रत्येक चरणमें एक-एक अक्षर हो, उस छन्दका नाम 'उक्ता' है। इसके दो भेद होते हैं। पहला गुरु अक्षरोंसे बनता है, दूसरा लघु अक्षरोंसे। गुरु अक्षरोंसे जो छन्द बनता है, उसका नाम पिङ्गलाचार्यने 'श्री' रखा है। उदाहरण—'विष्णु वन्दे'। लघु अक्षरोंवाले उक्ता छन्दका उदाहरण 'हरिरिह' समझना चाहिये।

(२) जिसके प्रत्येक चरणमें दो-दो अक्षरोंकी संयोजना हो, वह 'अत्युक्ता' नामक छन्द है। प्रस्तारसे इसके चार भेद हो सकते हैं। यहाँ विस्तार-भयसे केवल एक प्रथम भेद 'स्त्री' का उदाहरण दिया जाता है। दो गुरु अक्षरोंवाले चार पदोंसे जो छन्द बनता है, उसको 'स्त्री' कहते हैं।

उदाहरण—

५५

'अन्यस्त्रीभिः सङ्गस्त्याज्यः ।'

(३) तीन-तीन अक्षरोंके चार पादोंसे 'मध्या' नामक छन्द बनता है। प्रस्तारसे उसके भेदोंकी संख्या आठ होती है। इसके प्रथम भेदका, जिसमें तीनों अक्षर गुरु होते हैं, आचार्य पिङ्गलने 'नारी' नाम नियत किया है।

उदाहरण—

५५५

१-'सर्वासां नारीणाम् । भर्ता स्यादाराध्यः ॥'

५१५

२-'प्राणतः प्रेयसी । राधिका श्रीपतेः ॥'

यह दूसरा उदाहरण मध्याका तृतीय भेद है। इसे 'मृगी' छन्द कहते हैं। इसके प्रत्येक चरणमें एक-एक रण ज्ञात होता है।

(४) चार-चार अक्षरोंके चार पादवाले छन्द-समूहका नाम 'प्रतिष्ठा' है। प्रस्तारसे इसके सोलह भेद होते हैं। इसके प्रथम भेदका नाम 'कन्या' है। उदाहरण पढ़िये—

५५५५

भास्वत्कन्या सैका धन्या । यस्याः कूले कृष्णोऽखेलत् ॥

(५) पाँच-पाँच अक्षरके चार पादवाले छन्दसमूदायका नाम 'सुप्रतिष्ठा' है। प्रस्तारसे इसके बत्तीस भेद होते हैं। इनमें सातवाँ भेद 'पंक्ति' है, उसे यहाँ बतलाया जाता है। भगण तथा दो गुरु अक्षरोंसे पंक्ति छन्दकी सिद्धि होती है।

उदाहरण—

५१५५

कृष्णसनाथा तर्णकपंक्तिः । यामुनकच्छे चारु चचार ॥

(६) जिसके चारों चरणोंमें छः-छः अक्षर हों, उस छन्द-समूहका नाम गायत्री है। प्रस्तारसे इसके चाँसठ भेद होते हैं। इसके प्रथम भेदका नाम विद्युल्लेखा, तेरहवें भेदका नाम तनुमध्या, सोलहवेंका नाम शशिवदना तथा उन्तीसवेंका नाम वसुमती है। यहाँ केवल इन्हीं चरणोंका उल्लेख किया जाता है। दो मण (५५५५५५) होनेसे विद्युल्लेखा, एक तगण (५५१) और एक यगण (१५५) होनेसे तनुमध्या, एक नगण (१११) और एक यगण (१५५) होनेसे शशिवदना तथा एक तगण (५५१) और एक सगण (११५) होनेसे वसुमती नामक छन्द बनता है। उदाहरण क्रमशः इस प्रकार हैं—

'विद्युल्लेखा'—

५५५५५५

गोगोपीगोपानां प्रेयांसं प्राणेशम् । विद्युल्लेखावस्त्रं वन्देऽहं गोविन्दम् ॥

'तनुमध्या'—

५५ ११५

प्रीत्या प्रतिवेलं नानाविधखेलम् । सेवे गततन्त्रं वृन्दावनचन्द्रम् ॥

'शशिवदना'—

१११५५

परममुदारं विपिनविहारम् । भज प्रतिपालं व्रजपतिबालम् ॥

'वसुमती'—

५५ ११५

भक्तार्तिकदनं संसिद्धिसदनम् । नौमीन्दुवदनं गोविन्दमधुना ॥

(७) सात-सात अक्षरोंके चार पादवाले छन्दसमूदायको 'उद्धिक' कहा गया है, प्रस्तारसे इसके एक सौ अट्टाइस भेद होते हैं। इनमेंसे पचीसवाँ भेद 'मदलेखा' और तीसवाँ भेद 'कुमारललिता' के नामसे प्रसिद्ध है। मण, सगण तथा एक गुरु—इन सात अक्षरोंसे 'मदलेखा' तथा जगण, सगण और एक गुरुसे 'कुमारललिता' छन्दकी सिद्धि होती है। प्रथमका उदाहरण यों है—

५५ ११५५ ५५५ ११५

रङ्गे बाहुविरुणाद् दन्तीन्द्रान्मदलेखा । लग्राभूमुरशत्रौ कस्तूरीरसचर्चा ॥

(८) आठ अक्षरवाले चार पदोंसे जो छन्द बनते हैं, उनकी जातिवाचक संज्ञा 'अनुष्टुप्' है। प्रस्तारसे अनुष्टुप्के दो सौ छप्पन भेद होते हैं। इसके विद्युन्माला, माणवकाक्रीड़, चित्रपदा, हंसरुत, प्रमाणिका या नगस्वरूपिणी, समानिका, श्लोक तथा वितान आदि अनेक भेद-प्रभेद हैं। श्लोक-छन्दके प्रत्येक चरणमें छठा अक्षर गुरु और पाँचवाँ लघु होता है। प्रथम और तृतीय चरणोंमें सातवाँ अक्षर दीर्घ होता है तथा द्वितीय तथा चतुर्थ चरणोंमें वह हस्त हुआ करता है। शेष अक्षरोंका विशेष नियम न होनेसे इस श्लोक-छन्दके भी बहुत-से अवान्तर भेद हो जाते हैं। उपर्युक्त छन्दोंमें विद्युन्माला अनुष्टुप्का प्रथम भेद है; क्योंकि उसमें सभी अक्षर गुरु होते हैं। इसमें चार-चार अक्षरोंपर विराम होता है। प्रमाणिका या नगस्वरूपिणी छियासीवाँ भेद है। इसमें जगण, रगण १ लघु तथा १ गुरु होते हैं। प्रमाणिका और समानिकाके सिवा अनुष्टुप्के जितने भेद हैं, वे सब वितानके अन्तर्गत माने जाते हैं। यहाँ विद्युन्माला, नगस्वरूपिणी, श्लोक (अनुष्टुप्) तथा माणवकाक्रीड़का एक-एक उदाहरण दिया जाता है—

'विद्युन्माला'—

५ ५ ५ ५ ५ ५ ५

विद्युन्मालालोलान् भोगान् मुक्त्वा मुक्तौ यत्नं कुर्यात्। ध्यानोत्पत्रं निःसामान्यं सौख्यं भोक्तुं यद्याकाङ्क्षेत्॥

'नगस्वरूपिणी'—

शिवताण्डवस्तोत्रं 'नगस्वरूपिणी' छन्दमें ही लिखा गया है। उसके एक-एक पदमें दो-दो नगस्वरूपिणी छन्द आ गये हैं। कुछ लोग उस संयुक्तछन्दको 'पञ्चचामर' आदि नाम देते हैं। इसमें ज. र. ज. र. ज. और १ गुरु होते हैं। उदाहरण यह है—

१ ५ १ ५ १ ५ १ ५ १ ५ १ ५

जटाकटाहसंभ्रमध्रमन्त्रिलिप्यनिर्झरीविलोलवीचिवल्लरीविराजमानमूर्धनि।

धगद्धगद्धगज्ज्वलललाटपट्टपावके किशोरचन्द्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम ॥

'श्लोक'—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्। स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥

माणवकाक्रीड़में भगण, तगण, एक लघु और एक गुरु होते हैं।

जैसे—

५ ॥ ५ ५ ॥ ५

आदिगतं तुर्यगतं पञ्चमकं चान्त्यगतम्। स्याद् गुरु चेत् तत् कथितं माणवकाक्रीडमिदम् ॥

(९) नौ-नौ अक्षरोंके चार चरणोंसे सिद्ध होनेवाले छन्दसमूहका नाम 'बृहती' है। प्रस्तारसे इसके पाँच सौ बारह भेद होते हैं। इसके 'हलमुखी' (१ रगण १ नगण १ सगण) तथा 'भुजङ्गशिशुभृता' (२ नगण १ भगण) भेद यहाँ बतलाये जाते हैं। इनमें एक तो २५१ वाँ भेद है और दूसरा ६४ वाँ। उदाहरण क्रमशः यों हैं—

५ ॥ ५ ॥ ५ ॥ ५

१—हस्तयोर्मधुरमुरलीं धारयन्नधरशयने। सत्रिवेश्य रवममृतं संसृजञ्जयति स हरिः ॥

४ ४ ४ ४ ४ ४

२—प्रणमत नयनारामं विकचकुवलयश्यामम्। अधरयमुनानीरे भुजगशिरसि नृत्यन्तम् ॥

(१०) दस अक्षरके पादवाले छन्द-समुदायको 'पङ्किं' कहते हैं। प्रस्तारसे इसके १०२४ भेद होते हैं। इसके शुद्धविराट् पणव, रुक्मवती, मयूरसारिणी, मत्ता, मनोरमा, हंसी, उपस्थिता तथा चम्पकमाला आदि अनेक अवान्तर भेद हैं। शुद्धविराट् पङ्किका ३४५ वाँ भेद है। यहाँ शुद्धविराट् (मगण, सगण, जगण, १ गुरु) तथा चम्पकमालाके उदाहरण दिये जाते हैं—

५ ५ ५ ॥ ५ ५ ५

विश्वं तिष्ठति कुक्षिकोटे वक्त्रे यस्य सरस्वती सदा।

सर्वेषां प्रपितामहो गुरुर्ब्रह्मा शुद्धविराट् पुनातु नः ॥

'चम्पकमाला' के प्रत्येक पादमें भगण, मगण, सगण और एक गुरु होते हैं तथा पाँच-पाँच अक्षरोंपर विराम होता है। प्रत्येक चरणमें इसके अन्तिम अक्षरको कम कर देनेसे 'मणिबन्ध' छन्द हो जाता है।

उदाहरण—

५ ॥ ५ ५ ॥ ५

सौम्य गुरु स्यादाद्यचतुर्थं पञ्चमषष्ठं चान्त्यमुपान्त्यम्।

इन्द्रियबाणीर्यत्र विरामः सा कथनीया चम्पकमाला ॥

(११) ग्यारह-ग्यारह अक्षरके चार चरणोंसे जिस छन्दसमुदायकी सिद्धि होती है, उसका नाम त्रिष्टुप् है। प्रस्तारसे इसके २०४८ भेद होते हैं। त्रिष्टुप्के ही अनेक अवान्तर भेद इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, दोधक, शालिनी, रथोद्धता और स्वागता आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। ये त्रिष्टुप्के किस संख्यावाले भेद हैं? इसका ज्ञान मूलोक्त रीतिसे कर लेना चाहिये। यहाँ उक्त सात छन्दोंके लक्षण और उदाहरण क्रमशः प्रस्तुत किये जाते हैं; क्योंकि प्राचीन और अर्वाचीन ग्रन्थोंमें इनके प्रयोग अधिक मिलते हैं।

(१) 'इन्द्रवज्रा छन्द'—(में २ तगण, १ जगण और २ गुरु होते हैं—)

५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामा:

द्वन्द्वैर्विमुक्ता: सुखदुःखसंज्ञागच्छन्त्यमूढा: पदमव्ययं तत्॥

(२) 'उपेन्द्रवज्रा'—(-में १ जगण, १ तगण, १ जगण और दो गुरु होते हैं।) इन्द्रवज्राके प्रत्येक चरणका पहला अक्षर हस्त हो जाय तो उपेन्द्रवज्रा-छन्द बन जाता है।

१५ ॥ ५५ ॥ १५ ॥ ५५

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।

त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

(३) इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा—दोनोंके मेलसे जो छन्द बनता है, उसका नाम 'उपजाति' है। उपजातिमें कोई चरण या पाद इन्द्रवज्राका होता है, तो कोई उपेन्द्रवज्राका। प्रस्तारवश उपजातिके चौदह भेद होते हैं। उन भेदोंके नाम इस प्रकार हैं—कीर्ति, वाणी, माला, शाला, हंसी, माया, जाया, बाला, आर्द्धा, भद्रा, प्रेमा, रामा, ऋद्धि तथा बुद्धि। इनका स्वरूप निम्नाङ्कित चक्रमें देखिये—

१	इ.	इ.	इ.	इ.	शुद्धा	इन्द्रवज्रा
२	उ.	इ.	इ.	इ.	१ उपजाति	कीर्ति
३	इ.	उ.	इ.	इ.	२	वाणी
४	उ.	उ.	इ.	इ.	३	माला
५	इ.	इ.	उ.	इ.	४	शाला
६	उ.	इ.	उ.	इ.	५	हंसी
७	इ.	उ.	उ.	इ.	६	माया
८	उ.	उ.	उ.	इ.	७	जाया
९	इ.	इ.	इ.	उ.	८	बाला
१०	उ.	इ.	इ.	उ.	९	आर्द्धा
११	इ.	उ.	इ.	उ.	१०	भद्रा
१२	उ.	उ.	इ.	उ.	११	प्रेमा
१३	इ.	इ.	उ.	उ.	१२	रामा
१४	उ.	इ.	उ.	उ.	१३	ऋद्धि:
१५	इ.	उ.	उ.	उ.	१४	बुद्धि:
१६	उ.	उ.	उ.	उ.	शुद्धा	उपेन्द्रवज्रा

उदाहरण—

५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं

प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।

पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः

प्रियः प्रियायार्हसि देव सोदुम्॥

पूर्वोक्त चक्रके अनुसार यह 'उपजाति' का बुद्धि नामक भेद है। इसीको विपरीतपूर्वा और आख्यानकी भी कहते हैं। इसमें पहला चरण इन्द्रवज्राका और शेष तीन चरण उपेन्द्रवज्राके हैं। जहाँ आदिसे तीन इन्द्रवज्राके और शेष (चौथा) उपेन्द्रवज्राका चरण हो, वहाँ 'बाला' नामक उपजाति होती है।

यथा—

५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५

वन्द्यः स पुंसां त्रिदशाभिनन्द्यः

कारुण्यपुण्योपचयक्रियाभिः।

संसारसारत्वमुपैति यस्य

परोपकाराभरणं शरीरम्॥

(४) 'दोधकवृत्त' (-में तीन भगण और दो गुरु होते हैं—)

५ ॥ ५ ॥ ५ ॥ ५५

दोधकमर्थीविरोधकमुग्रं

स्त्रीचपलं युधि कातरचित्तम्।

स्वार्थपरं मतिहीनममात्यं

मुक्तिं यो नृपतिः सः सुखी स्यात्॥

'शालिनी'—(-में मगण, तगण, तगण और दो गुरु होते हैं—)

उदाहरण—

५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५

रूपं यत्तत् प्राहुरव्यक्तमाद्यं ब्रह्मज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम्।

सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं स त्वं साक्षाद् विष्णुरध्यात्मदीपः ॥

'रथोद्धता'—(-में रगण, नगण, रगण, एक लघु और एक गुरु होते हैं—)

उदाहरण—

५१५ ॥५ १५ १५

रामनाम जपतां कुतो भयं सर्वतापशमनैकभेषजम् ।

पश्य तात मम गात्रसन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना ॥

'स्वागता'—(-में रगण, नगण, भगण, दो गुरु होते हैं—)

उदाहरण—

५१५ ॥१५ ॥१५

कुन्ददामकृतकौतुकवेषो गोपगोधनवृतो यमुनायाम् ।

नन्दसुनुरनधे तव वत्सो नर्मदः प्रणयिनां विजहार ॥

इनके सिवा सुमुखी, वातोर्मी, श्रीभ्रमर-विलसित, वृत्ता, भद्रिका, श्येनिका, मौक्तिकमाला तथा उपस्थिता आदि और भी अनेक छन्द हैं। इनके लक्षण, उदाहरण अन्यत्र देखने चाहिये।

(१२) जिसके चारों चरण बारह-बारह अक्षरोंसे बनते हैं, उस छन्दसमुदायका नाम 'जगती' है। प्रस्तारसे इसके ४०९६ भेद होते हैं। इसके भेदोंमेंसे केवल वंशस्थ, इन्द्रवंश, द्रूतविलम्बित, तोटक, भुजङ्गप्रयात, स्त्रग्विणी, प्रमिताक्षरा और वैश्वदेवी छन्दोंके ही लक्षण और उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं—

'वंशस्थ'—(-में जगण, तगण, जगण तथा रगण—ये चार गण होते हैं। पादके अन्तमें यति है।)

उदाहरण—

१५१५५ ॥१५ १५

सशङ्खचक्रं सकिरीटकुण्डलं सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम् ।

सहारवक्षःस्थलकौस्तुभश्रियं नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम् ॥

'इन्द्रवंश'—(-में तगण, तगण, जगण तथा रगण प्रयुक्त होते हैं तथा पादान्तमें यति या विराम है। वंशस्थके प्रत्येक चरणका पहला अक्षर गुरु कर दिया जाय तो वह इन्द्रवंश छन्द हो जाता है।)

उदाहरण—

५५१५ ५॥५ १५

यत्कीर्तनं यत्प्ररणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ।

लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥

वंशस्थ और इन्द्रवंशके चरणोंके मेलसे भी चौदह प्रकारकी 'उपजाति' बनती है। पूर्वोक्त चक्रमें 'उ' के स्थानमें 'वं' लिख दिया जाय तो वह इन्द्रवंशा तथा वंशस्थकी उपजातिका प्रस्तार-चक्र हो जायगा। इन चौदह उपजातियोंके नाम इस प्रकार हैं— १- वैरासिकी, २- रताख्यानकी, ३- इन्दुमा, ४- पुष्टिदा, ५- उपमेया अथवा रामणीयक, ६- सौरभेयी, ७- शीलातुरा, ८- वासन्तिका, ९- मन्दहासा, १०- शिशिरा, ११- वैधात्री, १२- शङ्खचूडा, १३- रमणा तथा १४- कुमारी। इन सबके उदाहरण ग्रन्थान्तरोंमें उपलब्ध होते हैं। यहाँ प्रथम उपजातिका एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें प्रथम चरण वंशस्थका और शेष तीन चरण इन्द्रवंशाके हैं।

१५१५५ ॥१५ १५

किरातहूणान्शपुलिन्दपुलकसा आभीरकङ्गा यवनाः खसादयः ।

येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुद्धयन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥

'द्रूतविलम्बित'—(-में नगण, भगण, भगण, रगण—ये चार गण होते हैं। पादान्तमें यति होती है।)

उदाहरण—

॥१५ १५ १५ १५

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा सदसि वाक्पदुता युधि विक्रमः ।

यशसि च भिरुचिर्यसं श्रुतौ प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥

‘तोटकवृत्त’—(में चार सगण होते हैं और पादान्तमें विराग हुआ करता है—)

उदाहरण—

॥५ ॥५ ॥५ ॥५

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम् । हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥

‘भुजङ्गप्रयात्’—(—में चार यगण और पादान्तमें विराम होते हैं—)

उदाहरण—

५ ५ ५५ ५५ ५५

अयं त्वक्तथामृषीयूषनद्यां मनोवारणः क्लेशदावाग्निदग्धः ।

तृष्णातोऽवगाढो न सम्मार दावं न निष्क्रामति ब्रह्मसम्पत्रवत्रः ॥

‘स्त्रिग्वणी’—(में चार रगण तथा पादान्तमें विराम होते हैं—)

उदाहरण—

५ ५ ५ ५५ । ५५ ५

स्वागतं ते प्रसीदेश तुभ्यं नमः श्रीनिवास श्रिया कान्तया त्राहि नः ।

त्वामृतेऽधीश नाङ्गैर्मखः शोभते शीर्षहीनः कब्ज्ञो यथा पूरुषः ॥

‘प्रमिताक्षरा—(—में सगण, जगण, सगण, सगण तथा पादान्तमें विराम होते हैं—)

उदाहरण—

॥५ ५ ॥५ ॥५

परिशुद्धद्वाक्यरचनातिशयं परिषिञ्चती श्रवणयोरमृतम् ।

प्रमिताक्षरापि विपुलार्थवती कविभारती हरति मे हृदयम् ॥

‘वैश्वदेवी’—(में २ मगण और २ यगण होते हैं तथा पाँचवें, सातवें अक्षरोंपर विराम होता है—)

उदाहरण—

५५५५५ ५ ५५ ५५

अर्चामन्येषां त्वं विहायामराणामद्वैतेनैकं विष्णुमध्यर्च भक्त्या ।

तत्राशेषात्मन्यर्चिते भाविनी ते भ्रातः सम्पत्राऽराधना वैश्वदेवी ॥

उपर्युक्त छन्दोंके अतिरिक्त बृहतीके अन्य भेद पुट, जलोद्धतगति, नत, कुसुमविचित्रा, चञ्चलाक्षिका, कान्तोत्पीडा, वाहिनी, नवमालिनी, चन्द्रवर्त्म, प्रमुदितवदना, प्रियंवदा, मणिमाला, ललिता, मोहितोज्ज्वला, जलधरमाला, प्रभा, मालती तथा अभिनव तामरस आदिके भी लक्षण और उदाहरण ग्रन्थान्तरोंमें मिलते हैं।

(१३) तेरह-तेरह अक्षरोंके चार पादोंसे सम्पन्न होनेवाले छन्द-समूहका नाम ‘अतिजगती’ है। प्रस्तारसे इसके ८१९२ भेद होते हैं। अतिजगतीके भेदोंमें ही एक ‘प्रहर्षिणी’ नामक भेद है। इसके प्रत्येक पादमें मगण, नगण, जगण, रगण तथा एक गुरु होते हैं। तीन तथा दस अक्षरोंपर यति होती है।

उदाहरण—

५५३ ॥१॥५ ५ ५५

जागर्ति प्रसभविपाकसंविधात्री श्रीविष्णोर्लिलितकपोलजा नदी चेत् ।

संकीर्ण यदि भवितास्ति को विषादः संवादः सकलजगतिपामहेन ॥

इसके सिवा क्षमा, अतिरुचिरा मत्तमयूर, गौरी, मञ्जुभाषिणी और चन्दिका आदि भेद भी ग्रन्थान्तरोंमें वर्णित हैं। उनके उदाहरण वहीं देखने चाहिये।

(१४) चौदह-चौदह अक्षरोंके चार पादोंवाले छन्दसमुदायको ‘शक्वरी’ कहते हैं। प्रस्तारसे इसके १६३८४ भेद होते हैं। इसके भेदोंमें वसन्ततिलका नामक छन्द यहाँ बतलाया जाता है। इसमें तगण, भगण, २ जगण और २ गुरु होते हैं। पादान्तमें विराम होता है। वसन्ततिलकाको ही कुछ विद्वान् ‘सिंहोन्नता’ और ‘उद्धर्षिणी’ भी कहते हैं।

उदाहरण—

५ ५ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप्रेद्यखेद्यनार्भरुदिक्षणमार्जनादौ।

गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठयो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः॥

इसके सिवा असंबाधा, अपराजिता तथा प्रहरणकलिता आदि और भी अनेक भेद हैं। उनमें से प्रहरणकलिताका उदाहरण यहाँ दिया जाता है, प्रहरणकलितामें २ नगण, १ भगण, १ लघु, १ गुरु होते हैं। सात-सात अक्षरोंपर विराम होता है।
यथा—

॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५

सुरमुनिमनुजैरुपचित्तचरणां रिपुभयचकितत्रिभुवनशरणाम्।

प्रणमत महिषासुरवधकुपितां प्रहरणकलितां पशुपतिदयिताम्॥

(१५) पंद्रह-पंद्रह अक्षरोंके चार चरणोंसे सिद्ध होनेवाले छन्दोंका नाम 'अतिशक्वरी' है। प्रस्तारसे इसके ३२७६८ भेद होते हैं। इन भेदोंमें चन्द्रावर्ता और मालिनी—ये दो ही यहाँ बताये जाते हैं। ४ नगण और १ सगणसे 'चन्द्रावर्ता' छन्द बनता है। इसमें सात और आठ अक्षरोंपर विराम है। यदि छः और नौ अक्षरोंपर विराम हो तो इसका नाम 'माला' होता है। इसी तरह आठ और सात अक्षरोंपर विराम होनेसे उसकी 'मणिनिकर' संज्ञा होती है। चन्द्रावर्ताका उदाहरण इस प्रकार है—

॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५

पटुजवपवनचलितजललहरीतरलितविहगनिचयरवमुखरम् ।

विकसितकमलसुरभिशुचिसलिलं प्रविशति हरिरिह शरदि शुभसरः॥

'मालिनी'—(—में २ नगण, १ मगण और २ भगण होते हैं। इसमें सात और आठ अक्षरोंपर विराम होता है—)

उदाहरण—

॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५

असितगिरिसमं स्यात् कञ्जलं सिन्धुपत्रे सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।

लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥

(१६) सोलह-सोलह अक्षरोंके चार चरणोंसे सिद्ध होनेवाले छन्द-समुदायका नाम 'अष्टि' है। प्रस्तारसे इसके भेदोंकी संख्या ६५५३६ होती है। इसके भेदोंमें दोके लक्षण और उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं। एकका नाम है ऋषभगजविलासित और दूसरेका नाम है वाणिनी। ऋषभगजविलासितमें भगण, रगण, तीन नगण तथा एक गुरु होते हैं। सात, नौ अक्षरोंपर विराम होता है।

५ १५ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५

यो हरिरुच्खान खरतरनखशिखर्दुर्जयदैत्यसिंहसुविकटहृदयतटम् ।

किं न्विह चित्रमेष यदखिलमपहतवान् कंसनिदेशदृष्ट्यदृष्ट्यभगजविलासितम्॥

'वाणिनी'—(में नगण, जगण, भगण, जगण, रगण तथा १ गुरु होते हैं—)

उदाहरण—

॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५

स्फुरतु ममाननेऽद्य न नु वाणि नीतिरम्यं तव चरणप्रसादपरिपाकतः कवित्वम्।

भवजलराशिपाकरणक्षमं मुकुन्दं सततमहं स्तवैः स्तवचितैः स्तवानि नित्यम्॥

(१७) सत्रह-सत्रह अक्षरोंके चार चरणोंवाले छन्दसमूहका नाम 'अत्यष्टि' है। प्रस्तारसे इसकी संख्या १३१०७२ होती है। इसके भेदोंमेंसे केवल हरिणी, पृथ्वी, वंशपत्रपतित, मन्दाक्रान्ता और शिखरिणीके लक्षण और उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं।

'हरिणी' (के प्रत्येक चरणमें नगण, सगण, मगण, रगण, सगण, एक लघु तथा एक गुरु होते हैं। ६, ४, ७ अक्षरोंपर विराम होता है।)

उदाहरण—

॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५

न समरसनाः काले भोगाश्लं धनयौवनं कुरुत सुकृतं यावत्रेयं तनुः प्रविशीर्यते॥

किमपि कलना कालस्येयं प्रधावति सत्वरा तरुणहरिणीसंत्रस्तेव प्लवप्रविसारिणी॥

'पृथ्वी' (के प्रत्येक पादमें जगण, सगण, जगण, सगण, यगण, एक लघु, एक गुरु होते हैं। आठ-नौ अक्षरोंपर विराम होता है।)

उदाहरण—

५ १५ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५

हताः समितिशत्रवस्त्रिभुवने प्रकीर्ण यशः कृतश्च गुणिनां गृहे निरवधिर्महानुत्सवः।

त्वया कृतपरिग्रहे रघुपतेऽद्य सिंहासने नितान्तनिरवग्रहा फलवती च पृथ्वी कृता॥

'वंशपत्रपतित' (में भगण, रगण, नगण, भगण, नगण, एक लघु, एक गुरु होते हैं। दस-सात अक्षरोंपर विराम होता है।)
उदाहरण—

५ १५ १५ ११५ ११५

अद्य कुरुष्व कर्म सुकृतं यदि परदिवसे मित्र विधेयमस्ति भवतः किमु चिरयसि तत्।

जीवितमल्पकालकलनालघुतरतरलं नश्यति वंशपत्रपतितं हिमसलिलमिव॥

'मन्दाक्रान्ता' (में मगण, भगण, नगण, तगण, तगण और दो गुरु होते हैं। ४, ६, ७ अक्षरोंपर विराम होता है। (इसके प्रत्येक चरणके अन्तिम सात अक्षर कम कर देनेपर 'हंसी' छन्द बन जाता है।)

उदाहरण—

५५५५ १११५ ५१५ ५१५

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं विश्रद्धासः कनककपिंशं वैजयन्ती च मालाम्।

रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृद्धैर्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्वीतकीर्तिः॥

'शिखरिणी' (-में यगण, मगण, सगण, नगण, भगण, एक लघु, एक गुरु होते हैं तथा ६, ११ अक्षरोंपर विराम होता है।)

उदाहरण—

१५ ५५ ५ १११५ ५ ११५

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसत्रास्त्वयि गिरः।

अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन् ममायेष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः॥

(१८) अठारह-अठारह अक्षरोंके चार चरणोंसे बननेवाले छन्द-समूहकी संज्ञा 'धृति' कही गयी है। प्रस्तारसे इसके २६२१४४ भेद होते हैं। उनमेंसे एक ही भेद 'कुसुमितलतावेल्लिता' नामक छन्दका लक्षण और उदाहरण दिया जाता है। इसमें मगण, तगण, नगण और तीन भगण होते हैं। ५, ६, ७ अक्षरोंपर विराम होता है।

उदाहरण—

५५५५५ ११११५ ५५ ५५

धन्यानामेताः कुसुमितलतावेल्लितोत्फुल्लवृक्षाः सोत्कण्ठं कूजत्परभृतकलालापकोलाहलिन्यः।

मध्यादौ माद्यन्मधुकरकलोदीतझङ्कारम्या ग्रामान्तःस्रोतःपरिसरभुवः प्रीतिमुत्पादयन्ति॥

(१९) उत्रीस-उत्रीस अक्षरोंके चार चरणोंसे सिद्ध होनेवाले छन्द-समुदायको 'विधृति' या 'अतिधृति' कहते हैं। प्रस्तारसे इसके ५२४२८८ भेद होते हैं। इनमेंसे एक भेद 'शार्दूलविक्रीडित' नामसे प्रसिद्ध है, जिसमें मगण, सगण, जगण, सगण, दो तगण और एक गुरु होते हैं तथा बारह और सात अक्षरोंपर विराम होता है।

उदाहरण—

५५५ १५१५ ११५ ५५ ५५ १५

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैर्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायिन्ति यं सामगाः।

ध्यानावस्थिततद्वेतन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो यस्यान्तं न विदुः सुरासुराणा देवाय तस्मै नमः॥

(२०) बीस-बीस अक्षरोंके चार पादोंसे निष्प्रत्र होनेवाले छन्दसमूहका नाम 'कृति' है। प्रस्तारसे इसके १०४८५७६ भेद होते हैं। उनमेंसे २के लक्षण और उदाहरण यहाँ बतलाये जाते हैं। पहलेका सुवदना और दूसरेका नाम 'वृत्त' है। सुवदनामें मगण, रगण, भगण, नगण, यगण, भगण, १ लघु और १ गुरु होते हैं। ७, ७, ६ अक्षरोंपर विराम होता है।

उदाहरण—

५ ५५५ ५५ ११११५ ५५५ ११५

या पीनोद्घाढतुङ्गस्तनजघनघनभोगालसगतिर्यस्याः कर्णावितंसोत्पलरुचिजयिनी दीर्घे च नयने।

श्यामा सीमन्तिनीनां तिलकमिव मुखे या च त्रिभुवने प्रत्यक्षं पार्वती मे भवतु भगवती स्नेहात्सुवदना॥

'वृत्त' (में एक गुरु, एक लघुके क्रमसे २० अक्षर होते हैं। पादान्तमें विराम होता है।)

उदाहरण—

५ १५ १५ १ ५ १ ५ १५ १५ १

जन्तुमात्रदुःखकारि कर्म निर्मितं भवत्यनर्थेतु तेन सर्वमात्मतुल्यमीक्षमाण उत्तमं सुखं लभस्व।

विद्धि बुद्धिपूर्वकं ममोपदेशवाक्यमेतदादरेण वृत्तमेतदुत्तमं महाकुलप्रसूतजन्मनां हिताय॥

(२१) इक्कीस-इक्कीस अक्षरोंके चार पादोंमें पूर्ण होनेवाले छन्दोंकी जातिवाचक संज्ञा 'प्रकृति' है। प्रस्तारसे इसके २०९७५२ भेद होते हैं। इनमेंसे एक भेद 'साधरा' के नामसे प्रसिद्ध है। इसमें मगण, रगण, भगण, नगण और तीन यगण

होते हैं। सात-सात अक्षरोंपर विराम होता है।

उदाहरण—

555 5 1 55 111 11 155 155 155

ब्रह्माण्डं खण्डयन्ती हरशिरसि जटावल्लमुल्लासयन्ती स्वलोकादापतन्ती कनकगिरिगुहागण्डशैलात्स्खलन्ती ।

क्षोणीपृष्ठे लुठन्ती दुरितचयचमूर्निर्भरं भत्स्यन्ती पाथोधिं पूर्यन्ती सुरनगरसरित्पावनी नः पुनातु ॥

(२२) बाईस-बाईस अक्षरोंके चार पादोंसे परिपूर्ण होनेवाले छन्दोंका नाम 'आकृति' है। प्रस्तारसे इसकी भेद-संख्या ४१९४३०४ होती है। इसके एक भेद 'भद्रक'का उदाहरण यहाँ दिया जाता है। भद्रकके प्रत्येक पादमें भगण, रगण, नगण, रगण, नगण, रगण, नगण, एक गुरु होते हैं। दस, बारह अक्षरोंपर विराम होता है।

उदाहरण—

5 11 5 15 111 5 15 1 11 5 15 111 5

भद्रकगीतिभिः सकृदपि स्तुवन्ति भव ये भवन्तमभवं भक्तिभरावनग्रशिरसः प्रणम्य तव पादयोः सुकृतिनः ।

ते परमेश्वरस्य पदवीमवाप्य सुखमाप्नुवन्ति विपुलं मर्त्यभुवं स्पृशन्ति न पुनर्मनोहरसुरावलीपरिवृता ॥

(२३) तेईस-तेईस अक्षरोंके चार-चरणोंसे सिद्ध होनेवाले छन्दसमुदायको 'विकृति' कहते हैं। प्रस्तारसे इसके ३८८६०८ भेद होते हैं। इनमें 'अश्वललित' और 'मत्ताक्रीडा' नामक दो छन्दोंके उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं। प्रत्येक पादमें नगण, जगण, भगण, जगण, भगण, जगण, भगण, जगण, भगण, १ लघु १ गुरु होनेसे 'अश्वललित' छन्द होता है।

उदाहरण—

111 15 1115 15 111 5 15 1115

पवनविधूतवीचिचपलं विलोकयति जीवितं तनुभृतं वपुरपि हीयमानमनिशं जरावनितया वशीकृतमिदम् ।

सपदि निपीडनव्यतिकरं यमादिव नराधिपान्रपशुः परवनितामवेक्ष्य कुरुते तथापि हतबुद्ध्रश्वललितम् ॥

'मत्ताक्रीडा' (में २ मगण, १ तगण, ४ नगण, १ लघु, १ गुरु होते हैं। आठ और पंद्रह अक्षरोंपर विराम होता है।)

उदाहरण—

55 55 5555 111111111115

वन्दे देवं श्रीगोविन्दं प्रणयपरवशमतिकरुणहृदयं मात्रा बद्धं दाप्रा साम्ना स्तुतमपि सुतमिव निजमिह सभयम् ।

हन्तुं याऽगात्स्यै मातुर्वृत्तरद्वलनिजगतिविमलां गा गोपीर्णोपान् योऽगोपायदिव विधूतगिरिरुपच्चितघनतः ॥

(२४) चौबीस-चौबीस अक्षरोंके चार चरणोंसे जो छन्द बनते हैं, उनका नाम 'संकृति' है। प्रस्तारसे इसके १६७७७२१६ भेद होते हैं। इनमें 'तन्वी' नामक छन्दका उदाहरण दिया जाता है। उसमें भगण, तगण, नगण, सगण, २ भगण, नगण, यगण होते हैं। ५, ७, १२ अक्षरोंपर विराम होता है।

उदाहरण—

5 1 155 11111 5 5 115 1 111 11 55

नाथ तवाहं तव पदकमलं सेवितुमेव मनसि मम कामो नाम सुधासोदरमतिमधुरं मे रसना रसयतु नितरां वै ।

प्रेमिजना ये प्रभुगुणरसिकास्तेषु सदैव भवतु मम वासो देव दयां दर्शय वस हृदये त्वां न विनेह जगति मम बन्धुः ॥

(२५) पच्चीस-पच्चीस अक्षरोंके चार पादोंसे सम्पन्न होनेवाले छन्दोंको 'अतिकृति' या 'अभिकृति' कहते हैं। प्रस्तारसे इनके ३३५५३४३२ भेद होते हैं। इनमेंसे एक भेदका नाम 'क्रौञ्चपदा' है। उसके प्रत्येक चरणमें भगण, मगण, सगण, भगण, ४ नगण तथा १ गुरु होते हैं। ५, ५, ८, ७ अक्षरोंपर विराम होता है।

उदाहरण—

5 11 55 5 11 55 11 11111115

माधव भक्तिं देह्विभक्तिं तव चरणयुगलशरणमुपगतः संहर पापं दर्शिततापं निजगुणगणरतिमुपनय नितराम् ।

मोहन रूपं रम्यमनूपं प्रकट्य शमय विषयविषमनिशं वादय वंशी मानसदंशी तिमिनिभद्वदयविहितवरवडिशाम् ॥

(२६) छब्बीस-छब्बीस अक्षरोंके चार चरणोंसे जो छन्द बनते हैं, उनकी जातिवाचक संज्ञा 'उत्कृति' है। प्रस्तारसे इसके ६७१०८८६४ भेद होते हैं। इनमेंसे दो भेद बताये जाते हैं। एकका नाम 'भुजङ्गविजूम्भित' और दूसरेका 'अपवाह' है।

'भुजङ्गविजूम्भित'— (में २ मगण, १ तगण, ३ नगण, १ रगण, १ सगण, १ लघु, १ गुरु होते हैं। ८, ११, ७ अक्षरोंपर विराम होता है।)

संज्ञाएँ हैं, प्रस्तारसे^१ इनके अनेक भेद होते हैं। सम्पूर्ण गुरु अक्षरवाले पादमें प्रथम गुरुके नीचे लघु लिखना चाहिये, फिर दाहिनी ओरकी पट्टिकों को ऊपरकी पट्टिके समान भर दे। तात्पर्य यह कि शेष स्थानोंमें ऊपरके अनुसार गुरु-लघु आदि भरे। इस क्रियाको बराबर करता जाय। इसे करते हुए ऊनस्थान अर्थात् बायीं ओरके शेष स्थानमें गुरु ही लिखे। यह क्रिया तबतक करता रहे, जबतक कि सभी लघु अक्षरोंकी प्राप्ति न हो जाय। इसे 'प्रस्तार' कहा गया है^२ ॥ १४-१५ ॥ (प्रस्तार नष्ट हो जानेपर यदि उसके किसी भेदका स्वरूप जानना हो तो उसे जाननेकी विधिको 'नष्ट प्रत्यय' कहते हैं।) यदि नष्ट अङ्क सम है

तो उसके लिये एक लघु लिखे और उसका आधा भी यदि सम हो तो उसके लिये पुनः एक लघु लिखे। यदि नष्ट अङ्क विषम हो तो उसके लिये एक गुरु लिखे और उसमें एक जोड़कर आधा करे। वह आधा भी यदि विषम हो तो उसके लिये भी गुरु ही लिखे। यह क्रिया तबतक करता रहे, जबतक अभीष्ट अक्षरोंका पाद प्राप्त न हो जाय^३। (प्रस्तारके किसी भेदका स्वरूप तो ज्ञात हो; किंतु संख्या ज्ञात न हो तो उसके जाननेकी विधिको 'उद्दिष्ट' कहते हैं।) उद्दिष्टमें गुरु-लघु-बोधक जो चिह्न हों, उनमें पहले अक्षरपर एक लिखे और क्रमशः दूसरे अक्षरोंपर दूने अङ्क लिखता जाय; फिर लघुके ऊपर जो अङ्क हों,

उदाहरण—

SSSSSSSSS 1111111115 15 15

हेलोदञ्चन्यञ्चत्पादप्रकटविकटनटनभरो रणत्करतालकः चारुप्रेष्ठच्छूडाबर्हः श्रुतिरलनवकिसलयस्तरञ्जितहारधृत्। त्रस्यनागत्रीभिर्भक्त्या मुकुलितकरकमलयुग्मं कृतस्तुतिरच्युतः पायाद् वशिष्ठदन् कालिन्दीहृदकृतनिजवसतिबृहद् भुजङ्गविजृम्भितम्॥ 'अपवाह' (-के प्रत्येक पादमें १ मण, ६ नण, १ सगण, २ गुरु होते हैं। १, ६, ६, ५ अक्षरोंपर विराम होता है।)

उदाहरण—

SSS 11111111111115 SSS

श्रीकण्ठं त्रिपुरदहनमृतकिरणशकललितशिरसं रुद्रं भूतेशं हतमुनिमखमखिलभुवननमितचरणयुगमीशानम्। सर्वज्ञं वृषभगमनमहिपतिकृतवलयरुचिकरमाराध्यं तं बन्दे भवभयभिदमभिमतफलवितरणगुरुमुमया युक्तम्॥

१. छन्दःशास्त्रमें छः प्रत्यय होते हैं—१- प्रस्तार, २- नष्ट, ३- उद्दिष्ट, ४- एकद्वयादिलग्रन्थिया, ५- संख्यान और छठा अध्ययोग। प्रस्तारका अर्थ फैलाव; अमुक संख्यायुक्त अक्षरोंसे बने हुए पादवाले छन्दके कितने और कौन-कौनसे भेद हो सकते हैं? इस प्रश्नका समाधान करनेके लिये जो क्रिया की जाती है, उसका नाम प्रस्तार है। नष्ट आदिका स्वरूप आगे बतायेंगे।

२. उदाहरणके लिये चार अक्षरके पादवाले छन्दका मूलोक रीतिसे प्रस्तार अङ्कित किया जाता है—

१—SSSS
२—1SSS
३—5 1SS
४—11SS
५—55 15
६—15 15
७—5 115
८—1113

९—SSS 1
१०—15 1
११—5 15 1
१२—115 1
१३—55 11
१४—15 11
१५—5 111
१६—1111

३. जैसे किसीके द्वारा पूछा जाय कि चार अक्षरके पादवाले छन्दका छठा भेद क्या है? तो इसमें छठा अङ्क सम है; अतः उसके लिये प्रथम एक लघु होगा (१), फिर छः का आधा करनेपर तीन विषम अङ्क हुआ, अतः उसके लिये एक गुरु (५) लिखा। अब तीनमें एक जोड़कर आधा किया तो दो सम अङ्क हुआ, अतः उसके लिये फिर एक लघु (१) लिखा। उस दोका आधा किया तो एक विषम अङ्क हुआ; अतः उसके लिये एक गुरु (५) लिखा। सब मिलकर (१५ १५) ऐसा हुआ। अतः चार अक्षरवाले छन्दके छठे भेदमें प्रत्येक पादमें प्रथम अक्षर लघु, दूसरा गुरु, तीसरा लघु और चौथा गुरु होगा।

उन्हें जोड़कर उसमें एक और मिला दे तथा वही उद्दिष्ट स्वरूपकी संख्या बतावे। ऐसा पुराणवेत्ता विद्वानोंका कथन है^१। (अमुक छन्दके प्रस्तारमें एक गुरुवाले या एक लघुवाले, दो लघुवाले या दो गुरुवाले, तीन लघुवाले या तीन गुरुवाले भेद कितने हो सकते हैं; यह पृथक्-पृथक् जाननेकी जो प्रक्रिया है, उसे 'एकद्वयादिलगक्रिया' कहते हैं।) छन्दके अक्षरोंकी जो संख्या हो, उसमें एक अधिक जोड़कर उतने ही एकाङ्क ऊपर-नीचेके क्रमसे लिखे। उन एकाङ्कोंको ऊपरकी अन्य पद्धतिमें जोड़ दे; किंतु अन्त्यके समीपवर्ती अङ्कोंको न जोड़े और ऊपरके एक-एक अङ्कको त्याग दे। ऊपरके सर्व गुरुवाले पहले भेदसे नीचेतक गिने। इस रीतिसे प्रथम भेद सर्वगुरु, दूसरा भेद एक गुरु और तीसरा भेद द्विगुरु होता है। इसी तरह नीचेसे ऊपरकी ओर ध्यान देनेसे सबसे नीचेका सर्वलघु, उसके ऊपरका एक लघु, तीसरा भेद

द्विलघु इत्यादि होता है। इस प्रकार 'एकद्वयादिलगक्रिया' जाननी चाहिये^२ लगक्रियाके अङ्कोंको जोड़ देनेसे उस छन्दके प्रस्तारकी पूरी संख्या ज्ञात हो जाती है। यही संख्यान प्रत्यय कहलाता है, अथवा उद्दिष्टपर दिये हुए अङ्कोंको जोड़कर उसमें एकका योग कर दिया जाय तो वह भी प्रस्तारकी पूरी संख्याको प्रकट कर देता है^३। छन्दके प्रस्तारको अङ्कित करनेके लिये जो स्थानका नियमन किया जाता है, उसे अध्ययोग प्रत्यय कहते हैं। प्रस्तारकी जो संख्या है, उसे दूना करके एक घटा देनेसे जो अङ्क आता है, उतने ही अंगुलका उसके प्रस्तारके लिये अध्या या स्थान कहा गया है॥ १६—२०॥ मुने! यह छन्दोंका किंचित् लक्षण बताया गया है। प्रस्तारद्वारा प्रतिपादित होनेवाले उनके भेद-प्रभेदोंकी संख्या अनन्त है॥ २१॥

(पूर्वभाग द्वितीय पाद अध्याय ५७)

१—जैसे कोई पूछे कि चार अक्षरके पादवाले छन्दमें जहाँ प्रथम तीन गुरु और अन्तमें एक लघु हो तो उसकी संख्या क्या है अर्थात् वह उस छन्दका कौन-सा भेद है? इसको जाननेके लिये पहले उद्दिष्टके गुरु-लघुको निप्राङ्कित रीतिसे अङ्कित करके उनके ऊपर क्रमशः द्विगुण अङ्क स्थापित करे—

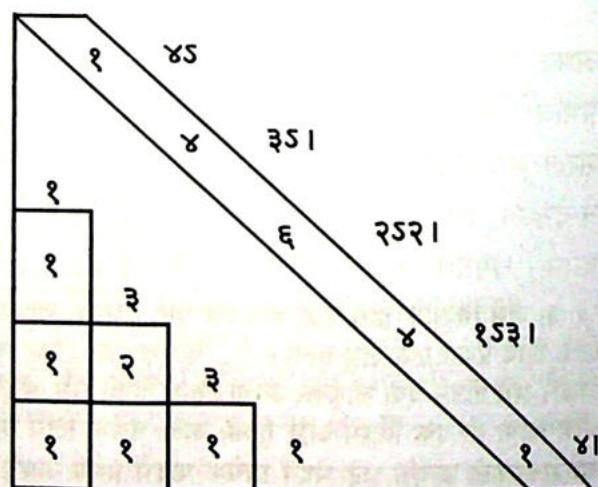
१	२	४	८
५	५	५	

तत्पश्चात् केवल लघुके अङ्क ८ में एक और जोड़ दिया गया तो ९ हुआ। यही उद्दिष्टकी संख्या है। अर्थात् वह उस छन्दका नवाँ भेद है।

२. निप्राङ्कित कोष्ठकसे यह बात स्पष्ट हो जाती है—

अर्थात् चार अक्षरवाले छन्दके प्रस्तारमें ४ लघुवाला

१ भेद, एक गुरु तीन लघुवाला ४ भेद, २ गुरु और दो लघुवाला ६ भेद, तीन गुरु और १ लघुवाला ४ भेद और चार गुरुवाला १ भेद होगा।



३. यथा—चार अक्षरके प्रस्तारमें लगक्रियाके अङ्क $1+4+6+8+1$ होते हैं, इनका योग सोलह होता है। अतः चार अक्षरके पादवाले छन्दके सोलह भेद होंगे अथवा उद्दिष्टके अङ्क हैं $1+2+4+8$ इसका योग हुआ १५, इनमें एकका योग करनेसे प्रस्तार संख्या १६ प्रकट हो जाती है।

शुकदेवजीका मिथिलागमन, राजभवनमें युवतियोंद्वारा उनकी सेवा, राजा जनकके द्वारा शुकदेवजीका सत्कार और शुकदेवजीके साथ उनका मोक्षविषयक संवाद

श्रीसनन्दनजीने कहा—नारदजी! एक दिन मोक्ष-धर्मका ही विचार करते हुए शुकदेवजी पिता व्यासदेवके समीप गये और उन्हें प्रणाम करके बोले—‘भगवन्! आप मोक्ष-धर्ममें निपुण हैं, अतः मुझे ऐसा उपदेश दीजिये, जिससे मेरे मनको परम शान्ति प्राप्त हो।’ मुने! पुत्रकी यह बात सुनकर महर्षि व्यासने उनसे कहा—‘वत्स! नाना प्रकारके धर्मोंका भी तत्त्व समझो और मोक्षशास्त्रका अध्ययन करो।’ तब शुकने पिताकी आज्ञासे सम्पूर्ण योगशास्त्र और कपिलप्रोक्त सांख्यशास्त्रका अध्ययन किया। जब व्यासजीने समझ लिया कि मेरा पुत्र ब्रह्मतेजसे सम्पन्न, शक्तिमान् तथा मोक्षशास्त्रमें कुशल हो गया है, तब उन्होंने कहा—‘बेटा! अब तुम मिथिलानरेश जनकके समीप जाओ, राजा जनक तुम्हें मोक्षतत्त्व पूर्णरूपसे बतलायेंगे।’ पिताके आदेशसे शुकदेवजी धर्मकी निष्ठा और मोक्षके परम आश्रयके सम्बन्धमें प्रश्न करनेके लिये मिथिलापति राजा जनकके पास जाने लगे। जाते समय व्यासजीने फिर कहा—‘वत्स! जिस मार्गमें साधारण मनुष्य चलते हों, उसीसे तुम भी यात्रा करना। मनमें विस्मय अथवा अभिमानको स्थान न देना। अपनी योगशक्तिके प्रभावसे अन्तरिक्षमार्गद्वारा कदापि यात्रा न करना। सरल भावसे ही वहाँ जाना। मार्गमें सुख-सुविधा न देखना, विशेष व्यक्तियों या स्थानोंकी खोज न करना; क्योंकि वे आसक्ति बढ़ानेवाले होते हैं। ‘राजा जनक शिष्य और यजमान हैं’—ऐसा समझकर उनके सामने अहंकार न प्रकट करना। उनके वशमें रहना। वे तुम्हारे संदेहका निवारण करेंगे। राजा जनक धर्ममें निपुण तथा मोक्षशास्त्रमें

कुशल हैं। वे मेरे शिष्य हैं, तो भी तुम्हारे लिये जो आज्ञा दें, उसका निस्संदिग्ध होकर पालन करना।’

पिताके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा शुकदेव मुनि मिथिला गये। यद्यपि समुद्रोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वीको वे आकाशमार्गसे ही लाँघ सकते थे, तथापि पैदल ही गये। महामुनि शुक विदेहनगरमें पहुँचे। पहले राजद्वारपर पहुँचते ही द्वारपालोंने उन्हें भीतर जानेसे रोका; किंतु इससे उनके मनमें कोई ग्लानि नहीं हुई। नारदजी! महायोगी शुक भूख-प्याससे रहित हो वहाँ धूपमें जा बैठे और ध्यानमें स्थित हो गये। उन द्वारपालोंमेंसे एकको अपने व्यवहारपर बड़ा शोक हुआ। उसने देखा, शुकदेवजी दोपहरके सूर्यकी भाँति यहाँ स्थित हो रहे हैं, तब हाथ जोड़कर प्रणाम किया और विधिपूर्वक उनका पूजन एवं सत्कार करके राजमहलकी दूसरी कक्षामें उनका प्रवेश कराया। वहाँ चैत्ररथ वनके समान एक विशाल उपवन था, जिसका सम्बन्ध अन्तःपुरसे था। वह वन बड़ा रमणीय था। द्वारपालने शुकदेवजीको सारा उपवन दिखाकर एक सुन्दर आसनपर बिठाया तथा राजा जनकको इसकी सूचना दी। मुनिश्रेष्ठ! राजाने जब सुना कि शुकदेवजी मेरे पास आये हैं तो उनके हार्दिक भावको समझनेके उद्देश्यसे उनकी सेवाके लिये बहुत-सी युवतियोंको नियुक्त किया। उन सबके वेश बड़े मनोहर थे। वे सब-की-सब तरुणी और देखनेमें मनको प्रिय लगनेवाली थीं। उन्होंने लाल रंगके महीन एवं रंगीन वस्त्र धारण कर रखे थे। उनके अङ्गोंमें तपाये हुए शुद्ध सुवर्णके आभूषण चमक



रहे थे। वे बातचीतमें बड़ी चतुर तथा समस्त कलाओंमें कुशल थीं। उनकी संख्या पचाससे अधिक थी। उन सबने शुकदेवजीके लिये पाद्य, अर्घ्य आदि प्रस्तुत किये तथा देश और कालके अनुसार प्राप्त हुआ उत्तम अन्न भोजन कराकर उन्हें तृप्त किया। नारदजी! जब वे भोजन कर चुके तो उनमेंसे एक-एक युवतीने शुकदेवजीको

अपने साथ लेकर उन्हें वह अन्तःपुरका बन दिखलाया। फिर मनके भावोंको समझनेवाली वे सब युवतियाँ हँसती, गाती हुई उदारचित्तवाले शुकदेव मुनिकी परिचर्या करने लगीं। शुकदेवमुनिका अन्तःकरण परम शुद्ध था। वे क्रोध और इन्द्रियोंको जीत चुके थे तथा निरन्तर ध्यानमें ही स्थित रहते थे। उनके मनमें न हर्ष होता था, न क्रोध। संध्याका समय होनेपर शुकदेवजीने हाथ-पैर धोकर संध्योपासना की। फिर वे पवित्र आसनपर बैठे और उसी मोक्षधर्मके विषयमें विचार करने लगे। रातके पहले पहरमें वे ध्यान लगाये बैठे रहे। दूसरे और तीसरे पहरमें भगवान् शुकने न्यायपूर्वक निद्राको स्वीकार किया। फिर प्रातःकाल ब्रह्मवेलामें ही उठकर उन्होंने शौच-स्नान किया। तदनन्तर स्त्रियोंसे घिरे होनेपर भी परम बुद्धिमान् शुक पुनः ध्यानमें ही लग गये। नारदजी! इसी विधिसे उन्होंने वह शेष दिन और सम्पूर्ण रात्रि राजकुलमें व्यतीत की।

द्विजश्रेष्ठ! तदनन्तर मन्त्रियोंसहित राजा जनक पुरोहित तथा अन्तःपुरकी स्त्रियोंको आगे करके मस्तकपर अर्घ्यपात्र लिये गुरुपुत्र शुकदेवजीके समीप गये। उन्होंने सम्पूर्ण रक्तोंसे विभूषित एक महान् सिंहासन लेकर गुरुपुत्र शुकदेवजीको अर्पित किया। व्यासनन्दन शुक जब उस आसनपर विराजमान हुए, तब राजाने पहले उन्हें पाद्य अर्पण किया, उसके बाद अर्घ्यसहित गाय निवेदन की। महातेजस्वी द्विजोत्तम शुकने मन्त्रोच्चारणपूर्वक की हुई उस पूजाको स्वीकार करके राजाका कुशल-मङ्गल पूछा। राजाका हृदय और परिजन सभी उदार थे। वे भी गुरुपुत्रसे कुशल-समाचार बताकर उनकी आज्ञा ले भूमिपर बैठे। तत्पश्चात् व्यासनन्दन शुकसे कुशल-मङ्गल पूछकर विधिज्ञ राजाने

प्रश्न किया—‘ब्रह्मन्! किसलिये आपका यहाँ
शुभागमन हुआ है?’

शुकदेवजी बोले—राजन्! आपका कल्याण हो! पिताजीने मुझसे कहा है कि ‘मेरे यजमान विदेहराज जनक मोक्ष-धर्मके तत्त्वको जाननेमें कुशल हैं। तुम उन्हींके पास जाओ। तुम्हारे हृदयमें प्रवृत्ति या निवृत्तिके विषयमें जो भी संदेह होगा, उसका वे शीघ्र ही निवारण कर देंगे। इसमें संशय नहीं है।’ अतः मैं पिताजीकी आज्ञासे आपके समीप अपना हार्दिक संशय मिटानेके लिये यहाँ आया हूँ। आप धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ हैं। मुझे यथावत् उपदेश देनेकी कृपा करें। ब्राह्मणका इस जगत्‌में क्या कर्तव्य है? तथा मोक्षका स्वरूप कैसा है? उसे ज्ञान या तपस्या किस साधनसे प्राप्त करना चाहिये?

राजा जनकने कहा—ब्रह्मन्! इस जगत्‌में जन्मसे लेकर जीवनपर्यन्त ब्राह्मणका जो कर्तव्य है, वह बतलाता हूँ, सुनो—तात! उपनयन-संस्कारके पश्चात् ब्राह्मण-बालकको वेदोंके स्वाध्यायमें लग जाना चाहिये। वह तपस्या, गुरुसेवा और ब्रह्मचर्य-पालनमें संलग्न रहे। होम तथा श्राद्ध-तर्पणद्वारा देवताओं और पितरोंके ऋणसे मुक्त हो। किसीकी निन्दा न करे। सम्पूर्ण वेदोंका नियमपूर्वक अध्ययन पूरा करके गुरुको दक्षिणा दे, फिर उनकी आज्ञा लेकर द्विजबालक अपने घरको लौटे। समावर्तन-संस्कारके पश्चात् गुरुकुलसे लौटा हुआ ब्राह्मणकुमार विवाह करके अपनी ही पत्नीमें अनुराग रखते हुए गृहस्थ-आश्रममें निवास करे। किसीके दोष न देखे। न्यायपूर्वक बर्ताव करे। अग्निकी स्थापना करके प्रतिदिन आदरपूर्वक अग्निहोत्र करे। पुत्र और पौत्रोंकी उत्पत्ति हो जानेपर वानप्रस्थ-आश्रममें रहे और पहलेकी स्थापित अग्निका ही विधिपूर्वक आहुतिद्वारा पूजन करे। वानप्रस्थीको भी अतिथि-सेवामें प्रेम

रखना चाहिये। तदनन्तर धर्मज्ञ पुरुष वनमें न्यायपूर्वक सम्पूर्ण अग्नियोंको (भावनाद्वारा) अपने भीतर ही लीन करके वीतराग हो ब्रह्मचिन्तनपरायण संन्यास-आश्रममें निवास करे और शीत, उष्ण आदि दृन्द्रोंको धैर्यपूर्वक सहन करे।

शुकदेवजीने पूछा—राजन्! यदि किसीको ब्रह्मचर्य-आश्रममें ही सनातन ज्ञान-विज्ञानकी प्राप्ति हो जाय और हृदयके राग-द्वेष आदि दृन्द्र दूर हो गये हों तो भी उसके लिये क्या शेष तीन आश्रमोंमें निवास करना अत्यन्त आवश्यक है? इस संदेहके विषयमें मैं आपसे पूछ रहा हूँ। आप बतानेकी कृपा करें।

राजा जनकने कहा—ब्रह्मन्! जैसे ज्ञान-विज्ञानके बिना मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती, उसी प्रकार सद्गुरुसे सम्बन्ध हुए बिना ज्ञानकी उपलब्धि भी नहीं होती। गुरु इस संसार-सागरसे पार उतारनेवाले हैं और उनका दिया हुआ ज्ञान नौकाके समान बताया गया है। लोककी धार्मिक मर्यादाका उच्छेद न हो और कर्मानुष्टानकी परम्पराका भी नाश न होने पावे, इसके लिये पहलेके विद्वान् चारों आश्रमोंके धर्मोंका पालन करते थे। इस प्रकार क्रमशः अनेक प्रकारके सत्कर्मोंका अनुष्टान करते हुए शुभाशुभ कर्मोंकी आसक्तिका त्याग हो जानेपर यहीं मोक्ष प्राप्त हो जाता है। अनेक जन्मोंसे सत्कर्म करते-करते जब सम्पूर्ण इन्द्रियाँ पवित्र हो जाती हैं, तब शुद्ध अन्तःकरणवाला पुरुष प्रथम आश्रममें ही उत्तम मोक्षरूप ज्ञान प्राप्त कर लेता है। उसे पाकर जब ब्रह्मचर्य-आश्रममें ही तत्त्वका साक्षात्कार एवं मुक्ति सुलभ हो जाय तब परमात्माको चाहनेवाले जीवन्मुक्त विद्वान्‌के लिये शेष तीनों आश्रमोंमें जानेकी क्या आवश्यकता है। विद्वान्‌को चाहिये कि वह राजस और तामस दोषोंका परित्याग कर दे और सत्त्विक मार्गका आश्रय लेकर बुद्धिके

द्वारा आत्माका दर्शन करे। जो सम्पूर्ण भूतोंको अपनेमें और अपनेको सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित देखता है, वह संसारमें रहकर भी उसके दोषोंसे लिप्त नहीं होता और अक्षय पदको प्राप्त कर लेता है। तात! इस विषयमें राजा ययातिकी कही हुई गाथा सुनो—

जिसे मोक्ष-शास्त्रमें निपुण विद्वान् द्विज सदा धारण किये हुए हैं, अपने भीतर ही उस आत्मज्योतिका प्रकाश है, अन्यत्र नहीं। वह ज्योति सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर समान रूपसे स्थित है। समाधिमें अपने चित्तको भलीभाँति एकाग्र करनेवाला पुरुष उसको स्वयं देख सकता है। जिससे दूसरा कोई प्राणी नहीं डरता, जो स्वयं किसी दूसरे प्राणीसे भयभीत नहीं होता तथा जो इच्छा और द्वेषसे रहित हो गया है, वह ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है। जब मनुष्य मन, वाणी और क्रियाद्वारा किसी भी प्राणीकी बुराई नहीं करता, उस समय वह ब्रह्मरूप हो जाता है। जब मोहमें डालनेवाली ईर्ष्या, काम और लोभका त्याग करके पुरुष अपने-आपको तपमें लगा देता है, उस समय उसे ब्रह्मानन्दका अनुभव होता है। जब सुनने और देखने योग्य विषयोंमें तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके ऊपर मनुष्यका समानभाव हो जाय और सुख-दुःख आदि द्वन्द्व उसके चित्तपर प्रभाव न डाल सकें, तब वह ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। जिस समय निन्दा-स्तुति, लोहा-सोना, सुख-

दुःख, सर्दी-गरमी, अर्थ-अनर्थ, प्रिय-अप्रिय तथा जीवन-मरणमें समान दृष्टि हो जाती है, उस समय मनुष्य ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है। जैसे कछुआ अपने अङ्गोंको फैलाकर फिर समेट लेता है, उसी प्रकार संन्यासीको मनके द्वारा इन्द्रियोंपर नियन्त्रण रखना चाहिये*। जिस प्रकार अन्धकारसे व्यास हुआ घर दीपकके प्रकाशसे स्पष्ट दीख पड़ता है, उसी तरह बुद्धिरूपी दीपककी सहायतासे आत्माका दर्शन हो सकता है। बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ शुकदेवजी! उपर्युक्त सारी बातें मुझे आपमें दिखायी देती हैं। इनके अतिरिक्त जो कुछ भी जानने योग्य विषय है, उसे आप ठीक-ठीक जानते हैं। ब्रह्मर्षे! मैं आपको अच्छी तरह जानता हूँ। आप अपने पिताजीकी कृपा और शिक्षाके कारण विषयोंसे परे हो गये हैं। उन्हीं महामुनि गुरुदेवकी कृपासे मुझे भी यह दिव्य विज्ञान प्राप्त हुआ है, जिससे मैं आपकी स्थितिको पहचानता हूँ। आपका विज्ञान, आपकी गति और आपका ऐश्वर्य—ये सब अधिक हैं। किंतु आपको इस बातका पता नहीं है। ब्रह्मन्! आपको ज्ञान हो चुका है और आपकी बुद्धि भी स्थिर है; साथ ही आपमें लोलुपता भी नहीं है; परंतु विशुद्ध निश्चयके बिना किसीको भी परब्रह्मकी प्राप्ति नहीं होती। आप सुख-दुःखमें कोई अन्तर नहीं समझते! आपके मनमें तनिक भी लोभ नहीं है। आपको न नाच देखनेकी

* न विभेति परो यस्मान् विभेति पराच्च यः। यश्च नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते स तु ॥
यदा भावं न कुरुते सर्वभूतेषु पापकम्। कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥
संयोज्य तपसाऽत्मानमीर्ष्यामुत्पृज्य मोहिनीम्। त्यक्त्वा कामं च लोभं च ततो ब्रह्मत्वमशनुते ॥
यदा श्रव्ये च दृश्ये च सर्वभूतेषु चाव्ययम्। समो भवति निर्द्वन्द्वो ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥
यदा स्तुतिं च निन्दां च समत्वेन च पश्यति। काञ्चनं चायसं चैव सुखदुःखे तथैव च ॥
शीतमुष्णं तथैवार्थमनर्थं प्रियमप्रियम्। जीवितं मरणं चैव ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥
प्रसार्येह यथाङ्गानि कूर्मः संहरते पुनः। तथेन्द्रियाणि मनसा संयन्तव्यानि भिक्षुणा ॥

उत्कण्ठा होती है, न गीत सुननेकी। आपका कहीं भी राग है ही नहीं। न तो बन्धुओंके प्रति आपकी आसक्ति है, न भयदायक पदार्थोंसे भय। महाभाग! मैं देखता हूँ—आपकी दृष्टिमें अपनी निन्दा और स्तुति एक-सी है। मैं तथा दूसरे मनीषी विद्वान् भी आपको अक्षय एवं अनामय पथ (मोक्षमार्ग)-पर स्थित मानते हैं। विप्रवर! इस लोकमें ब्राह्मण होनेका जो फल है और मोक्षका जो स्वरूप है, उसीमें आपकी स्थिति है।

सनन्दनजी कहते हैं—नारद! राजा जनककी यह बात सुनकर शुद्ध अन्तःकरणवाले शुकदेवजी एक दृढ़ निश्चयपर पहुँच गये और बुद्धिके द्वारा आत्माका साक्षात्कार करके उसीमें स्थित होकर कृतार्थ हो गये। उस समय उन्हें परम आनन्द और परम शान्तिका अनुभव हुआ। इसके बाद वे

हिमालय पर्वतको लक्ष्य करके चुपचाप उत्तर दिशाकी ओर चल दिये और वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने पिता व्यासजीको देखा, जो पैल आदि शिष्योंको वैदिकसंहिता पढ़ा रहे थे। शुद्ध अन्तःकरणवाले शुकदेव अपनी दिव्य प्रभासे सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे थे। उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर बड़े आदरसे पिताके चरणोंमें प्रणाम किया। तदनन्तर उदार-बुद्धि शुकने राजा जनकके साथ जो मोक्षसाधन-विषयक संवाद हुआ था, वह सब अपने पिताको बताया। उसे सुनकर वेदोंका विस्तार करनेवाले व्यासजीने हर्षोल्लासपूर्ण हृदयसे पुत्रको छातीसे लगा लिया और अपने पास बिठाया। तत्पश्चात् पैल आदि ब्राह्मण व्यासजीसे वेदोंका अध्ययन करके उस शैलशिखरसे पृथ्वीपर आये और यज्ञ कराने तथा वेद पढ़ानेके कार्यमें संलग्न हो गये।

व्यासजीका शुकदेवको अनध्यायका कारण बताते हुए 'प्रवह' आदि सात वायुओंका परिचय देना तथा सनत्कुमारका शुकको ज्ञानोपदेश

सनन्दनजी कहते हैं—नारदजी! जब पैल आदि ब्राह्मण पर्वतसे नीचे उत्तर आये, तब पुत्रसहित परम बुद्धिमान् भगवान् व्यास एकान्तमें मौनभावसे ध्यान लगाकर बैठ गये। उस समय आकाशवाणीने पुत्रसहित व्यासजीको सम्बोधित करके कहा—'वसिष्ठ-कुलमें उत्पन्न महर्षि व्यास! इस समय वेद-ध्वनि क्यों नहीं हो रही है? तुम अकेले कुछ चिन्तन करते हुए-से चुपचाप ध्यान लगाये क्यों बैठे हो? इस समय वेदोच्चारणकी ध्वनिसे रहित होकर यह पर्वत सुशोभित नहीं हो रहा है। अतः भगवन्! अपने वेदज्ञ पुत्रके साथ परम प्रसन्नचित्त हो सदा वेदोंका स्वाध्याय करो।' आकाशवाणीद्वारा उच्चारित यह वचन सुनकर व्यासजीने अपने पुत्र शुकदेवजीके साथ

वेदोंकी आवृत्ति आरम्भ कर दी। द्विजश्रेष्ठ! वे दोनों पिता-पुत्र दीर्घकालतक वेदोंका पारायण करते रहे। इसी बीचमें एक दिन समुद्री हवासे प्रेरित होकर बड़े जोरकी आँधी उठी। इसे अनध्यायका हेतु समझकर व्यासजीने पुत्रको वेदोंके स्वाध्यायसे रोक दिया। तब उन्होंने पितासे पूछा—'भगवन्! यह इतने जोरकी हवा क्यों उठी थी? वायुदेवकी यह सारी चेष्टा आप बतानेकी कृपा करें।'

शुकदेवजीकी यह बात सुनकर व्यासजी अनध्यायके निमित्तस्वरूप वायुके विषयमें इस प्रकार बोले—'बेटा! तुम्हें दिव्यदृष्टि उत्पन्न हुई है, तुम्हारा मन स्वतः निर्मल है। तुम तमोगुण तथा रजोगुणसे दूर एवं सत्यमें प्रतिष्ठित हुए हो,

अतः अपने हृदयमें वेदोंका विचार करके स्वयं ही बुद्धिद्वारा अनध्यायके कारणरूप वायुके विषयमें आलोचना करो।



पृथ्वी और अन्तरिक्षमें जो वायु चलती है, उसके सात मार्ग हैं। जो धूम तथा गरमीसे उत्पन्न बादल-समूहों और ओलोंको इधर-से-उधर ले जाता है, वह प्रथम मार्गमें प्रवाहित होनेवाला 'प्रवह' नामक प्रथम वायु है। जो आकाशमें रसकी मात्राओं और बिजली आदिकी उत्पत्तिके लिये प्रकट होता है, वह महान् तेजसे सम्पन्न द्वितीय वायु 'आवह' नामसे प्रसिद्ध है और बड़ी भारी आवाजके साथ बहता है। जो सदा सोम-सूर्य आदि ज्योतिर्मय ग्रहोंका उदय एवं उद्धव करता है, मनीषी पुरुष शरीरके भीतर जिसे उदान कहते हैं, जो चारों समुद्रोंसे जल ग्रहण करता है और उसे ऊपर उठाकर 'जीमूतों' को देता है तथा जीमूतोंको जलसे संयुक्त करके उन्हें 'पर्जन्य' के हवाले करता है, वह महान् वायु 'उद्धव' कहलाता है। जिससे प्रेरित होकर अनेक प्रकारके नीले महामेघ घटा बाँधकर जल बरसाना आरम्भ करते हैं तथा जो देवताओंके आकाशमार्गसे

जानेवाले विमानोंको स्वयं ही वहन करता है, वह पर्वतोंका मान मर्दन करनेवाला चतुर्थ वायु 'संवह' नामसे प्रसिद्ध है। जो रुक्षभावसे वेगपूर्वक बहकर वृक्षोंको तोड़ता और उखाड़ फेंकता है तथा जिसके द्वारा संगठित हुए प्रलयकालीन मेघ 'बलाहक' संज्ञा धारण करते हैं, जिसका संचरण भयानक उत्पात लानेवाला है तथा जो अपने साथ मेघोंकी घटाएँ लिये चलता है, वह अत्यन्त वेगवान् पञ्चम वायु 'विवह' कहा गया है। जिसके आधारपर आकाशमें दिव्य जल प्रवाहित होते हैं, जो आकाशगङ्गाके पवित्र जलको धारण करके स्थित है और जिसके द्वारा दूरसे ही प्रतिहत होकर सहस्रों किरणोंके उत्पत्तिस्थान सूर्यदेव एक ही किरणसे युक्त प्रतीत होते हैं, जिनसे यह पृथ्वी प्रकाशित होती है तथा अमृतकी दिव्यनिधि चन्द्रमाका भी जिससे पोषण होता है, उस छठे वायुका नाम 'परिवह' है, वह सम्पूर्ण विजयशील तत्त्वोंमें श्रेष्ठ है। जो अन्तकालमें सम्पूर्ण प्राणियोंके प्राणोंको शरीरसे निकालता है, जिसके इस प्राणनिष्कासनरूप मार्गका मृत्यु तथा वैवस्वत यम अनुगमन मात्र करते हैं, सदा अध्यात्मचिन्तनमें लगी हुई शान्त बुद्धिके द्वारा भलीभाँति विचार या अनुसंधान करनेवाले ध्यानाभ्यासपरायण पुरुषोंको जो अमृतत्व देनेमें समर्थ है, जिसमें स्थित होकर प्रजापति दक्षके दस हजार पुत्र बड़े वेगसे सम्पूर्ण दिशाओंके अन्तमें पहुँच गये तथा जिससे वृष्टिका जल तिरोहित होकर वर्षा बंद हो जाती है, वह सर्वश्रेष्ठ सप्तम वायु 'परावह' नामसे प्रसिद्ध है। उसका अतिक्रमण करना सबके लिये कठिन है। इस प्रकार ये सात मरुदण्ड दितिके परम अद्भुत पुत्र हैं। इनकी सर्वत्र गति है। ये सब जगह विचरते रहते हैं; किंतु बड़े आश्चर्यकी बात है कि उस वायुके वेगसे आज यह पर्वतोंमें श्रेष्ठ

हिमालय भी सहसा काँप उठा है। बेटा! यह वायु भगवान् विष्णुका निःश्वास है। जब कभी सहसा वह निःश्वास वेगसे निकल पड़ता है, उस समय सारा जगत् व्यथित हो उठता है। इसलिये ब्रह्मवेत्ता पुरुष प्रचण्ड वायु (आँधी) चलनेपर वेदका पाठ नहीं करते हैं। वेद भी भगवान् का निःश्वास ही है। उस समय वेद-पाठ करनेपर वायुसे वायुको क्षोभ प्राप्त होता है।

अनध्यायके विषयमें यह बात कहकर पराशरनन्दन भगवान् व्यास अपने पुत्र शुकदेवसे बोले—‘अब तुम वेद-पाठ करो।’ यों कहकर वे आकाशगङ्गाके तटपर गये। जब व्यासजी स्नान करने चले गये, तब ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ शुकदेवजी वेदोंका स्वाध्याय करने लगे। वे वेद और वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् थे। नारदजी! व्यासपुत्र शुकदेवजी जब स्वाध्यायमें लगे हुए थे, उसी समय वहाँ भगवान् सनत्कुमार एकान्तमें उनके पास आये^१। व्यासनन्दन शुकने ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारजीका उठकर स्वागत-सत्कार किया। विप्रेन्द! तत्पश्चात् ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सनत्कुमारजीने शुकदेवजीसे कहा—‘महाभाग! महातेजस्वी व्यासपुत्र! क्या कर रहे हो?’

शुकदेवजी बोले—ब्रह्मकुमार! इस समय मैं वेदोंके स्वाध्यायमें लगा हूँ। मेरे किसी अज्ञात पुण्यके फलसे आपका दर्शन प्राप्त हुआ है। अतः महाभाग! मैं आपसे किसी ऐसे तत्त्वके विषयमें पूछना चाहता हूँ जो मोक्षरूपी पुरुषार्थका साधक हो। अतः आप कृपापूर्वक बतावें, जिससे मुझे भी उसका ज्ञान हो।

१. यहाँ सनत्कुमारजीने शुकदेवजीसे मिलकर उनको जो उपदेश दिया है, वह या तो जनकके उपदेश देनेके पूर्वका प्रसंग समझना चाहिये अथवा ऐसा समझना चाहिये कि यह उपदेश सनत्कुमारजीने संसारके हितके लिये शुकदेवजीको निमित्त बनाकर दिया है।

२. नित्यं क्रोधात्तपो रक्षेच्छ्यं रक्षेच्च मत्सरात् । विद्यां मानावमानाभ्यामात्मानं तु प्रमादतः ॥
आनृशंस्यं परोः धर्मः क्षमा च परमं बलम् । आत्मज्ञानं परं ज्ञानं सत्यं हि परमं हितम् ॥

सनत्कुमारजीने कहा—ब्रह्मन्! विद्याके समान कोई नेत्र नहीं है, सत्यके तुल्य कोई तपस्या नहीं है, रागके समान कोई दुःख नहीं है और त्यागके सदृश कोई सुख नहीं है। पाप-कर्मसे दूर रहना, सदा पुण्यका सञ्चय करते रहना, साधु पुरुषोंके बर्ताविको अपनाना और उत्तम सदाचारका पालन करना—यह सर्वोत्तम श्रेयका साधन है। जहाँ सुखका नाम भी नहीं है, ऐसे मानव-शरीरको पाकर जो विषयोंमें आसक्त होता है, वह मोहमें डूब जाता है। विषयोंका संयोग दुःखरूप है, वह कभी दुःखसे छुटकारा नहीं दिला सकता। आसक्त मनुष्यकी बुद्धि चञ्चल हो जाती है और मोहजालका विस्तार करनेवाली होती है। जो उस मोहजालसे घिर जाता है, वह इस लोक और परलोकमें भी दुःखका ही भागी होता है। जो अपना कल्याण चाहता हो, उसे सभी उपायोंसे काम और क्रोधको काबूमें करना चाहिये, क्योंकि वे दोनों दोष मनुष्यके श्रेयका विनाश करनेके लिये उद्यत रहते हैं। मनुष्यको चाहिये कि तपको क्रोधसे, सम्पत्तिको डाहसे, विद्याको मान-अपमानसे और अपनेको प्रमादसे बचावे। क्रूरस्वभावका परित्याग सबसे बड़ा धर्म है। क्षमा सबसे महान् बल है। आत्मज्ञान सर्वोत्तम ज्ञान है और सत्य ही सबसे बढ़कर हितका साधन है। सत्य बोलना सबसे श्रेष्ठ है, किंतु हितकारक बात कहना सत्यसे भी बढ़कर है। जिससे प्राणियोंका अत्यन्त हित होता हो, उसीको मैं सत्य मानता हूँ। जो नये-नये कर्म आरम्भ करनेका संकल्प छोड़ चुका है, जिसके मनमें कोई कामना नहीं है, जो

किसी वस्तुका संग्रह नहीं करता तथा जिसने सब कुछ त्याग दिया है, वही विद्वान् है और वही पण्डित है। जो अपने वशमें की हुई इन्द्रियोंके द्वारा अनासक्त भावसे विषयोंका अनुभव करता है, जिसके अन्तःकरणमें सदा शान्ति विराजती है, जो निर्विकार एवं एकाग्रचित्त है तथा जो आत्मीय कहलानेवाले शरीर और इन्द्रियोंके साथ रहकर भी उनसे एकाकार न होकर विलग-सा ही रहता है, वह सब बन्धनोंसे छूटकर शीघ्र ही परम कल्याण प्राप्त कर लेता है। मुने! जिसकी किसी भी प्राणीकी ओर दृष्टि नहीं जाती, जो किसीका स्पर्श तथा किसीसे बातचीत नहीं करता, उसे महान् श्रेयकी प्राप्ति होती है। किसी भी जीवकी हिंसा न करे। सब प्राणियोंके साथ मित्रतापूर्ण बर्ताव करे। इस जन्म (अथवा शरीर)-को लेकर किसीके साथ वैरभाव न करे। जो आत्मतत्त्वका ज्ञाता तथा मनको वशमें रखनेवाला है, उसे चाहिये कि किसी भी वस्तुका संग्रह न करे। मनमें पूर्ण संतोष रखे। कामना तथा चपलताको त्याग दे। इससे परम कल्याणकी सिद्धि होती है। जिन्होंने भोगोंका परित्याग कर दिया है, वे कभी शोकमें नहीं पड़ते, इसलिये प्रत्येक मनुष्यको भोगासक्तिका त्याग करना चाहिये। जो किसीसे भी पराजित न होनेवाले परमात्माको जीतना चाहता हो, उसे तपस्वी, जितेन्द्रिय, मननशील, संयतचित्त तथा सम्पूर्ण विषयोंमें अनासक्त होना चाहिये। जो ब्राह्मण त्रिगुणात्मक विषयोंमें आसक्त न होकर सदा एकान्तवास करता है, वह बहुत शीघ्र सर्वोत्तम सुख (मोक्ष) प्राप्त कर लेता है। मुने! जो मैथुनमें सुख समझनेवाले प्राणियोंके बीचमें रहकर भी (स्त्रियोंसे रहित) अकेले रहनेमें ही आनन्द मानता है, उसे ज्ञानानन्दसे तृप्त समझना चाहिये। जो ज्ञानानन्दसे पूर्णतः तृप्त है, वह शोकमें नहीं पड़ता। जीव सदा कर्मोंके

अधीन रहता है, वह शुभ कर्मोंसे देवता होता है, शुभ और अशुभ दोनोंके आचरणसे मनुष्ययोनिमें जन्म पाता है तथा केवल अशुभ कर्मोंसे पशु-पक्षी आदि नीच योनियोंमें जन्म ग्रहण करता है। उन-उन योनियोंमें जीवको सदा जरा-मृत्यु तथा नाना प्रकारके दुःखोंका शिकार होना पड़ता है। इस प्रकार संसारमें जन्म लेनेवाला प्रत्येक प्राणी संतापकी आगमें पकाया जाता है।

यहाँ विभिन्न वस्तुओंके संग्रह-परिग्रहकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि संग्रहसे महान् दोष प्रकट होता है। रेशमका कीड़ा अपने संग्रहके कारण ही बन्धनमें पड़ता है। स्त्री, पुत्र आदि कुटुम्बमें आसक्त रहनेवाले जीव उसी प्रकार कष्ट पाते हैं, जैसे जंगलके बूढ़े हाथी तालाबके दलदलमें फँसकर दुःख भोगते हैं। जैसे महान् जालमें फँसकर पानीके बाहर आये हुए मत्स्य तड़पते हैं, उसी प्रकार स्नेह-जालमें फँसकर अत्यन्त कष्ट उठाते हुए इन प्राणियोंकी ओर दृष्टिपात करो। कुटुम्ब, पुत्र, स्त्री, शरीर और द्रव्यका संग्रह, यह सब कुछ पराया है, सब अनित्य है। यहाँ अपना क्या है? केवल पुण्य और पाप। अर्थ (परमात्मा)-की प्राप्तिके लिये विद्या, कर्म, पवित्रता और अत्यन्त विस्तृत ज्ञानका सहारा लिया जाता है। जब अर्थकी सिद्धि (परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है तो मनुष्य मुक्त हो जाता है। गाँवमें रहनेवाले मनुष्यकी विषयोंके प्रति जो आसक्ति होती है, वह उसे बाँधनेवाली रस्सीके समान है। पुण्यात्मा पुरुष उस रस्सीको काटकर आगे परमार्थके पथपर बढ़ जाते हैं; परंतु पापी जीव उसे नहीं काट पाते। यह संसार एक नदीके समान है। रूप इसका किनारा, मन स्रोत, स्पर्श द्वीप और रस ही प्रवाह है। गन्ध इस नदीका कीचड़, शब्द जल और स्वर्गरूपी दुर्गम घाट है। इस नदीको मनुष्य-

शरीररूपी नौकाकी सहायतासे पार किया जा सकता है। क्षमा इसको खेनेवाले डाँड़ और धर्म इसको स्थिर करनेवाला लंगर है। विषयासक्तिके त्यागरूपी शीघ्रगामी वायुद्वारा ही इस नदीको पार किया जा सकता है। इसलिये तुम कर्मोंसे निवृत्त,

सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त, सर्वज्ञ, सर्वविजयी, सिद्ध तथा भाव, अभावसे रहित हो जाओ। बहुत-से ज्ञानी पुरुष संयम और तपस्याके बलसे नवीन बन्धनोंका उच्छेद करके नित्य सुख देनेवाली अवाधिसिद्धि (मुक्ति)-को प्राप्त हो चुके हैं।

शुकदेवजीको सनत्कुमारका उपदेश

सनत्कुमारजी कहते हैं—शुकदेव! शास्त्र शोकको दूर करनेवाला है। वह शान्तिकारक तथा कल्याणमय है। अपने शोकका नाश करनेके लिये शास्त्रका श्रवण करनेसे उत्तम बुद्धि प्राप्त होती है। उनके मिलनेपर मनुष्य सुखी एवं अभ्युदयशील होता है। शोकके हजारों और भयके सैकड़ों स्थान हैं। वे प्रतिदिन मूढ़ मनुष्यपर ही अपना प्रभाव डालते हैं। विद्वान् पुरुषपर उनका जोर नहीं चलता*। अल्प बुद्धिवाले मनुष्य ही अप्रिय वस्तुके संयोग और प्रिय वस्तुके वियोगसे मन-ही-मन दुःखी होते हैं। जो वस्तु भूतकालके गर्भमें छिप गयी (नष्ट हो गयी), उसके गुणोंका स्मरण नहीं करना चाहिये; क्योंकि जो आदरपूर्वक उसके गुणोंका चिन्तन करता है, वह उसकी आसक्तिके बन्धनसे मुक्त नहीं हो पाता। जहाँ चित्तकी आसक्ति बढ़ने लगे, वहीं दोषदृष्टि करनी चाहिये और उसे अनिष्टको बढ़ानेवाला समझना चाहिये। ऐसा करनेपर उससे शीघ्र ही वैराग्य हो जाता है। जो बीती बातके लिये शोक करता है, उसे धर्म, अर्थ और यशकी प्राप्ति नहीं होती। वह उसके अभावका दुःखमात्र उठाता है। उससे अभाव दूर नहीं होता। सभी प्राणियोंको उत्तम पदार्थोंसे संयोग और वियोग प्राप्त होते रहते हैं। किसी एकपर ही यह शोकका अवसर नहीं आता। जो

मनुष्य भूतकालमें मरे हुए किसी व्यक्ति अथवा नष्ट हुई किसी वस्तुके लिये निरन्तर शोक करता है, वह एक दुःखसे दूसरे दुःखको प्राप्त होता है। इस प्रकार उसे दो अनर्थ भोगने पड़ते हैं। यदि कोई शारीरिक और मानसिक दुःख उपस्थित हो जाय तथा उसे दूर करनेमें कोई उपाय काम न दे सके, तो उसके लिये चिन्ता न करनी चाहिये। दुःख दूर करनेकी सबसे अच्छी दवा यही है कि उसका बार-बार चिन्तन न किया जाय। चिन्तन करनेसे वह घटता नहीं, बल्कि और बढ़ता ही जाता है। इसलिये मानसिक दुःखको बुद्धिके विचारसे और शारीरिक कष्टको औषध-सेवनद्वारा नष्ट करना चाहिये। शास्त्रज्ञानके प्रभावसे ही ऐसा होना सम्भव है। दुःख पड़नेपर बालकोंकी तरह रोना उचित नहीं है। रूप, यौवन, जीवन, धन-संग्रह, आरोग्य तथा प्रियजनोंका सहवास—ये सब अनित्य हैं। विद्वान् पुरुषको इनमें आसक्त नहीं होना चाहिये। आये हुए संकटके लिये शोक करना उचित नहीं है। यदि उस संकटको टालनेका कोई उपाय दिखलायी दे तो शोक छोड़कर उसे ही करना चाहिये। इसमें संदेह नहीं कि जीवनमें सुखकी अपेक्षा दुःख ही अधिक होता है तथापि जरा और मृत्युके दुःख महान् हैं, अतः उनसे अपने प्रिय आत्माका

१. शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च। दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्॥

उद्धार करे। शारीरिक और मानसिक रोग सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले वीर पुरुषके छोड़े हुए तीखी धारवाले बाणोंकी तरह शरीरको पीड़ित करते हैं। तृष्णासे व्यथित, दुःखी एवं विवश होकर जीनेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यका नाशवान् शरीर क्षण-क्षणमें विनाशको प्राप्त हो रहा है। जैसे नदियोंका प्रवाह आगेकी ओर ही बढ़ता जाता है, पीछेकी ओर नहीं लौटता, उसी प्रकार रात और दिन भी मनुष्योंकी आयुका अपहरण करते हुए एक-एक करके बीतते चले जा रहे हैं। यदि जीवके किये हुए कर्मोंका फल पराधीन न होता तो वह जो चाहता, उसकी वही कामना पूरी हो जाती। बड़े-बड़े संयमी, चतुर और बुद्धिमान् मनुष्य भी अपने कर्मोंके फलसे वञ्चित होते देखे जाते हैं तथा गुणहीन, मूर्ख और नीच पुरुष भी किसीके आशीर्वाद बिना ही समस्त कामनाओंसे सम्पन्न दिखायी देते हैं। कोई-कोई मनुष्य तो सदा प्राणियोंकी हिंसामें ही लगा रहता है और संसारको धोखा दिया करता है, किंतु कहीं-कहीं ऐसा पुरुष भी सुखी देखा जाता है। कितने ही ऐसे हैं, जो कोई काम न करके चुपचाप बैठे रहते हैं, फिर भी उनके पास लक्ष्मी अपने-आप पहुँच जाती है और कुछ लोग बहुत-से कार्य करते हैं, फिर भी मनचाही वस्तु नहीं पाते। इसमें पुरुषका प्रारब्ध ही प्रधान है। देखो, वीर्य अन्यत्र पैदा होता है और अन्यत्र जाकर संतान उत्पन्न करता है। कभी तो वह योनिमें पहुँचकर गर्भ धारण करनेमें समर्थ होता है और कभी नहीं होता। कितने ही लोग पुत्र-पौत्रकी इच्छा रखकर उसकी सिद्धिके लिये यत्न करते रहते हैं, तो भी उनके संतान नहीं होती और कितने ही मनुष्य संतानको क्रोधमें भरा हुआ साँप समझकर सदा उससे डरते रहते हैं तो भी उनके यहाँ दीर्घजीवी पुत्र उत्पन्न हो जाता है, मानो वह

स्वयं किसी प्रकार परलोकसे आकर प्रकट हो गया हो। कितने ही गर्भ ऐसे हैं, जो पुत्रकी अभिलाषा रखनेवाले दीन स्त्री-पुरुषोंद्वारा देवताओंकी पूजा और तपस्या करके प्राप्त किये जाते हैं और दस महीनेतक माताके उदरमें धारण किये जानेके बाद जन्म लेनेपर कुलाङ्गर निकल जाते हैं। उन्हीं माझलिक कृत्योंसे प्राप्त हुए बहुत-से ऐसे पुत्र हैं, जो जन्म लेनेके साथ ही पिताके संचित किये हुए अपार धन-धान्य और विपुल भोगोंके अधिकारी होते हैं। (इन सबमें प्रारब्ध ही प्रधान है।)

जो सुख और दुःख दोनोंकी चिन्ता छोड़ देता है, वह अविनाशी ब्रह्मको प्राप्त होता है और परमानन्दका अनुभव करता है। धनके उपार्जनमें बड़ा कष्ट होता है, उसकी रक्षामें भी सुख नहीं है तथा उसके खर्च करनेमें भी क्लेश ही होता है, अतः धनको प्रत्येक दशामें दुःखदायक समझकर उसके नष्ट होनेपर चिन्ता नहीं करनी चाहिये। मनुष्य धनका संग्रह करते-करते पहलेकी अपेक्षा ऊँची स्थितिको प्राप्त करके भी कभी तृप्त नहीं होते, वे और अधिक धन कमानेकी आशा लिये हुए ही मर जाते हैं। इसलिये विद्वान् पुरुष सदा संतुष्ट रहते हैं (वे धनकी तृष्णामें नहीं पड़ते)। संग्रहका अन्त है विनाश, सांसारिक ऐश्वर्यकी उन्नतिका अन्त है उस ऐश्वर्यकी अवनति। संयोगका अन्त है वियोग और जीवनका अन्त है मरण। तृष्णाका कभी अन्त नहीं होता। संतोष ही परम सुख है। अतः पण्डितजन इस लोकमें संतोषको ही उत्तम धन कहते हैं। आयु निरन्तर बीती जा रही है। वह पलभर भी विश्राम नहीं लेती। अब अपना शरीर ही अनित्य है, तब इस संसारकी दूसरी किस वस्तुको नित्य समझा जाय। जो मनुष्य सब प्राणियोंके भीतर मनसे परे परमात्माकी स्थिति जानकर उन्हींका चिन्तन करते हैं, वे

संसारयात्रा समाप्त होनेपर परमपदका साक्षात्कार करते हुए शोकके पार हो जाते हैं।

जैसे वनमें नयी-नयी घासकी खोजमें विचरते हुए अतृप्ति पशुको सहसा व्याघ्र आकर दबोच लेता है, उसी प्रकार भोगोंकी खोजमें लगे हुए अतृप्ति मनुष्यको मृत्यु उठा ले जाती है। इसलिये इस दुःखसे छुटकारा पानेका उपाय अवश्य सोचना चाहिये। जो शोक छोड़कर साधन आरम्भ करता है और किसी व्यसनमें आसक्त नहीं होता, उसकी मुक्ति हो जाती है। धनी हो या निर्धन, सबको उपभोगकालमें ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस और उत्तम गन्ध आदि विषयोंमें किञ्चित् सुखका अनुभव होता है। उपभोगके पश्चात् उनमें कुछ नहीं रहता। प्राणियोंको एक-दूसरेसे संयोग होनेके पहले कोई दुःख नहीं होता। जब संयोगके बाद प्रियका वियोग होता है तभी सबको दुःख हुआ करता है; अतः विवेकी पुरुषको अपने स्वरूपमें स्थित होकर कभी भी शोक नहीं करना चाहिये। धैर्यके द्वारा शिशन और उदरकी, नेत्रद्वारा हाथ और पैरकी, मनके द्वारा आँख और कानकी तथा सद्विद्याके

द्वारा मन और वाणीकी रक्षा करनी चाहिये। पूजनीय तथा अन्य मनुष्योंमें आसक्ति हटाकर शान्तभावसे विचरण करता है, वही सुखी और वही विद्वान् है। जो अध्यात्म-विद्यामें अनुरक्त, निष्काम तथा भोगासक्तिसे दूर है और सदा अकेला ही विचरता रहता है, वह सुखी होता है। जब मनुष्य सुखको दुःख और दुःखको सुख समझने लगता है, उस अवस्थामें बुद्धि, सुनीति और पुरुषार्थ भी उसकी रक्षा नहीं कर पाते। अतः मनुष्यको ज्ञानप्राप्तिके लिये स्वभावतः यत्न करना चाहिये; क्योंकि यत्न करनेवाला पुरुष कभी दुःखमें नहीं पड़ता।

सनन्दनजी कहते हैं—व्यासपुत्र शुकदेवसे ऐसा कहकर उनकी अनुमति ले महामुनि सनत्कुमारजी उनसे सादर पूजित हो वहाँसे चले गये। योगियोंमें श्रेष्ठ शुकदेवजी भी अपनी स्वरूपस्थितिको भलीभाँति जानकर ब्रह्मपदका अनुसंधान करनेके लिये उत्सुक हो पिताके पास गये। पितासे मिलकर महामुनि शुकने उन्हें प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा करके वे कैलासपर्वतको चले गये।

श्रीशुकदेवजीकी ऊर्ध्वगति, श्वेतद्वीप तथा वैकुण्ठधाममें जाकर शुकदेवजीके द्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति और भगवान्की आज्ञासे शुकदेवजीका व्यासजीके पास आकर भागवतशास्त्र पढ़ना

सनन्दनजीने कहा—देवर्षे! कैलास-पर्वतपर जाकर सूर्यके उदय होनेपर विद्वान् शुकदेव हाथ-पैरोंको यथोचित रीतिसे रखकर विनीतभावसे पूर्वकी ओर मुँह करके बैठे और योगमें लग गये। उस समय उन्होंने सब प्रकारके सङ्गोंसे रहित परमात्माका दर्शन किया। यों उस परमात्माका साक्षात्कार करके शुकदेवजी खूब खुलकर हँसे। फिर वे वायुके समान आकाशमें विचरने लगे। उस समय उनका तेज धूमरहित अग्निकी भाँति उद्दीप हो रहा था। आगे बढ़नेपर शुकदेवजीने पर्वतके दो अनुपम शिखर देखे, जिनमें एक तो हिमालयके

समान आगे बढ़ रहे थे। उस समय सबने अपनी शक्ति तथा रीति-नीतिके अनुसार उनका पूजन किया। देवताओंने उनपर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा की। उन्हें इस प्रकार ऊपर उठते देख गन्धर्व, अप्सरा, महर्षि तथा सिद्धगण सब आश्रयसे चकित हो उठे। तत्पश्चात् वे नित्य, निर्गुण एवं लिङ्गरहित ब्रह्मपदमें स्थित हो गये। उस समय उनका तेज धूमरहित अग्निकी भाँति उद्दीप हो रहा था। आगे बढ़नेपर शुकदेवजीने पर्वतके दो

समान श्वेत तथा दूसरा मेरुके समान पीतवर्ण था। एक रजतमय था और दूसरा सुवर्णमय। दोनों एक-दूसरेसे सटे हुए और सुन्दर थे। नारद! इनका विस्तार ऊपरकी ओर तथा अगल-बगलमें सौ-सौ योजनका था। शुकदेवजी दोनों शिखरोंके बीचसे सहसा आगे निकल गये। वह श्रेष्ठ पर्वत उनकी गतिको रोक न सका। उस समय शुकदेवजी वायुलोकसे ऊपर अन्तरिक्षमें यात्रा करते हुए अपना प्रभाव दिखाकर सर्वस्वरूप हो सम्पूर्ण लोकोंमें विचरण करने लगे। परम योगवेत्ता शुकदेवजी श्वेतद्वीपमें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने पहले भगवान् श्रीनारायणदेवका प्रभाव देखा। तत्पश्चात् जिन्हें वेदकी ऋचाएँ भी ढूँढ़ती फिरती हैं, उन देवाधिदेव जनार्दनका साक्षात् दर्शन किया। दर्शनके अनन्तर शुकदेवजीने भगवान्‌की स्तुति की। नारद! उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् बोले।

श्रीभगवान्‌ने कहा—योगीन्द्र! मैं सम्पूर्ण देवताओंके लिये भी अदृश्य होकर रहता हूँ फिर भी तुमने मेरा दर्शन कर लिया है। ब्रह्मचारी शुक! तुम सनत्कुमारजीके बताये हुए योगके द्वारा सिद्ध हो चुके हो। अतः वायुके मार्गमें स्थित होकर इच्छानुसार सम्पूर्ण लोकोंको देखो।

विप्रवर! भगवान् वासुदेवके ऐसा कहनेपर शुकदेवमुनि उन्हें प्रणाम करके अखिलविश्ववन्दित विष्णुधामको गये। नारद! वैकुण्ठलोक विमानपर विचरनेवाले देवताओंसे सेवित है। उसे विरजा नामवाली दिव्य नदीने चारों ओरसे घेर रखा है। उस दिव्य धामके प्रकाशित होनेसे ही ये सम्पूर्ण लोक प्रकाशित हो रहे हैं। वहाँ सुन्दर-सुन्दर बावड़ियाँ बनी हैं, जो कमलोंसे आच्छादित रहती हैं। उनके घाट मूँगेके बने हुए हैं, जिनमें सुवर्ण और रत्न जड़े हुए हैं। वे सब बावड़ियाँ निर्मल जलसे भरी रहती हैं। वहाँके द्वारपाल चार भुजाधारी होते हैं। नाना प्रकारके आभूषण उनकी

शोभा बढ़ाते हैं। वे सभी विष्वक्सेनजीके अनुयायी एवं सिद्ध हैं। उनकी कुमुद आदि नामोंसे प्रसिद्धि है। शुकदेवजीको उनमेंसे किसीने नहीं रोका। वे बिना बाधा भीतर प्रवेश कर गये। वहाँ उन्होंने सिद्ध-समुदायके द्वारा निरन्तर सेवित देवाधिदेव भगवान् विष्णुका दर्शन किया। उनके चार भुजाएँ थीं। वे शान्त एवं प्रसन्नमुख दिखायी देते थे। उनके श्रीअङ्गोंपर रेशमी पीताम्बर शोभा पा रहा था। शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म मूर्तिमान् होकर भगवान्‌की सेवामें उपस्थित थे। उनके वक्षःस्थलमें भगवती लक्ष्मी विराज रही थीं और कौस्तुभमणिसे वे प्रकाशित हो रहे थे। उनके कटिभागमें करधनी, बायें कंधेपर यज्ञोपवीत, हाथोंमें कड़े तथा भुजाओंमें अङ्गद सुशोभित थे। माथेपर मण्डलाकार किरीट और चरणोंमें नूपुर शोभा दे रहे थे। भगवान् मधुसूदनका दर्शन करके शुकदेवने भक्तिभावसे उनकी स्तुति की।



शुकदेवजी बोले— सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र साक्षी आप भगवान् वासुदेवको नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत्के बीजस्वरूप, सर्वत्र परिपूर्ण एवं

निश्चल आत्मरूप आपको नमस्कार है। वासुकि नागकी शश्यापर शयन करनेवाले श्वेतद्वीपनिवासी श्रीहरिको नमस्कार है। आप हंस, मत्स्य, वाराह तथा नरसिंहरूप धारण करनेवाले हैं। ध्रुवके आराध्यदेव भी आप ही हैं। आप सांख्य और योग दोनोंके स्वामी हैं। आपको नमस्कार है। चारों सनकादि आपके ही अवतार हैं। आपने ही कच्छप और पृथुरूप धारण किया है। आत्मानन्द ही आपका स्वरूप है। आप ही नाभिपुत्र ऋषभदेवजीके रूपमें प्रकट हुए हैं। जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले आप ही हैं। आपको नमस्कार है। भृगुनन्दन परशुराम, रघुनन्दन श्रीराम, परात्पर श्रीकृष्ण, वेदव्यास, बुद्ध तथा कल्कि भी आपके ही स्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। कृष्ण, बलभद्र, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चार व्यूहोंके रूपमें आप ही विराज रहे हैं। जानने और चिन्तन करने योग्य परमात्मा भी आप ही हैं। नर-नारायण, शिपिविष्ट तथा विष्णु नामसे प्रसिद्ध आपको नमस्कार है। सत्य ही आपका धाम है। आप धामरहित हैं। गरुड़ आपके ही स्वरूप हैं। आप स्वयंप्रकाश, ऋभु (देवता), उत्तम व्रतका पालन करनेके लिये विख्यात, उत्कृष्ट धामवाले और अजित हैं। आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण विश्व आपका स्वरूप है। आप ही विश्वरूपमें प्रकट हैं। सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले भी आप ही हैं। यज्ञ और उसके भोक्ता, स्थूल और सूक्ष्म तथा याचना करनेवाले वामनरूप आपको नमस्कार है। सूर्य और चन्द्रमा आपके नेत्र हैं। साहस, ओज और बल आपसे भिन्न नहीं हैं। आप यज्ञोद्वारा यजन करने योग्य, साक्षी, अजन्मा तथा अनेक हाथ, पैर और मस्तकवाले हैं। आपको नमस्कार है। आप लक्ष्मीके स्वामी, उनके निवासस्थान तथा भक्तोंके

अधीन रहनेवाले हैं। आप शार्ङ्ग नामक धनुष धारण करते हैं। आठ^१ प्रकृतियोंके अधिपति, ब्रह्मा तथा अनन्त शक्तियोंसे सम्पन्न आप परमेश्वरको नमस्कार है। बृहदारण्यक उपनिषद्के द्वारा आपके तत्त्वका बोध होता है। आप इन्द्रियोंके प्रेरक तथा जगत्स्त्रष्टा ब्रह्मा हैं। आपके नेत्र विकसित कमलके समान हैं। क्षेत्रज्ञके रूपमें आप ही प्रकाशित हो रहे हैं। आपको नमस्कार है। गोविन्द, जगत्कर्ता, जगन्नाथ, योगी, सत्य, सत्यप्रतिज्ञ, वैकुण्ठ और अच्युतरूप आपको नमस्कार है। अधोक्षज, धर्म, वामन, त्रिधातु, तेजःपुञ्ज धारण करनेवाले, विष्णु, अनन्त एवं कपिलरूप आपको नमस्कार है। आप ही विरिज्ञि नामसे प्रसिद्ध ब्रह्माजी हैं। तीन शिखरोंवाला त्रिकूट पर्वत आपका ही स्वरूप है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद आपके अभिन्न विग्रह हैं। एक सर्विंगवाले शृङ्गी ऋषि भी आपकी ही विभूति हैं। आपका यश परम पवित्र है तथा सम्पूर्ण वेद-शास्त्र आपसे ही प्रकट हुए हैं। आपको नमस्कार है। आप वृषाकपि (धर्मको अविचल रूपसे स्थापित करनेवाले विष्णु, शिव और इन्द्र) हैं। सम्पूर्ण समृद्धियोंसे सम्पन्न तथा प्रभु सर्वशक्तिमान् हैं। यह सम्पूर्ण विश्व आपकी ही रचना है। भूलोक, भुवलोक और स्वलोक आपके ही स्वरूप हैं। आप दैत्योंका नाश करनेवाले तथा निर्गुण रूप हैं। आपको नमस्कार है। आप निरञ्जन, नित्य, अव्यय और अक्षररूप हैं। शरणागतवत्सल ईश्वर! आपको नमस्कार है। आप मेरी रक्षा कीजिये^२।

इस प्रकार स्तुति करनेपर प्रणतजनोंपर दया करनेवाले शङ्ख, चक्र और गदाधारी भगवान् विष्णु शुकदेवजीसे इस प्रकार बोले।

श्रीभगवान् कहा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महाभाग व्यासपुत्र! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हें विद्या और भक्ति दोनों प्राप्त हों।

१. गीताके अनुसार आठ प्रकृतियोंके नाम इस प्रकार हैं—भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार।

तुम ज्ञानी और साक्षात् मेरे स्वरूप हो। ब्रह्मन्! तुमने पहले श्वेतद्वीपमें जो मेरा स्वरूप देखा है, वह मैं ही हूँ। सम्पूर्ण विश्वकी रक्षाके लिये मैं वहाँ स्थित हूँ। मेरा वही स्वरूप भिन्न-भिन्न अवतार धारण करनेके लिये जाता है। महाभाग! मोक्षधर्मका निरन्तर चिन्तन करनेसे तुम सिद्ध हो गये हो। जैसे वायु तथा सूर्य आकाशमें विचरण करते हैं, उसी प्रकार तुम भी समस्त श्रेष्ठ लोकोंमें भ्रमण कर सकते हो। तुम नित्य मुक्तस्वरूप हो। मैं ही सबको शरण देनेवाला हूँ। संसारमें मेरे प्रति भक्ति अत्यन्त दुर्लभ है। उस भक्तिको प्राप्त कर लेनेपर और कुछ पाना शेष नहीं रहता। (वह तुमको प्राप्त हो गयी) बदरिकाश्रममें नरनारायण ऋषि कल्पान्त कालतकके लिये तपस्यामें स्थित हैं। उनकी आज्ञासे उत्तम व्रतका पालन करनेवाले तुम्हारे पिता व्यास भागवत-शास्त्रका सम्पादन करेंगे। अतः तुम पृथ्वीपर जाओ और उस शास्त्रका अध्ययन करो। इस समय वे गन्धमादन पर्वतपर तपस्या करते हैं।

नारदजी! भगवान्के ऐसा कहनेपर शुकदेवजीने उन चार भुजाधारी श्रीहरिको नमस्कार किया और वे पिताके समीप लौट गये। तदनन्तर शुकदेवको अपने निकट देख परम प्रतापी पराशरनन्दन भगवान् व्यासका मन प्रसन्न हो गया। वे पुत्रको पाकर तपस्यासे निवृत्त हो गये। फिर भगवान् नारायण और नरश्रेष्ठ नरको नमस्कार करके शुकदेवजीके साथ अपने आश्रमपर आये। मुनीश्वर नारद! तुम्हारे मुखसे भगवान् नारायणका आदेश पाकर उन्होंने अनेक प्रकारके शुभ उपाख्यानोंसे युक्त दिव्य भागवतसंहिता बनायी, जो वेदके तुल्य माननीय तथा भगवद्भक्तिको बढ़ानेवाली है। व्यासजीने वह संहिता अपने निवृत्तिपरायण पुत्र शुकदेवको पढ़ायी। व्यासनन्दन भगवान् शुक यद्यपि आत्माराम हैं तथापि उन्होंने भक्तोंको सदा प्रिय लगानेवाली उस संहिताका बड़े उत्साहसे अध्ययन किया। अनघ! इस प्रकार ये मोक्षधर्म बतलाये गये, जो पाठकों और श्रोताओंके हृदयमें भगवान्की भक्ति बढ़ानेवाले हैं।

१. शान्तं प्रसन्नवदनं	पीतकौशेयवाससम्। शङ्खचक्रगदापद्मैर्मूर्तिमद्भूपासितम्॥
वक्षःस्थलस्थया लक्ष्म्या कौस्तुभेन विराजितम्। कटिसूत्रब्रह्मसूत्रकटकाङ्गदभूषितम्॥	
भ्राजत्कीरीटवलयं मणिनूपुरशोभितम्। ददर्श सिद्धनिकरैः सेव्यमानमहर्मिशम्॥	
तं दृष्टा भक्तिभावेन तुष्टाव मधुसूदनम्। नमस्ते वासुदेवाय सर्वलोकैकसाक्षिणे॥	
जगद्वीजस्वरूपाय पूर्णाय निभृतात्मने। हरये वासुकिस्थाय श्वेतद्वीपनिवासिने॥	
हंसाय मत्स्यरूपाय वाराहतनुधारिणे। नृसिंहाय धृवेज्याय सांख्योगेश्वराय च॥	
चतुःसनाय कूर्माय पृथके स्वसुखात्मने। नाभेयाय जगद्वात्रे विधात्रेऽन्तकराय च॥	
भार्गवेन्द्राय रामाय राघवाय पराय च। कृष्णाय वेदकर्त्रे च बुद्धकल्पस्वरूपिणे॥	
चतुर्वृहाय वेद्याय ध्येयाय परमात्मने। नरनारायणाख्याय शिपिविष्टाय विष्णवे॥	
ऋतधामे विधामे च सुपर्णाय स्वरोचिषे। ऋभवे सुव्रताख्याय सुधामे चाजिताय च॥	
विश्वरूपाय विश्वाय सुष्टिस्थित्यन्तकारिणे। यज्ञाय यज्ञभोक्त्रे च स्थविष्टायाणवेऽर्थिने॥	
आदित्यसोमनेत्राय सहओजोबलाय च। ईज्याय साक्षिणेऽजाय बहुशीर्षाङ्गिब्रह्मवे॥	
श्रीशाय श्रीनिवासाय भक्तवश्याय शार्ङ्गिणे। अष्टप्रकृत्यधीशाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये॥	
बृहदारण्यवेद्याय हृषीकेशाय वेधसे। पुण्डरीकनिभाक्षाय क्षेत्रज्ञाय विभासिने॥	
गौविन्दाय जगत्कर्त्रे जगन्नाथाय योगिने। स्त्याय सत्यसंधाय वैकुण्ठायाच्युताय च॥	
अधोक्षजाय धर्माय वामनाय त्रिधातवे। धृतार्चिषे विष्णवे तेऽनन्ताय कपिलाय च॥	
विरञ्जये त्रिकुदे ऋग्यजुःसामरूपिणे। एकशृङ्गाय च शुचिश्रवसे शास्त्रयोनये॥	
वृषाकपय ऋद्वाय प्रभवे विश्वकर्मणे। भूर्भुवःस्वःस्वरूपाय दैत्यग्रे निर्गुणाय च॥	
निरञ्जनाय नित्याय ह्यव्ययायाक्षराय च। नमस्ते पाहि मामीश शरणागतवत्सल॥	

(ना० पूर्व० ६२। ४७—६५)

तृतीय पाद

शैवदर्शन* के अनुसार पति, पशु एवं पाश आदिका वर्णन तथा दीक्षाकी महत्ता

शौनकजी बोले—साधु सूतजी! आप सम्पूर्ण शास्त्रोंके विज्ञ पण्डित हैं। विद्वन्! आपने हमलोगोंको श्रीकृष्णकथारूपी अमृतका पान कराया है। भगवान्‌के प्रेमी भक्त देवर्षि नारदजीने सनन्दनके मुखसे मोक्षधर्मोंका वर्णन सुनकर पुनः क्या पूछा? ब्रह्माजीके मानस-पुत्र सनकादि मुनीश्वर उत्तम सिद्धपुरुष हैं। वे लोगोंके उद्घारमें तत्पर होकर सम्पूर्ण जगत्में विचरते रहते हैं। महाभाग! श्रीनारदजी भी सदा श्रीकृष्णके भजनमें संलग्न रहते हैं और उन्हींके शरणागत भक्त हैं। उन सनकादि और नारदका समागम होनेपर सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करनेवाली कौन-सी कल्याणमयी कथा हुई, यह बतानेकी कृपा करें?

सूतजीने कहा—भृगुश्रेष्ठ! सनन्दनजीके द्वारा प्रतिपादित सनातन मोक्षधर्मोंका वर्णन सुनकर

नारदजीने पुनः उन मुनियोंसे पूछा।

नारदजी बोले—मुनीश्वरो! किन मन्त्रोंसे भगवान् विष्णुकी आराधना की जानी चाहिये। श्रीविष्णुके चरणारविन्दोंकी शरण लेनेवाले भक्तजनोंको किन देवताओंकी पूजा करनी चाहिये। विप्रबरो! भागवततन्त्रका तथा गुरु और शिष्यके सम्बन्धको स्थापित करके उन्हें अपने-अपने कर्तव्यके पालनकी प्रेरणा देनेवाली दीक्षाका वर्णन कीजिये। तथा साधकोंद्वारा पालन करने योग्य प्रातःकाल आदिके जो-जो कृत्य हों, उन सबको भी हमें बताइये। जिन महीनोंमें जप, होम आदि जिन-जिन कर्मोंके अनुष्ठानसे परमात्मा श्रीहरि प्रसन्न होते हैं, उनका आपलोग मुझसे वर्णन करें।

सूतजी कहते हैं—महात्मा नारदका यह वचन सुनकर सनत्कुमारजी बोले।

*‘शैव-महातन्त्र’ के ‘शैवागम’, ‘शैवदर्शन’ तथा ‘पाशुपत-दर्शन’ आदि अनेक नाम हैं। इस अध्यायमें इसीके निगूढ़ तत्त्वोंका विशद विवेचन किया गया है। यहाँ भूमिकारूपसे उक्त दर्शनकी कुछ मोटी-मोटी बातें प्रस्तुत की जाती हैं, जिनसे पाशुपतसिद्धान्त और इस अध्यायमें वर्णित विषयको हृदयङ्गम करनेमें सुविधा होगी। शैवागमके अनुसार तीन पदार्थ (पशु, पाश तथा पशुपति) और चार पाद या साधन (विद्या, क्रिया, योग तथा चर्या) हैं। जैसा कि तन्त्र-तत्त्वज्ञोंका कथन है—‘त्रिपदार्थं चतुष्पादं महातन्त्रम् …’

गुरुसे नियमपूर्वक मन्त्रोपदेश लेनेको दीक्षा कहते हैं। यह दीक्षा मन्त्र, मन्त्रेश्वर और विद्येश्वर आदि पशुओंके ज्ञानके बिना नहीं हो सकती। इसी ज्ञानसे पशु, पाश तथा पशुपतिका ठीक-ठीक निर्णय होता है; अतः परमपुरुषार्थकी हेतुभूता दीक्षामें उपकारक उक्त ज्ञानका प्रतिपादन करनेवाले प्रथम पादका नाम ‘विद्या’ है। भिन्न-भिन्न अधिकारियोंके अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकारकी दीक्षा होती है। अतः अनेक प्रकारकी साङ्घोपाङ्घ दीक्षाओंके विधि-विधानका परिचय करानेवाले द्वितीय पादको ‘क्रिया’ पाद कहा गया है। परंतु यम, नियम, आसन आदि अष्टाङ्गयोगके बिना अभीष्टप्राप्ति नहीं हो सकती, अतः ‘क्रिया’ पादके पश्चात् ‘योग’ नामक तीसरे पादकी आवश्यकता समझकर उसका प्रतिपादन किया गया है। योगकी सिद्धि भी तभी होती है, जब शास्त्रविहित कर्मोंका अनुष्ठान और निषिद्ध कर्मोंका सर्वथा त्याग हो, अतः इन सब कर्मोंके प्रतिपादक ‘चर्या’ नामक चतुर्थ पादका वर्णन है।

पति या पशुपति

करने, न करने और अन्यथा करनेमें समर्थ, नित्य, निर्गुण, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सर्वथा स्वतन्त्र, परम सर्वज्ञ, परम ऐश्वर्यस्वरूप, नित्यमुक्त, नित्य-निर्मल, निरतिशय ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिसे सम्पन्न तथा सबपर अनुग्रह करनेवाले भगवान् महेश्वर परम शिव ही ‘पति’ या ‘पशुपति’ हैं। महेश्वरके पाँच कृत्य हैं—सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव तथा अनुग्रह। यद्यपि विद्येश्वर इत्यादि मुक्त जीव भी शिवभावको प्राप्त हो जाते हैं, किंतु ये सब स्वतन्त्र नहीं होते, अपितु परमेश्वरके अधीन रहते हैं। उपासनाके लिये जहाँ परमेश्वर शिवके साकार रूपका वर्णन

सनत्कुमारजी कहते हैं—नारद! सुनो, मैं तुमसे भागवततन्त्रका वर्णन करूँगा। जिसे जानकर साधक निर्मल भक्तिके द्वारा अविनाशी भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेता है। (अब पहले शैवतन्त्रका वर्णन करते हैं।) शैव-महातन्त्रमें तीन पदार्थ और चार पादोंका वर्णन है, ऐसा विद्वान् पुरुष कहते हैं। भोग, मोक्ष, क्रिया और चर्या—ये शैवमहातन्त्रमें चार पाद (साधन) कहे गये हैं। पदार्थ तीन ही हैं—पशुपति, पशु तथा पाश; इनमें एकमात्र शिवस्वरूप परमात्मा ही 'पशुपति' हैं और जीवोंको 'पशु' कहा गया है। नारद! देखो, जबतक स्वरूपके अज्ञानको सूचित करनेवाले मोह आदिसे सम्बन्ध बना रहता है, तबतक इन सब जीवोंकी 'पशु' संज्ञा मानी गयी है। उनका पशुत्व द्वैतभावसे युक्त है। इन पशुओंके जो पाश अर्थात् बन्धन हैं, वे पाँच प्रकारके माने गये हैं। उनमेंसे प्रत्येकका लक्षण बताया जायगा। पशुके तीन भेद हैं—'विज्ञानाकल', 'प्रलयाकल' और 'सकल'। इनमें प्रथम अर्थात् 'विज्ञानाकल पशु' 'मल' संयुक्त

(मलरूप पाशसे आबद्ध) होता है। दूसरा 'प्रलयाकल पशु' 'मल' और 'कर्म'—इन दो पाशोंसे संयुक्त (बद्ध) होता है। तीसरा अर्थात् 'सकल पशु' 'मल', 'माया' तथा 'कर्म'—इन तीन पाशोंसे बँधा हुआ कहा गया है। उक्त त्रिविध पशुओंमें जो पहला— विज्ञानाकल है, उसके दो भेद होते हैं—'समाप्त-कलुष' और 'असमाप्तकलुष'। दूसरे—प्रलयाकल पशुके लिये भी दो भेद कहे गये हैं—'पक्व-मल' और 'अपक्व-मल' (अर्थात् पक्वपाशद्वय और अपक्व पाशद्वय)। विज्ञानाकल और प्रलयाकल ये दोनों जीव (पशु) शुद्ध मार्गपर स्थित होते हैं और सकल जीव कला आदि तत्त्वोंके अधीन होकर विभिन्न लोकोंमें कर्मानुसार प्राप्त हुए तिर्यक्-मनुष्यादि शरीरोंमें भ्रमण करता है। पाश पाँच प्रकारके बताये गये हैं—'मलज', 'कर्मज', 'मायेय' (मायाजन्य), 'तिरोधानशक्तिज' और 'विन्दुज'। जैसे भूसी चावलको ढके रहती है, उसी प्रकार एक भी 'मल' पुरुषकी अनेक शक्ति—दृक्-शक्ति (ज्ञान) और क्रियाशक्तिका

है, वहाँ भी उनका शरीर प्राकृत नहीं है। वह निर्मल तथा कर्मादि बन्धनोंसे नित्यमुक्त होनेके कारण शारू (शक्तिस्वरूप एवं चिन्मय) है। उपनिषदोंमें महेश्वरके मन्त्रमय स्वरूपका वर्णन है। शैवदर्शनमें यह बात स्पष्ट शब्दोंमें कही गयी है—'मलाद्यसम्भवाच्छाकं व्युर्नेतादृशं प्रभोः।' 'तद्वपुः पञ्चभिर्मन्त्रैः।' इत्यादि।

पशु

जीवात्मा या क्षेत्रज्ञका ही नाम 'पशु' है। पशु उसे कहते हैं जो पाशोंद्वारा बँधा हो—'पाशनाच्च पशवः।' जीव भी पाशबद्ध है, इसीसे उसे 'पशु' कहते हैं। वह वस्तुतः अणु नहीं, व्यापक है। नित्य है। 'आत्मनो विभुनित्या' यह शैवतन्त्रकी स्पष्ट घोषणा है; परंतु पशु (जीव) दशामें यह परिच्छिन्न और सीमित शक्तिसे युक्त है, तथापि यह 'सांख्य' के पुरुषकी भाँति अकर्ता भी नहीं है; क्योंकि पाशोंसे मुक्त होकर शिवत्वको प्राप्त हो जानेपर यह भी निरतिशय ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिसे सम्पन्न हो जाता है। पशु तीन प्रकारका है—'विज्ञानाकल', 'प्रलयाकल' तथा 'सकल'। (१) जो परमात्माके स्वरूपको पहचानकर जप, ध्यान तथा संन्यासद्वारा अथवा भोगद्वारा कर्मोंका क्षय कर डालता है और कर्मोंका क्षय हो जानेके कारण जिसको शरीर और इन्द्रिय आदिका कोई बन्धन नहीं रहता, उसमें केवल मलरूपी पाश (बन्धन) रह जाता है, उसे 'विज्ञानाकल' कहते हैं। मल तीन प्रकारके होते हैं—आणव-मल, कर्मज-मल तथा मायेय-मल। विज्ञानाकलमें केवल आणव-मल रहता है। वह विज्ञान (तत्त्वज्ञान)-द्वारा अकल—कलारहित (कलादि भोग-बन्धनोंसे शून्य) हो जाता है, इसलिये उसकी 'विज्ञानाकल' संज्ञा होती है। (२) जिस जीवात्माके देह, इन्द्रिय आदि प्रलयकालमें लीन हो जाते हैं, इससे उसमें मायेय-मल तो नहीं रहता, परंतु आणव और कर्मज—ये दो मलरूपी पाश (बन्धन) रह जाते हैं, वह प्रलयकालमें ही अकल (कलारहित) होनेके कारण 'प्रलयाकल' कहलाता है। (३) जिस जीवात्मामें आणव, मायेय और कर्मज—तीनों मल (पाश) रहते हैं, वह कला आदि भोग-बन्धनोंसे युक्त होनेके कारण 'सकल' कहा गया है।

आच्छादन कर लेता है और यही जीवात्माओंके लिये देहान्तरकी प्राप्तिमें कारण होता है। धर्म और अधर्मका नाम है कर्म, जो विचित्र फल-भोग प्रदान करनेवाला है। यह 'कर्म' प्रवाहरूपसे नित्य है। बीजांकुर-न्यायसे इसकी स्थिति अनादि मानी गयी है। इस प्रकार ये प्रथम दो (मलज और कर्मज) पाश बताये गये। ब्रह्मन्! अब 'मायेय' आदि पाशोंका वर्णन सुनो।

(‘विन्दुज पाश’ अपरामुक्ति-स्वरूप है और शिव-स्वरूपकी प्राप्ति करनेवाला है, उसका स्वरूप यह है—) सत्, चित् और आनन्द जिनका स्वरूपभूत वैभव है, वे एकमात्र सर्वव्यापी सनातन परमात्मा ही सबके कारण तथा सम्पूर्ण जीवोंके पतिरूपसे विराज रहे हैं। जो मनमें तो आता है, किंतु प्रकट नहीं होता और संसारसे निवृत्ति (वैराग्य) प्रदान करता है; तथा दृक्-शक्ति और क्रियाशक्तिके रूपमें जो स्वयं ही विद्यमान है, वह उत्कृष्ट शैव तेज है। इसके सिवा, जिस शक्तिसे समर्थ होकर जीव परमात्माके समीप दिव्य भोगसे सम्पन्न होता और पशु-समुदायकी कोटिसे सदाके लिये मुक्त

हो जाता है, परमात्माकी उस एकान्तस्वरूपा आद्या शक्तिको चिद्रूपा कहते हैं। उस चिद्रूपा शक्तिसे उत्कर्षको प्राप्त हुआ ‘विन्दु’ दृक् (ज्ञान) और क्रिया-स्वरूप होकर शिव-नामसे प्रतिपादित होता है, उसीको सम्पूर्ण तत्त्वोंका कारण बताया गया है। वह सर्वत्र व्यापक तथा अविनाशी है। उसीमें संनिहित हुई इच्छा आदि सम्पूर्ण शक्तियाँ उसके सकाशसे अपना-अपना कार्य करती हैं। मुने! इसलिये यह सबपर अनुग्रह करनेवाला है। जड़ और चेतनपर अनुग्रह करनेके लिये विश्वकी सृष्टि करते समय इसका प्रथम उन्मेष नादके रूपमें हुआ है, जो शान्ति आदिसे युक्त तथा भुवन-स्वरूप है। विप्रवर! वह शक्ति-तत्त्व सावयव बताया गया है। इससे ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिका तथा उत्कर्ष और अपकर्षका प्रसार एवं अभाव होता है; अतः यह तत्त्व सदा शिवरूप है। जहाँ दृक्-शक्ति तिरोहित होती है और क्रियाशक्ति बढ़ जाती है, वह ईश्वर नामक तत्त्व कहा गया है; जो समस्त मनोरथोंका साधक है, जहाँ क्रियाशक्तिका तिरोभाव और ज्ञानशक्तिका उद्देक

विज्ञानाकल पशु (जीव)-के भी दो भेद हैं—‘समाप्त-कलुष’ और ‘असमाप्त-कलुष’। (१) जीवात्मा जो कर्म करता है, उस प्रत्येक कर्मकी तह मलपर जमती रहती है। इसी कारण उस मलका परिपाक नहीं होने पाता, किंतु जब कर्मोंका त्याग हो जाता है, तब तह न जमनेके कारण मलका परिपाक हो जाता है और जीवात्माके सारे कलुष समाप्त हो जाते हैं, इसीलिये वह ‘समाप्त-कलुष’ कहलाता है। ऐसे जीवात्माओंको भगवान् आठ प्रकारके ‘विद्येश्वर’ पदपर पहुँचा देते हैं, उनके नाम ये हैं—

‘अनन्तश्वैव सूक्ष्मश्च तथैव च शिवोत्तमः। एकनेत्रस्तथैवैकरुद्रश्चापि त्रिमूर्तिकः॥
श्रीकण्ठश्च शिखण्डी च प्रोक्ता विद्येश्वरा इमे।’

(१) अनन्त, (२) सूक्ष्म, (३) शिवोत्तम, (४) एकनेत्र, (५) एकरुद्र, (६) त्रिमूर्ति, (७) श्रीकण्ठ और (८) शिखण्डी।

(२) ‘असमाप्त-कलुष’ वे हैं, जिनकी कलुषराशि अभी समाप्त नहीं हुई है। ऐसे जीवात्माओंको परमेश्वर ‘मन्त्र’ स्वरूप दे देता है। कर्म तथा शरीरसे रहित किंतु मलरूपी पाशमें बँधे हुए जीवात्मा ही मन्त्र हैं और इनकी संख्या सात करोड़ है। ये सब अन्य जीवात्माओंपर अपनी कृपा करते रहते हैं। तत्त्व-प्रकाश नामक ग्रन्थमें उपर्युक्त विषयके संग्राहक श्लोक इस प्रकार हैं—

पश्वस्त्रिविधा: प्रोक्ता विज्ञानप्रलयाकलौ सकलः। मलयुक्तस्त्राद्यो मलकर्मयुतो द्वितीयः स्यात्।

मलमायाकर्मयुतः सकलस्तेषु द्विधा भवेदाद्यः। आद्यः समाप्तकलुषोऽसमाप्तकलुषो द्वितीयः स्यात्।

आद्याननुगृह्णा शिवो विद्येशत्वे नियोजयत्यष्टौ। मन्त्रांश्च करोत्यपरान् ते चोक्ताः कोटयः सप्त॥

‘प्रलयाकल’ भी दो प्रकारके होते हैं—‘पवपाशद्वय’ और ‘अपवपाशद्वय’। (१) जिनके मल तथा कर्मरूपी

होता है, वह विद्यातत्त्व कहलाता है। जो ज्ञानस्वरूप एवं प्रकाशक है। नाद, विन्दु और सकल—ये सत्-नामक तत्त्वके आश्रित हैं। आठ विद्येश्वरगण ईशतत्त्वके और सात करोड़ 'मन्त्र' गण विद्यातत्त्वके आश्रित हैं। ये सब तत्त्व शुद्धमार्गके नामसे कहे गये हैं। यहाँ ईश्वर साक्षात् निमित्त कारण हैं। वे ही विन्दुरूपसे सुशोभित हो यहाँ उपादानकारण बनते हैं। पाँच प्रकारके जो पाश हैं, उनका कोई समय न होनेके कारण उनका कोई निश्चित क्रम नहीं है; उनका व्यापार देखकर ही उनकी कल्पना की जाती है। वास्तवमें विचित्र शक्तियोंसे युक्त एक ही शिव नामक तत्त्व विराजमान है। वह शक्तियुक्त होनेसे 'शाक्त' कहा गया है। अन्तःकरणकी वृत्तियोंके भेदसे ही अनेक प्रकारकी कल्पनाएँ की गयी हैं, प्रभु शिव जड़-चेतनपर अनुग्रह करने लिये विविध रूप धारण करके अनादि मलसे आबद्ध जीवोंपर कृपा करते हैं। सबपर दया करनेवाले शिव सम्पूर्ण जीवोंको भोग और मोक्ष तथा जड़वर्गको अपने व्यापारमें लगनेकी शक्ति-सामर्थ्य देते हैं। भगवान् शिवके समान रूपका हो जाना ही मोक्ष है, यही चेतन जीवोंपर

ईश्वरका अनुग्रह है। कर्म अनादि होनेके कारण सदा वर्तमान रहते हैं; अतः उनका भोग किये बिना भी भगवत्कृपासे मोक्ष हो जाता है। इसीलिये भगवान् शङ्करको अनुग्राहक (कृपा करनेवाला) कहा गया है। अविनाशी प्रभु जीवोंके भोगके लिये सूक्ष्म करणोंद्वारा अनायास ही जगत्की उत्पत्ति करते हैं। कोई भी कर्ता किसी भी कार्यमें उपादान और करणोंके बिना नहीं देखा जाता।

(अब 'मायापाश'का प्रसङ्ग है—) यहाँ शक्तियाँ ही करण हैं। मायाको उपादान माना गया है। वह नित्य, एक और कल्याणमयी है। उसका न आदि है न अन्त; वह माया अपनी शक्तिद्वारा मनुष्यों और लोकोंकी उत्पत्तिका सामान्य कारण है। माया अपने कर्मोद्वारा स्वभावतः मोहजनक होती है। उससे भिन्न 'परा माया' है, जो सूक्ष्म एवं व्यापक है। इन विकारयुक्त कार्योंसे वह सर्वथा परे मानी गयी है। विद्याके स्वामी भगवान् शिव जीवके कर्मोंको देखकर अपनी शक्तियोंसे मायाको क्षोभमें डालते और जीवोंके भोगके लिये मायाके द्वारा ही शरीर एवं इन्द्रियोंकी सृष्टि करते हैं। अनेक शक्तियोंसे सम्पन्न माया पहले कालतत्त्वकी

दोनों पाशोंका परिपाक हो गया है, वे 'पक्वपाशद्वय' मोक्षको प्राप्त हो जाते हैं। (२) 'अपक्वपाशद्वय' जीव पुयष्टक देह धारण करके नाना प्रकारके कर्मोंको करते हुए नाना योनियोंमें घूमा करते हैं।

'सकल' जीवोंके भी दो भेद हैं—'पक्व-कलुष' और 'अपक्व-कलुष'। (१) जैसे-जैसे जीवात्माके मल, कर्म तथा माया—इन पाशोंका परिपाक बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे ये सब पाश शक्तिहीन होते जाते हैं। तब ये पक्व-कलुष जीवात्मा 'मन्त्रेश्वर' कहलाते हैं। सात करोड़ मन्त्ररूपी जीव-विशेषोंके, जिनका ऊपर वर्णन हो चुका है, अधिकारी ये ही ११८ मन्त्रेश्वर जीव हैं। (२) अपक्व-कलुष जीव भवकूपमें गिरते हैं।

पाश

नारदपुराणमें शैव-महातन्त्रकी मान्यताके अनुसार पाँच प्रकारके पाश बताये गये हैं—(१) मलज, (२) कर्मज, (३) मायेय (मायाजन्य), (४) तिरोधान-शक्तिज और (५) विन्दुज। आधुनिक शैवदर्शनमें चार प्रकारके पाशोंका उल्लेख है—मल, रोध, कर्म तथा माया। रोधशक्ति या तिरोधानशक्ति एक ही वस्तु है। 'विन्दु' मायास्वरूप है, वह 'शिव-तत्त्व' नामसे भी जानने योग्य है। यद्यपि शिवपदप्राप्तिरूप परम मोक्षकी अपेक्षासे वह भी पाश ही है, तथापि विद्येश्वरादि पदकी प्राप्तिमें परम हेतु होनेके कारण विन्दु-शक्तिको 'अपरा मुक्ति' कहा गया है, अतः उसे आधुनिक शैवदर्शनमें 'पाश' नाम नहीं दिया गया है। इसलिये यहाँ शेष चार पाशों (मल, कर्म, रोध और माया)-के ही स्वरूपका विचार किया जाता है—(१) जो आत्माकी स्वाभाविक ज्ञान तथा क्रिया-शक्तिको ढक ले, वह 'मल' (अर्थात् अज्ञान) कहलाता है। यह मल आत्मस्वरूपका केवल आच्छादन ही नहीं करता; किंतु जीवात्माको

सृष्टि करती है। भूत, भविष्य और वर्तमान जगत्का संकलन तथा लय करती है। तदनन्तर माया नियमन-शक्तिस्वरूपा नियतिकी सृष्टि करती है। यह सबको नियममें रखती है; इसलिये नियति कही गयी है। तत्पश्चात् सम्पूर्ण विश्वको मोहमें डालनेवाली आदि-अन्तरहित नित्य माया 'कला'-तत्त्वको जन्म देती है; क्योंकि एक ओरसे मनुष्योंके मलकी कलना करके वह उनमें कर्तृत्व-शक्ति प्रकट करती है; इसलिये इसका नाम कला है। यह कला ही 'काल' और 'नियति' के सहयोगसे पृथ्वीपर्यन्त अपना सारा व्यापार करती है। वही पुरुषको विषयोंका दर्शन अनुभव करानेके लिये प्रकाशस्वरूप 'विद्या' नामक तत्त्व उत्पन्न करती है। विद्या अपने कर्मसे ज्ञानशक्तिके आवरणका भेदन करके जीवात्माओंको विषयोंका दर्शन करती है, इसलिये वह कारण मानी गयी है; क्योंकि वह विद्या भोग्य उत्पन्न करती है, जिससे पुरुष उद्घद्धशक्ति होकर परम करणके द्वारा महत्-तत्त्व

बलपूर्वक दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाला पाश भी यही है। (२) प्रत्येक वस्तुमें जो सामर्थ्य है, उसे 'शिव-शक्ति' कहते हैं, जैसे अग्रिमें दाहक-शक्ति। यह शक्ति जैसे पदार्थमें रहती है, वैसा ही भला, बुरा स्वरूप धारण कर लेती है; अतः पाशमें रहती हुई यह शक्ति जब आत्माके स्वरूपको ढक लेती है, तब यह 'रोध-शक्ति' या 'तिरोधान-पाश' कहलाती है। इस अवस्थामें जीव शरीरको आत्मा मानकर शरीरके पोषणमें लगा रहता है, आत्माके उद्धरका प्रयत्न नहीं करता। (३) फलकी इच्छासे किये हुए 'धर्माधर्म' रूप कर्मोंको ही 'कर्मपाश' कहते हैं। (४) जिस शक्तिमें प्रलयके समय सब कुछ लीन हो जाता है तथा सृष्टिके समय जिसमेंसे सब कुछ उत्पन्न हो जाता है, वह 'मायापाश' है। अतः इन पाशोंमें बँधा हुआ पशु जब तत्पञ्चानद्वारा इनका उच्छेद कर डालता है, तभी वह परम शिवतत्त्व अर्थात् पशुपतिपदको प्राप्त होता है।

दीक्षा

दीक्षा ही शिवतत्त्व-प्राप्तिका साधन है। सर्वानुग्राहक परमेश्वर ही आचार्य-शरीरमें स्थित होकर दीक्षाकरणद्वारा जीवको परम शिवतत्त्वकी प्राप्ति कराते हैं; ऐसा ही कहा भी है—

‘योजयति परे तत्त्वे स दीक्षयाऽचार्यमूर्तिस्थः।’

‘अपक्व-पाशद्वय प्रलयाकल’ जीव तथा ‘अपक्व-कलुष सकल’ जीव जिस पुर्यष्टक देहको धारण करते हैं, वह पञ्चभूत तथा मन, बुद्धि, अहंकार—इन आठ तत्त्वोंसे युक्त होनेके कारण पुर्यष्टक कहलाती है। पुर्यष्टक शरीर छत्तीस तत्त्वोंसे युक्त होता है। अन्तर्भौमिके साधनभूत कला, काल, नियति, विद्या, राग, प्रकृति और गुण—ये सात तत्त्व, पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रा, दस इन्द्रियाँ, चार अन्तःकरण और पाँच शब्द आदि विषय—ये छत्तीस तत्त्व हैं। अपक्व पाशद्वय जीवोंमें जो अधिक पुण्यात्मा है, उन्हें परम दयालु भगवान् महेश्वर भुवनेश्वर या लोकपाल बना देते हैं।

नारदपुराणके इस अध्यायमें इन्हीं उपर्युक्त तत्त्वोंका क्रम या व्युत्क्रमसे विवेचन किया गया है। पाठकोंको मनोयोगपूर्वक इसे पढ़ना और हृदयज्ञम् करना चाहिये।

उसमें कर्तृत्व न स्वीकार किया जाय तो उसके भोक्तृत्वका कथन भी व्यर्थ होता है। इसके सिवा, प्रधान पुरुषके द्वारा आचरित सब कर्म निष्फल हो जाता। यदि पुरुष करण आदिका प्रेरक न हो और उसमें कर्तृत्वका अभाव हो तो उसके द्वारा भोग भी असम्भव ही है। इसलिये पुरुष ही यहाँ प्रवर्तक है। उसका करण आदिका प्रेरक होना विद्याके द्वारा ही सम्भव माना गया है।

तदनन्तर कला दृढ़ वज्रलेपके सदृश रागको उत्पन्न करती है, जिससे उस वज्रलेप-रागयुक्त पुरुषमें भोग्य वस्तुके लिये क्रियाप्रवृत्ति उत्पन्न होती है, इसलिये इसका नाम राग है। इन सब तत्त्वोंसे जब यह आत्मा भोक्तृत्व-दशाको पहुँचाया जाता है, तब वह पुरुष नाम धारण करता है। तत्पश्चात् कला ही अव्यक्त प्रकृतिको जन्म देती है। जो पुरुषके लिये भोग उपस्थित करती है, वह अव्यक्त ही गुणमय सप्तग्रन्थि*-विधानका कारण है। इसमें गुणोंका विभाग नहीं है; जैसे आधारमें पृथ्वी आदिके भागका विभाग नहीं होता। उनका जो आधार है, वह भी अव्यक्त ही कहलाता है। गुण तीन ही हैं। उनका अव्यक्तसे ही प्राकट्य होता है। उनके नाम हैं—सत्त्व, रज और तम। गुणोंसे ही बुद्धि इन्द्रिय-व्यापारका नियमन और विषयोंका निश्चय करती है। गुणसे त्रिविध कर्मोंके अनुसार बुद्धि भी सात्त्विक, राजस और तामस-भेदसे तीन प्रकारकी कही गयी है। महत्-तत्त्वसे अहंकार उत्पन्न होता है, जो अहंभावकी वृत्तिसे युक्त होता है। इस अहंकारके ही सम्बेद (इन्द्रिय और देवता आदिके रूपमें परिणति)-से विषय व्यवहारमें आते हैं। अहंकार सत्त्वादि गुणोंके भेदसे तीन प्रकारका होता है। उन तीनोंके नाम हैं—तैजस, राजस और तामस अहंकार। उनमें तैजस अहंकारसे मनसहित

ज्ञानेन्द्रियाँ प्रकट हुई हैं। जो सत्त्वगुणके प्रकाशसे युक्त होकर विषयोंका बोध कराती हैं। क्रियाके हेतुभूत राजस अहंकारसे कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। तामस अहंकारसे पाँच तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं, जो पाँचों भूतोंकी उत्पत्तिमें कारण हैं। इनमें मन इच्छा और संकल्पके व्यापारवाला है। अतः वह दो विकारोंसे युक्त है। वह बाह्य इन्द्रियोंका रूप धारण करके, जो उसके लिये सर्वथा उचित है, सदा भोक्ताके लिये भोगका उत्पादक होता है। मन अपने संकल्पसे हृदयके भीतर स्थित रहकर इन्द्रियोंमें विषय-ग्रहणकी शक्ति उत्पन्न करता है; इसलिये उसे अन्तःकरण कहते हैं। मन, बुद्धि और अहंकार—ये अन्तःकरणके तीन भेद हैं। इच्छा, बोध और संरम्भ (गर्व या अहंभाव)—ये क्रमशः इनकी तीन वृत्तियाँ हैं।

कान, त्वचा, नेत्र, जिहा और नासिका—ये ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। मुने ! शब्द आदि इनके ग्राह्य-विषय जानने चाहिये। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये शब्दादि विषय माने गये हैं। वाणी, हाथ, पैर, गुदा और लिङ्ग—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। ये बोलने, ग्रहण करने, चलने, मल-त्याग करने और मैथुनजनित आनन्दकी उपलब्धिरूपी कर्मोंकी सिद्धिके करण हैं; क्योंकि कोई भी क्रिया करणोंके बिना नहीं हो सकती। कार्यमें लगाकर दस प्रकारके करणोंद्वारा चेष्टा की जाती है। व्यापक होनेके कारण कार्यका आश्रय लेकर सब इन्द्रियाँ चेष्टा करती हैं, इसलिये उनका नाम करण है। आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये पाँच तन्मात्राएँ हैं। इन तन्मात्राओंसे ही आकाश आदि पाँच भूत प्रकट होते हैं, जो एक-एक विशेष गुणके कारण प्रसिद्ध हैं। शब्द आकाशका मुख्य गुण है; किंतु यह पाँचों भूतोंमें सामान्य रूपसे उपलब्ध होता है। स्पर्श वायुका विशेष गुण है; किंतु वह वायु आदि चारों भूतोंमें

* कला, काल, नियति, विद्या, राग, प्रकृति और गुण—ये सात ग्रन्थियाँ हैं, यही आन्तरिक भोग-साधन कहे गये हैं।

विद्यमान है। रूप तेजका विशेष गुण है, जो तेज आदि तीनों भूतोंमें उपलब्ध है। रस जलका विशेष गुण है, जो जल और पृथ्वी दोनोंमें विद्यमान है तथा गन्ध नामक गुण केवल पृथ्वीमें ही उपलब्ध होता है। इन पाँचों भूतोंके कार्य क्रमशः इस प्रकार हैं—अवकाश, चेष्टा, पाक, संग्रह और धारण। वायुमें न शीत स्पर्श है न उष्ण, जलमें शीतल स्पर्श है, तेजमें उष्ण स्पर्श है, अग्निमें भास्वर शुक्लरूप है और जलमें अभास्वर शुक्ल। पृथ्वीमें शुक्ल आदि अनेक वर्ण हैं। रूप केवल तीन भूतोंमें है। जलमें केवल मधुर-रस है और पृथ्वीमें छः प्रकारका रस है। पृथ्वीमें दो प्रकारकी गन्ध कही गयी है—सुरभि तथा असुरभि। तन्मात्राओंमें उनके भूतोंके ही गुण हैं। करण और पोषण यह भूतसमुदायकी विशेषता है। परमात्मतत्त्व निर्विशेष है। ये पाँचों भूत सब ओर व्यास हैं। सम्पूर्ण चराचर जगत् पञ्चभूतमय है। शरीरमें जो इन पाँचों भूतोंका संनिवेश है, उसका निरूपण किया जाता है। देहके भीतर जो हड्डी, मांस, केश, त्वचा, नख और दाँत आदि हैं, वे पृथ्वीके अंश हैं। मूत्र, रक्त, कफ, स्वेद और शुक्र आदिमें जलकी स्थिति है। हृदयमें, नेत्रोंमें और पित्तमें तेजकी स्थिति है; क्योंकि वहाँ उसके उष्णत्व और प्रकाश आदि धर्मोंका दर्शन होता है। शरीरमें प्राण आदि वृत्तियोंके भेदसे वायुकी स्थिति मानी गयी है। सम्पूर्ण नाड़ियों तथा गर्भाशयमें आकाशतत्त्व व्यास है। कलासे लेकर पृथ्वीपर्यन्त यह तत्त्वसमुदाय सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका साधन है। प्रत्येक शरीरमें भी यह नियत है। भोग-भेदसे इसका निश्चय किया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक पुरुषमें नियति-कला आदि तत्त्व कर्मवश प्राप्त हुए सम्पूर्ण शरीरोंमें विचरते हैं। यह ‘मायेय पाश’ कहलाता है। जिससे यह सम्पूर्ण जगत् आवृत है। पृथ्वीसे लेकर कलापर्यन्त सम्पूर्ण तत्त्व-समुदाय अशुद्धमार्ग माना गया है।

(अब ‘निरोध-शक्तिज’ पाशका वर्णन है—)

भूमण्डलमें वह स्थावर-जङ्गमरूपसे विद्यमान है। पर्वत और वृक्ष आदिको स्थावर कहते हैं। जङ्गमके तीन भेद हैं—स्वेदज, अण्डज और जरायुज। चराचर भूतोंमें चौरासी लाख योनियाँ हैं। उन सबमें भ्रमण करता हुआ जीव कभी कर्मवश मनुष्य-शरीर प्राप्त कर लेता है, जो सबसे उत्तम और सम्पूर्ण पुरुषार्थोंका साधक है। उसमें भी भारतवर्षमें ब्राह्मण आदि द्विजोंके कुलमें तो महान् पुण्यसे ही जन्म होता है। ऐसा जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। जन्म इस प्रकार होता है। पहले स्त्री-पुरुषका संयोग होता है, फिर रज-वीर्यके योगसे एक विन्दु गर्भाशयमें प्रवेश करता है। यह विन्दु द्वयात्मक होता है—इसमें स्त्री और पुरुष—दोनोंके रज-वीर्यका सम्मिश्रण होता है। उस समय रजकी अधिकता होनेपर कन्याका जन्म होता है और वीर्यकी मात्रा अधिक होनेपर पुत्रकी उत्पत्ति होती है। उसमें मल, कर्म आदि पाशसे बँधा हुआ कोई आत्मा जीवभावको प्राप्त होता है, वह (मल, माया और कर्म त्रिविध पाशसे युक्त होनेके कारण) ‘सकल’ कहा गया है। गर्भमें माताके खाये हुए अन्न-पान आदिसे पोषित होकर उसका शरीर पक्ष-मास आदि कालसे बढ़ता रहता है। उसका शरीर जरायुसे ढका होता है और अनेक प्रकारके दुःख आदिसे उसे पीड़ा पहुँचती रहती है। इस प्रकार गर्भमें स्थित जीव अपने पूर्वजन्मके शुभाशुभ कर्मोंका स्मरण करके बार-बार दुःखमग्र एवं पीड़ित होता रहता है। फिर समयानुसार वह बालक स्वयं पीड़ित होकर माताको भी पीड़ा देता हुआ नीचे मुँह किये योनियन्त्रसे बाहर निकलता है। बाहर आकर वह क्षणभर निश्चेष्ट रहता है। फिर रोना चाहता है। तदनन्तर क्रमशः प्रतिदिन बढ़ता हुआ बाल, पौगण्ड आदि अवस्थाओंको पार करता हुआ युवावस्थामें जा पहुँचता है। इस लोकमें देहधारियोंके शरीरका इसी क्रमसे प्रादुर्भाव होता है। जो सम्पूर्ण लोकोंका उपकार करनेवाले

दुर्लभ मानव-जीवनको पाकर अपने आत्माका उद्धार नहीं करता, उससे बढ़कर पापी यहाँ कौन है? आहार, निद्रा, भय और मैथुन—यह सम्पूर्ण पशु आदि जीवोंके लिये सामान्य कहा गया है। जो मूर्ख इन्हीं चार बातोंमें फँसा हुआ है, वह आत्महत्यारा है। अपने बन्धनका उच्छेद करना यह मनुष्योंका विशेष धर्म है।

बन्धनाशका उपाय

पाशबन्धनका विच्छेद दीक्षासे ही होता है, अतः बन्धनका विच्छेद करनेके लिये मन्त्रदीक्षा ग्रहण करनी चाहिये। दीक्षा एवं ज्ञान-शक्तिसे अपने बन्धनका नाश करके शुद्ध आत्मा नामसे स्थित हुआ पुरुष निर्वाणपद (मोक्ष)-को प्राप्त होता है। जो अपनी शक्तिस्वरूपा दृष्टिसे भगवान् शिवका ध्यान एवं दर्शन करता है और शिवमन्त्रोंसे उनकी आराधनामें तत्पर रहता है, वह अपना और दूसरोंका हितकारी है। शिवरूपी सूर्यकी शक्तिरूपी किरणसे समर्थ हुई चैतन्यदृष्टिके द्वारा पुरुष आवरणको अपनेमें लीन करके शक्ति आदिके साथ शिवका साक्षात्कार करता है। अन्तःकरणकी जो बोध नामक वृत्ति है, वह निगड़ (बेड़ी) आदिकी भाँति पाशरूप होनेके कारण महेश्वरको प्रकाशित करनेमें समर्थ नहीं होती। दीक्षा ही पाशका उच्छेद करनेमें सर्वोत्तम हेतु है, अतः शास्त्रोक्त विधिसे मन्त्रदीक्षाका आचरण करना चाहिये। दीक्षा लेकर अपने वर्णके अनुरूप सदाचारमें तत्पर रहकर नित्य-नैमित्तिक कर्मोंका अनुष्ठान

करना चाहिये। अपने वर्ण तथा आश्रम-सम्बन्धी आचारोंका मनसे भी लङ्घन न करे। जो मानव जिस आश्रममें दीक्षित होकर दीक्षा ले, वह उसीमें रहे और उसीके धर्मोंका निस्तर पालन करे। इस प्रकार किये हुए कर्म भी बन्धनकारक नहीं होते। मन्त्रानुष्ठानजनित एक ही कर्म फलदायक होता है। दीक्षित पुरुष जिन-जिन लोकोंके भोगोंकी इच्छा करता है, मन्त्राराधनकी सामर्थ्यसे वह उन सबका उपभोग करके मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य दीक्षा ग्रहण करके नित्य और नैमित्तिक कर्मोंका पालन नहीं करता, उसे कुछ कालतक पिशाचयोनिमें रहना पड़ता है। अतः दीक्षित पुरुष नित्य-नैमित्तिक आचारका पालन करनेवाले मनुष्यको उसकी दीक्षामें त्रुटि न आनेके कारण तत्काल मोक्ष प्राप्त होता है। दीक्षाके द्वारा गुरुके स्वरूपमें स्थित होकर भगवान् शिव सबपर अनुग्रह करते हैं। जो लोक-परलोकके स्वार्थमें आसक्त होकर कृत्रिम गुरुभक्तिका प्रदर्शन करता है, वह सब कुछ करनेपर भी विफलताको ही प्राप्त होता है और उसे पग-पगपर प्रायश्चित्तका भागी होना पड़ता है। जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा गुरुभक्तिमें तत्पर है, उसे प्रायश्चित्त नहीं प्राप्त होता और पग-पगपर सिद्धि लाभ होता है। यदि शिष्य गुरुभक्तिसे सम्पन्न और सर्वस्व समर्पण करनेवाला हो तो उसके प्रति मिथ्या मन्त्रका प्रयोग करनेवाला गुरु प्रायश्चित्तका भागी होता है*। (पूर्व० ६३ अध्याय)

* इस 'तृतीय पाद' में अधिकांश सकाम अनुष्ठानोंका प्रसङ्ग है। इसमें देवताओंके तथा भगवान्के विभिन्न स्वरूपोंके ध्यान-पूजनका निरूपण है तथा आराधनकी सुन्दर-सुन्दर विधियाँ बतलायी गयी हैं। उन विधियोंके अनुसार श्रद्धा-विश्वासपूर्वक अनुष्ठान करनेसे उल्लिखित फल अवश्य मिलता है। जैसे विविध तापोंकी निवृत्ति तथा इष्ट पदार्थोंकी प्राप्तिके लिये अन्यान्य आधिभौतिक साधन हैं, वैसे ही ये आधिदैविक साधन भी हैं एवं ये भौतिक साधनोंकी अपेक्षा अधिक निर्दोष तथा सहज हैं और प्रतिबन्धकका नाश करके नवीन प्रारब्धके निर्माणमें हेतु होनेके कारण ये उनकी अपेक्षा अधिक लाभप्रद हैं ही। और स्वयं भगवान्का तो सकाम आराधन करनेपर (यदि वे उचित समझें तो कामनाकी पूर्ति करके अथवा पूर्ति न करके भी) अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा अन्तमें अपनी प्राप्ति करा देते हैं, इस दृष्टिसे इस प्रसङ्गकी निश्चय ही बड़ी उपादेयता है।

मन्त्रके सम्बन्धमें अनेक ज्ञातव्य बातें, मन्त्रके विविध दोष तथा उत्तम आचार्य एवं शिष्यके लक्षण

सनल्कुमारजी कहते हैं—अब मैं जीवोंके पाश-समुदायका उच्छेद करनेके लिये अभीष्ट सिद्धि प्रदान करनेवाली दीक्षा-विधिका वर्णन करूँगा, जो मन्त्रोंको शक्ति प्रदान करनेवाली है। दीक्षा दिव्यभावको देती है और पापोंका क्षय करती है। इसीलिये सम्पूर्ण आगमोंके विद्वानोंने उसे दीक्षा कहा है। मननका अर्थ है सर्वज्ञता और त्राणका अर्थ है संसारी जीवपर अनुग्रह करना। इस मनन और त्राणधर्मसे युक्त होनेके कारण मन्त्रका मन्त्र नाम सार्थक होता है।

मन्त्रोंके लिंगभेद

मन्त्र तीन प्रकारके होते हैं—स्त्री, पुरुष और नपुंसक। स्त्री-मन्त्र वे हैं जिनके अन्तमें दो 'ठ' अर्थात् 'स्वाहा' लगे हों। जिनके अन्तमें 'हुम्' और 'फट्' हैं वे पुरुष-मन्त्र कहे गये हैं। जिनके अन्तमें 'नमः' लगा होता है, वे मन्त्र नपुंसक हैं। इस प्रकार मन्त्रोंकी जातियाँ बतायी गयी हैं। सभी मन्त्रोंके देवता पुरुष हैं और सभी विद्याओंकी स्त्री देवता मानी गयी है। वे त्रिविध मन्त्र छः कर्मोंमें* प्रत्युक्त होते हैं। जिसमें प्रणवान्त रेफ

तथापि अल्पायु मनुष्यके लिये यह विचारणीय है कि अपने जीवनको क्या सांसारिक भोगपदार्थोंकी प्राप्तिके प्रयत्न और उनके उपभोगमें लगाना ही इष्ट है? मनुष्य-जीवन क्षणभंगुर है और वह है केवल भगवत्प्राप्तिके लिये ही। संसारके भोग तो प्रत्येक योनिमें ही प्रारब्धानुसार प्राप्त होते हैं और उनका उपभोग भी जीव करता ही है। मनुष्य-जीवन भी यदि उन्हीं क्षणभंगुर, नाशवान्, दुःखयोनि और जीवको जन्म-मरणके चक्रमें डालनेवाले भोगपदार्थोंके लिये सकाम उपासनामें ही लगा दिया जाय तो यह बुद्धिमानीका कार्य नहीं है। जो कृपामय भगवान् परम दुर्लभ मोक्षको या स्वयं अपने-आपको देनेके लिये प्रस्तुत हैं, उनसे दुःखपरिणामी और अनित्य भोग माँगना भगवान्‌के तत्त्वको और भक्तिके महत्त्वको न समझना ही है। जो पुरुष किसी वस्तुको प्राप्त करनेकी इच्छासे भगवान्‌को भजता है, उसका ध्येय वह वस्तु है, भगवान् नहीं है। वह वस्तु साध्य है और भगवान् तथा उनकी भक्ति साधन है। यदि किसी मङ्गलकारी कारणवश ही उसके अभीष्टकी प्राप्तिमें देर होगी तो वह भगवान्‌की भक्तिको छोड़ दे सकता है। अतएव सकाम भावसे की हुई उपासना एक प्रकारसे काम्य वस्तुकी ही उपासना है, भगवान्‌की नहीं। इस बातको भलीभाँति समझ लेना चाहिये और अपनी रुचिके अनुसार भगवान्‌की उपासना इस प्रसङ्गमें आयी हुई पद्धतिके अनुकूल अवश्य करनी चाहिये, पर वह करनी चाहिये—निष्काम प्रेमभावसे केवल भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही। इसीमें मनुष्य-जन्मकी सार्थकता है।

इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि सकाम अनुष्ठानका फल प्रतिबन्धककी प्रबलता और सरलताके अनुसार विलम्बसे या शीघ्र होता है। एक आदमीको किसी अमुक वस्तुकी या स्थितिकी आवश्यकता है। वह उसके लिये सकाम उपासना करता है। यदि उस वस्तु या स्थितिकी प्राप्तिमें बाधक पूर्वजन्मका कर्म बहुत अधिक प्रबल होता है तो एक ही अनुष्ठानसे अभीष्ट फल नहीं मिलता। बार-बार अनुष्ठान करने पड़ते हैं। आजकलके सकामी पुरुषमें इतना धैर्य नहीं हो सकता और फलतः वह देवतामें ही अविश्वास कर बैठता है तथा उसकी अवज्ञा करने लगता है, इससे लाभके बदले उसकी उलटी हानि हो जाती है। फिर सकाम साधना वही सफल होती है जिसमें विधिका पूरा-पूरा साङ्घोपाङ्ग पालन हुआ हो तथा कर्म, देवता और फलमें पूर्ण श्रद्धा हो। विधि और श्रद्धाके अभावमें भी फल नहीं होता और आजके युगके मनुष्योंमें अधिकांश ऐसे हैं जो मनमाना फल तो तुरंत चाहते हैं, पर श्रद्धा और विधिकी आवश्यकता नहीं समझते। अतः उनको भी उक्त फल नहीं मिलता। इन सब दृष्टियोंसे भी सकामभावमें देवतामें, देवराधनमें अश्रद्धातक होनेकी सम्भावना रहती है, फिर यदि कहीं कुछ फल मिलता भी है तो वह अनित्य, क्षणभंगुर और दुःख देनेवाला ही होता है। अतएव बुद्धिमान् पुरुषको सकाम भावका सर्वथा त्याग ही करना चाहिये।—सम्पादक

*शान्ति, वश्य, स्तम्भन, द्वेष, उच्चाटन और मारण—ये छः कर्म हैं। (मन्त्रमहोदाधि)

(रां) और स्वाहाका प्रयोग हो, वे मन्त्र आग्रेय (अग्निसम्बन्धी) कहे गये हैं। मुने! जो मन्त्र भृगुबीज (सं) और पीयूष-बीज (वं)-से युक्त हैं, वे सौम्य (सोमसम्बन्धी) कहे गये हैं। इस प्रकार मनीषी पुरुषोंको सभी मन्त्र अग्नीषोमात्मक जानने चाहिये। जब श्वास पिङ्गला नाड़ीमें स्थित हो अर्थात् दाहिनी साँस चलती हो तो आग्रेय मन्त्र जाग्रत् होते हैं और जब श्वास इडा नाड़ीमें स्थित हो अर्थात् बायाँ साँस चलती हो तो सोम-सम्बन्धी मन्त्र जागरूक होते हैं। जब इडा और पिङ्गला दोनों नाड़ियोंमें साँस चलती हो अर्थात् बायाँ और दाहिना दोनों स्वर समानभावसे चलते हों तो सभी मन्त्र जाग्रत् होते हैं। यदि मन्त्रके सोते समय उसका जप किया जाय तो वह अनर्थरूप फल देनेवाला है। प्रत्येक मन्त्रका उच्चारण करते समय उनका श्वास रोककर उच्चारण न करे। अनुलोमक्रममें बिन्दु (अनुस्वार)-युक्त और विलोमक्रममें विसर्गसंयुक्त मन्त्रोंका उच्चारण करे। यदि जपा हुआ मन्त्र देवताको जाग्रत् कर सका तो वह शीघ्र सिद्धि देनेवाला होता है और उस मालासे जपा हुआ दुष्ट मन्त्र भी सिद्ध होता है। क्रूर कर्ममें आग्रेय मन्त्रका उपयोग होता है और सोमसम्बन्धी मन्त्र सौम्य फल देनेवाले होते हैं। शान्त, ज्ञान और अत्यन्त रौद्र-ये मन्त्रोंकी तीन जातियाँ हैं। शान्तिजातिसमन्वित शान्त मन्त्र भी 'हुं फट्' यह पल्लव जोड़नेसे रौद्र भाव धारण कर लेता है।

मन्त्रोंके दोष

छिन्नता आदि दोषोंसे युक्त मन्त्र साधककी रक्षा नहीं कर पाते। छिन्न, रुद्ध, शक्तिहीन, पराइमुख, कर्णहीन, नेत्रहीन, कीलित, स्तम्भित, दग्ध, त्रस्त, भीत, मलिन, तिरस्कृत, भेदित, सुषुप्त, मदोन्मत्त, मूर्च्छित, हतवीर्य, भ्रान्त, प्रध्वस्त, बालक, कुमार, युवा, प्रौढ़, वृद्ध, निस्त्रिशक, निर्बीज, सिद्धिहीन, मन्द, कूट, निरंशक, सत्त्वहीन, केकर, बीजहीन,

धूमित, आलिङ्गित, मोहित, क्षुधार्त, अतिदीप, अङ्गहीन, अतिक्रुद्ध, अतिक्रूर, ब्रीडित (लज्जित), प्रशान्तमानस, स्थानभ्रष्ट, विकल, अतिवृद्ध, अतिनिःस्थेतथा पीड़ित—ये (४९) मन्त्रके दोष बताये गये हैं। अब मैं इनके लक्षण बतलाता हूँ। जिस मन्त्रके आदि, मध्य और अन्तमें संयुक्त, वियुक्त या स्वरसहित तीन-चार अथवा पाँच बार अग्निबीज (रं)-का प्रयोग हो, वह मन्त्र 'छिन्न' कहलाता है। जिसके आदि, मध्य और अन्तमें दो बार भूमिबीज (लं)-का उच्चारण होता हो उस मन्त्रको 'रुद्ध' जानना चाहिये। वह बड़े क्लेशसे सिद्धिदायक होता है। प्रणव और कवच (हुं) ये तीन बार जिस मन्त्रमें आये हों वह लक्ष्मीयुक्त होता है। ऐसी लक्ष्मीसे हीन जो मन्त्र है उसे 'शक्तिहीन' जानना चाहिये। वह दीर्घकालके बाद फल देता है। जहाँ आदिमें कामबीज, (क्ली), मध्यमें मायाबीज (हीं) और अन्तमें अंकुश बीज (क्रों) हो, वह मन्त्र 'पराइमुख' जानना चाहिये। वह साधकोंको चिरकालमें सिद्धि देनेवाला होता है। यदि आदि, मध्य और अन्तमें सकार देखा जाय, तो वह मन्त्र 'बधिर' (कर्णहीन) कहा गया है। वह बहुत कष्ट उठानेपर थोड़ा फल देनेवाला है। यदि पञ्चाक्षर-मन्त्र हो, किंतु उसमें रेफ, मकार और अनुस्वार न हो तो उसे 'नेत्रहीन' जानना चाहिये। वह क्लेश उठानेपर भी सिद्धिदायक नहीं होता। आदि, मध्य और अन्तमें हंस (सं), प्रासाद तथा वाग्बीज (ऐं) हो अथवा हंस और चन्द्रविन्दु या सकार, फकार अथवा हुं हो तथा जिसमें मा, प्रा और नमामि पद न हो वह मन्त्र 'कीलित' माना गया है। इसी प्रकार मध्यमें और अन्तमें भी वे दोनों पद न हों तथा जिसमें फट् और लकार न हों, वह मन्त्र 'स्तम्भित' माना गया है, जो सिद्धिमें रुकावट डालनेवाला है। जिस मन्त्रके अन्तमें अग्नि (रं) बीज वायु (य) बीजके साथ हो तथा जो सात अक्षरोंसे

युक्त* दिखायी देता हो वह 'दग्ध' संज्ञक मन्त्र है। जिसमें दो, तीन, छः या आठ अक्षरोंके साथ अस्त्र (फट्) दिखायी दे, उस मन्त्रको 'त्रस्त' जानना चाहिये। जिसके मुखभागमें प्रणवरहित हकार अथवा शक्ति हो, वही मन्त्र 'भीत' कहा गया है। जिसके आदि, मध्य और अन्तमें चार 'म' हों, वह मन्त्र 'मलिन' माना गया है। वह अत्यन्त क्लेशसे सिद्धिदायक होता है। जिस मन्त्रके मध्यभागमें द अक्षर और अन्तमें दो क्रोध (हुं हुं) बीज हों और उनके साथ अस्त्र (फट्) भी हो, तो वह मन्त्र 'तिरस्कृत' कहा गया है। जिसके अन्तमें 'म' और 'य' तथा 'हृदय' हो और मध्यमें वषट् एवं वौषट् हो वह मन्त्र 'भेदित' कहा गया है। उसे त्याग देना चाहिये; क्योंकि वह बड़े क्लेशसे फल देनेवाला होता है। जो तीन अक्षरसे युक्त तथा हंसहीन है, उस मन्त्रको 'सुषुप्त' कहा गया है। जो विद्या अथवा मन्त्र सतरह अक्षरोंसे युक्त हो तथा जिसके आदिमें पाँच बार फट्का प्रयोग हुआ हो उसे 'मदोन्मत्त' माना गया है। जिसके मध्य भागमें फट्का प्रयोग हो उस मन्त्रको 'मूर्छित' कहा गया है। जिसके विरामस्थानमें अस्त्र (फट्)-का प्रयोग हो वह 'हतवीर्य' कहा जाता है। मन्त्रके आदि, मध्य और अन्तमें चार अस्त्र (फट्)-का प्रयोग हो तो उसे 'भ्रान्त' जानना चाहिये। जो मन्त्र अठारह अथवा बीस अक्षरवाला होकर कामबीज (कर्ली)-से युक्त होकर साथ ही उसमें हृदय, लेख और अंकुशके भी बीज हों तो उसे 'प्रध्वस्त' कहा गया है। सात अक्षरवाला मन्त्र 'बालक', आठ अक्षरवाला 'कुमार', सोलह अक्षरोंवाला 'युवा', चौबीस अक्षरोंवाला 'प्रौढ' तथा बीस, चौसठ, सौ और चार सौ अक्षरोंका मन्त्र 'वृद्ध' कहा गया है। प्रणवसहित नवार्ण-मन्त्रको 'निस्त्रिंश' कहते हैं। जिसके अन्तमें हृदय (नमः) कहा गया हो, मध्यमें शिरोमन्त्र

(स्वाहा)- का उच्चारण होता हो और अन्तमें शिखा (वषट्), वर्म (हुं), नेत्र (वौषट्) और अस्त्र (फट्) देखे जाते हों तथा जो शिव एवं शक्ति अक्षरोंसे हीन हो, उस मन्त्रको 'निर्बाज' माना गया है। जिसके आदि, मध्य और अन्तमें छः बार फट्का प्रयोग देखा जाता हो, वह मन्त्र 'सिद्धिहीन' होता है। पाँच अक्षरके मन्त्रको 'मन्द' और एकाक्षर मन्त्रको 'कूट' कहते हैं। उसीको 'निरंशक' भी कहा गया है। दो अक्षरका मन्त्र 'सत्त्वहीन', चार अक्षरका मन्त्र 'केकर' और छः या साढ़े सात अक्षरका मन्त्र 'बीजहीन' कहा गया है। साढ़े बारह अक्षरके मन्त्रको 'धूमित' माना गया है। वह निन्दित है। साढ़े तीन बीजसे युक्त बीस, तीस तथा इक्कीस अक्षरका मन्त्र 'आलिङ्ग्नि' कहा गया है। जिसमें दन्तस्थानीय अक्षर हों वह मन्त्र 'मोहित' बताया गया है। चौबीस या सत्ताईस अक्षरके मन्त्रको 'क्षुधार्त' जानना चाहिये। वह मन्त्र सिद्धिसे रहित होता है। ग्यारह, पच्चीस, अथवा तेईस अक्षरका मन्त्र 'दृस' कहलाता है। छब्बीस, छत्तीस तथा उनतीस अक्षरके मन्त्रको 'हीनाङ्ग' माना गया है। अद्वाईस और इकतीस अक्षरका मन्त्र 'अत्यन्त क्रूर' (और 'अतिक्रुद्ध') जानना चाहिये, वह सम्पूर्ण कर्मोंमें निन्दित माना गया है। चालीस अक्षरसे लेकर तिरसठ अक्षरोंतकका जो मन्त्र है, उसे 'ब्रीडित' (लज्जित) समझना चाहिये। वह सब कार्योंकी सिद्धिमें समर्थ नहीं होता। पैसठ अक्षरके मन्त्रोंको 'शान्तमानस' जानना चाहिये। मुनीश्वर! पैसठ अक्षरोंसे लेकर निन्यानबे अक्षरोंतकके जो मन्त्र हैं, उन्हें 'स्थानभ्रष्ट' जानना चाहिये। तेरह या पंद्रह अक्षरोंके जो मन्त्र हैं, उन्हें सर्वतन्त्र-विशारद विद्वानोंने 'विकल' कहा है। सौ, डेढ़ सौ, दो सौ, दो सौ इक्यानबे अथवा तीन सौ अक्षरोंके जो मन्त्र होते हैं, वे 'निःस्नेह' कहे गये हैं। ब्रह्मन्!

* 'ससार्णः' पाठ माननेपर यह अर्थ होगा—'जो 'स' अक्षरसे युक्त हो।'

चार सौसे लेकर एक हजार अक्षरतकके मन्त्र प्रयोगमें 'अत्यन्त वृद्ध' माने गये हैं। उन्हें शिथिल कहा गया है। जिनमें एक हजारसे भी अधिक अक्षर हों, उन मन्त्रोंको 'पीडित' बताया गया है। उनसे अधिक अक्षरवाले मन्त्रोंको स्तोत्ररूप माना गया है। इस प्रकारके मन्त्र दोषयुक्त कहे गये हैं।

अब मैं 'छिन्न' आदि दोषोंसे दूषित मन्त्रोंका साधन बताता हूँ। जो योनिमुद्रासनसे बैठकर एकाग्रचित्त हो जिस किसी भी मन्त्रका जप करता है, उसे सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। बायें पैरकी एड़ीको गुदाके सहारे रखकर दाहिने पैरकी एड़ीको ध्वज (लिङ्ग)-के ऊपर रखे तो इस प्रकार योनिमुद्राबन्ध नामक उत्तम आसन होता है।

आचार्य और शिष्यके लक्षण

जो कुलपरम्पराके क्रमसे प्राप्त हुआ हो, नित्य मन्त्र-जपके अनुष्ठानमें तत्पर हो, गुरुकी आज्ञाके पालनमें अनुरक्त हो तथा अभिषेकयुक्त

हो; शान्त, कुलीन और जितेन्द्रिय हो, मन्त्र और तन्त्रके तात्त्विक अर्थका ज्ञाता तथा निग्रहानुग्रहमें समर्थ हो; किसीसे किसी वस्तुकी अपेक्षा न रखता हो, मननशील, इन्द्रियसंयमी, हितवचन बोलनेवाला, विद्वान्, तत्त्व निकालनेमें चतुर, विनयी हो; किसी-न-किसी आश्रमकी मर्यादामें स्थित, ध्यानपरायण, संशय-निवारण करनेवाला, परम बुद्धिमान् और नित्य सत्कर्मोंके अनुष्ठानमें संलग्न रहनेवाला हो, उसे ही 'आचार्य' कहा गया है। जो शान्त, विनयशील, शुद्धात्मा, सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे युक्त, शम आदि साधनोंसे सम्पन्न, श्रद्धालु, सुस्थिर विचार या हृदयवाला, खान-पानमें शारीरिक शुद्धिसे युक्त, धार्मिक, शुद्धचित्त, सुदृढ़ ब्रत एवं सुस्थिर आचारसे युक्त, कृतज्ञ एवं पापसे डरनेवाला हो, गुरुकी सेवामें जिसका मन लगता हो, ऐसे शील-स्वभावका पुरुष आदर्श शिष्य हो सकता है; अन्यथा वह गुरुको दुःख देनेवाला होता है। (पूर्व० ६४ अध्याय)

मन्त्रशोधन, दीक्षाविधि, पञ्चदेवपूजा तथा जपपूर्वक इष्टदेव और आत्मचिन्तनका विधान

सनत्कुमारजी कहते हैं—गुरुको चाहिये कि वह शिष्यकी परीक्षा लेकर मन्त्रका शोधन करे। पूर्वसे पश्चिम और दक्षिणसे उत्तर (रंगमें डुबोये हुए) पाँच-पाँच सूत गिरावे (तात्पर्य यह है कि पाँच खड़ी रेखाएँ खींचकर उनके ऊपर पाँच पड़ी रेखाएँ खींचे)। इस प्रकार चार-चार कोष्ठोंके चार समुदाय बनेंगे। उनमेंसे पहले चौकेके प्रथम कोष्ठमें एक, दूसरेके प्रथममें दो, तीसरेके प्रथममें तीन और चौथेके प्रथममें चार लिखे। (इसी क्रमसे आगेकी संख्याएँ भी लिख ले।) प्रथम कोष्ठमें 'अ' लिखकर उसके आग्रेय कोणमें उससे पाँचवाँ अक्षर लिखे। इस प्रकार सभी कोष्ठोंमें क्रमशः अक्षरोंको लिखकर बुद्धिमान् पुरुष मन्त्रका संशोधन करे। साधकके नामका आदि-अक्षर जिस कोष्ठमें

हो, वहाँसे लेकर जहाँ मन्त्रका आदि अक्षर हो उस कोष्ठतक प्रदक्षिणक्रमसे गिनना चाहिये। यदि उसी चौकमें मन्त्रका आदि अक्षर हो, जिसमें नामका आदि-अक्षर है तो वह 'सिद्ध चौक' कहा जायगा। उससे प्रदक्षिणक्रमसे गिननेपर यदि द्वितीय चौकमें मन्त्रका आदि अक्षर हो तो वह 'साध्य' कहा गया है। इसी प्रकार तीसरा चौक 'सुसिद्ध' और चौथा चौक 'अरि' नामसे प्रसिद्ध है। यदि साधकके नामसम्बन्धी और मन्त्रसम्बन्धी आदि अक्षर प्रथम चौकके पहले ही कोष्ठमें पड़े हों तो वह मन्त्र 'सिद्धसिद्ध' माना गया है। यदि मन्त्रवर्ण प्रथम चौकके द्वितीय कोष्ठमें पड़ा हो तो वह 'सिद्धसाध्य' कहा गया है। प्रथमके तृतीय कोष्ठमें हो तो 'सिद्धसुसिद्ध' होगा और चौथेमें हो

तो 'सिद्धारि' कहलायेगा। नामाक्षरयुक्त चौकसे दूसरे चौकमें यदि मन्त्रका अक्षर हो, तो पहले जहाँ नामका अक्षर था वहाँके उस कोष्ठसे आरम्भ करके क्रमशः पूर्ववत् गणना करे। द्वितीय चौकके प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ कोष्ठमें मन्त्राक्षर होनेपर उसकी क्रमशः 'साध्यसिद्ध', 'साध्यसाध्य', 'साध्यसुसिद्ध' तथा 'साध्य-अरि' संज्ञा होगी। तीसरे चौकमें मन्त्रका अक्षर हो तो मनीषी पुरुषोंको पूर्वोक्त रीतिसे गणना करनी चाहिये। तृतीय चौकके प्रथम आदि कोष्ठोंके अनुसार क्रमशः उस मन्त्रकी 'सुसिद्धसिद्ध', 'सुसिद्ध-साध्य', 'सुसिद्धसुसिद्ध' तथा 'सुसिद्ध-अरि' संज्ञा होगी। यदि चौथे चौकमें मन्त्राक्षर हो तो भी विद्वान् पुरुष इसी प्रकार गणना करे। चतुर्थ चौकके प्रथम आदि कोष्ठोंके अनुसार उस यन्त्रकी 'अरिसिद्ध', 'अरिसाध्य', 'अरिसुसिद्ध' तथा 'अरि-अरि' यह संज्ञा होगी। सिद्धसिद्ध मन्त्र शास्त्रोक्त विधिसे उतनी ही संख्यामें जप करनेपर सिद्ध हो जायगा। परंतु सिद्धसाध्य मन्त्र दूनी संख्यामें जप करनेसे सिद्ध होगा। सिद्धसुसिद्ध मन्त्र शास्त्रोक्त संख्यासे आधा जप करनेपर ही सिद्ध हो जायगा। परंतु सिद्धारि मन्त्र कुटुम्बीजनोंका नाश करता

है। साध्यसिद्ध मन्त्र दूनी संख्यामें जप करनेसे सिद्ध होता है। साध्यसाध्य मन्त्र बहुत विलम्बसे सिद्ध होता है। साध्यसुसिद्ध भी द्विगुण जपसे सिद्ध होता है; किंतु साध्यारि मन्त्र बन्धु-बान्धवोंका हनन करता है। सुसिद्धसिद्ध आधे ही जपसे सिद्ध हो जाता है। सुसिद्धसाध्य द्विगुण जपसे सिद्ध होता है। सुसिद्धसिद्ध मन्त्र प्राप्त होते ही सिद्ध हो जाता है और सुसिद्धारि मन्त्र सारे कुटुम्बका नाश करता है। अरिसिद्ध पुत्रनाशक है तथा अरिसाध्य कन्याका नाश करनेवाला होता है। अरिसुसिद्ध स्त्रीका नाश करता है और अरि-अरि मन्त्र साधकका ही नाश करनेवाला माना गया है। मुने! यहाँ मन्त्रशोधनके और भी बहुत-से प्रकार हैं, किंतु यह अकथह नामक चक्र सबमें प्रधान है; इसलिये यही तुम्हें बताया गया है*।

इस प्रकार मन्त्रका भलीभाँति शोधन करके शुद्ध समय और पवित्र स्थानमें गुरु शिष्यको दीक्षा दे। अब दीक्षाका विधान बताया जाता है। प्रातःकाल नित्यकर्म करके पहले गुरुचरणोंकी पादुकाको प्रणाम करे। तत्पश्चात् आदरपूर्वक वस्त्र आदिके द्वारा भक्तिभावसे सदगुरुकी पूजा

* मूलमें बतायी हुई रीतिसे कोष्ठक बनाकर उनमें अक्षरोंको लिखनेपर प्रथम कोष्ठकमें 'अ क थ ह' अक्षर आते हैं। इन्हींके नामपर इस चक्रको 'अकथह-चक्र' कहते हैं। इसका रेखाचित्र नीचे दिया जाता है—

अकथह-चक्र

१ अ थ ह	२ उ ड प	३ आ ख द	४ ऊ च फ
५ ओ ड ब	६ लृ झ म	७ औ ठ श	८ लृ अ य
९ ई घ न	१० ऋ ज भ	११ इ ग ध	१२ ऋ छ व
१३ अ: त स	१४ ऐ ठ ल	१५ अं ण ष	१६ ए ट र

करके उनसे अभीष्ट मन्त्रके लिये प्रार्थना करे। तदनन्तर गुरु संतुष्टचित्त हो स्वस्तिवाचनपूर्वक मण्डल आदि विधान करके शिष्यके साथ पवित्र हो यज्ञमण्डपमें प्रवेश करें। फिर सामान्य अर्घ्य जलसे द्वारका अभिषेक करके अस्त्र-मन्त्रोंसे दिव्य विद्वाँका निवारण करे; इसके बाद आकाशमें स्थित विद्वाँका जलसे पूजन करके निराकरण करे। भूमिसम्बन्धी विद्वाँको तीन बार ताली बजाकर हटावे, तत्पश्चात् कार्य प्रारम्भ करे। भिन्न-भिन्न रंगोंद्वारा शास्त्रोक्तविधिसे सर्वतोभद्र-मण्डलकी रचना करके उसमें बहिमण्डल और उसकी कलाओंका पूजन करे। तत्पश्चात् अस्त्र-मन्त्रका उच्चारण करके धोये हुए यथाशक्तिनिर्मित कलशकी वहाँ विधिपूर्वक स्थापना करके सूर्यकी कलाका यजन करे। विलोममातृकाके मूलका उच्चारण करते हुए शुद्ध जलसे कलशको भरे और उसके भीतर सोमकी कलाओंका विधिपूर्वक पूजन करे। धुम्रा, अच्छि, ऊष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिङ्गिनी, सुश्री, सुरूपा, कपिला तथा हव्य-कव्यवाहा—ये अग्निकी दस कलाएँ कही गयी हैं। अब सूर्यकी बारह कलाएँ बतायी जाती हैं—तपिनी, तापिनी, धुम्रा, मरीचि ज्वालिनी, रुचि, सुषम्मा, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी तथा क्षमा। चन्द्रमाकी कलाओंके नाम इस प्रकार जानने चाहिये—अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अङ्गदा, पूर्णा और पूर्णामृता—ये सोलह चन्द्रमाकी कलाएँ कही गयी हैं।

कलशको दो वस्त्रोंसे लपेट करके उसके भीतर सर्वोषधि डाले। फिर नौ रत्न छोड़कर पञ्चपल्लव डाले। कटहल, आम, बड़, पीपल और वकुल—इन पाँच वृक्षोंके पल्लवोंको यहाँ पञ्चपल्लव माना गया है। मोती, माणिक्य, वैदूर्य, गोमेद, वज्र, विद्वुम (मूँगा), पद्मराग, मरकत तथा नीलमणि—इन नौ रत्नोंको क्रमशः कलशमें

छोड़कर उसमें इष्ट देवताका आवाहन करे और मन्त्रवेत्ता आचार्य विधिपूर्वक देवपूजाका कार्य सम्पन्न करके वस्त्राभूषणोंसे विभूषित शिष्यको वेदीपर बिठावे और प्रोक्षणीके जलसे उसका अभिषेक करे। फिर उसके शरीरमें विधिपूर्वक भूतशुद्धि आदि करके न्यासोंके द्वारा शरीरशुद्धि करे और मस्तकमें पल्लव मन्त्रोंका न्यास करके एक सौ आठ मूलमन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित जलसे प्रिय शिष्यका अभिषेक करे। उस समय मन-ही-मन मूलमन्त्रका जप करते रहना चाहिये। अवशिष्ट जलसे आचमन करके शिष्य दूसरा वस्त्र धारण करे और गुरुको विधिपूर्वक प्रणाम करके पवित्र हो उनके सामने बैठे। तदनन्तर गुरु शिष्यके मस्तकपर हाथ देकर जिस मन्त्रकी दीक्षा देनी हो, उसका विधिपूर्वक एक सौ आठ बार जप करे। ‘समः अस्तु’ (शिष्य मेरे समान हो) इस भावसे शिष्यको अक्षर-दान करे। तब शिष्य गुरुकी पूजा करे। इसके बाद गुरु शिष्यके मस्तकपर चन्दनयुक्त हाथ रखकर एकाग्रचित्त हो, उसके कानमें आठ बार मन्त्र कहे। इस प्रकार मन्त्रका उपदेश पाकर शिष्य भी गुरुके चरणोंमें गिर जाय। उस समय गुरु इस प्रकार कहे, ‘बेटा! उठो। तुम बन्धनमुक्त हो गये। विधिपूर्वक सदाचारी बनो। तुम्हें सदा कीर्ति, श्री, कान्ति, पुत्र, आयु, बल और आरोग्य प्राप्त हो।’ तब शिष्य उठकर गन्ध आदिके द्वारा गुरुकी पूजा करे और उनके लिये दक्षिणा दे। इस प्रकार गुरुमन्त्र पाकर शिष्य उसी समयसे गुरुसेवामें लग जाय। बीचमें अपने इष्टदेवका पूजन करे और उन्हें पुष्पाङ्गलि देकर अग्नि, निर्त्रृति और वागीशका क्रमशः पूजन करे। जब मध्यमें भगवान् विष्णुका पूजन करे तो उनके चारों ओर क्रमशः गणेश, सूर्य, देवी तथा शिवकी पूजा करे और जब मध्यमें भगवान् शङ्करकी पूजा करे तो उनके पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः सूर्य, गणेश, देवी तथा विष्णुका पूजन

करे। जब मध्यमें देवीकी पूजा करे तो उनके चारों ओर शिव, गणेश, सूर्य और विष्णुकी पूजा करे। जब मध्यमें गणेशकी पूजा करे तो उनके चारों ओर क्रमशः शिव, देवी, सूर्य और विष्णुकी पूजा करे और जब मध्यभागमें सूर्यकी पूजा करे तो पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः गणेश, विष्णु, देवी और शिवकी पूजा करे। इस प्रकार प्रतिदिन आदरपूर्वक पञ्चदेवोंका पूजन करना चाहिये।

विद्वान् पुरुषको चाहिये कि ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर लघुशंका आदि आवश्यक कार्य कर ले और यदि लघुशंका आदि न लगी हो तो शव्यापर बैठे-बैठे ही अपने गुरुदेवको नमस्कार करे— तदनन्तर पादुकामन्त्रका दस बार जप और समर्पण करके गुरुदेवको पुनः प्रणाम और उनका स्तवन करे।

फिर मूलाधारसे ब्रह्मरन्ध्रतक मूलविद्याका चिन्तन करे। मूलाधारसे निम्नभागमें गोलाकार वायुमण्डल है, उसमें वायुका बीज 'या' कार स्थित है। उस बीजसे वायु प्रवाहित हो रही है। उससे ऊपर अग्निका त्रिकोणमण्डल है। उसमें जो अग्निका बीज 'र' कार है, उससे आग प्रकट हो रही है। उक्त वायु तथा अग्निके साथ मूलाधारमें स्थित शरीरवाली कुलकुण्डलिनीका ध्यान करे, जो सोये हुए सर्पके समान आकारवाली है। वह स्वयं भूलिङ्गको आवेष्टित करके सो रही है। देखनेमें वह कमलकी नालके समान जान पड़ती है। वह अत्यन्त पतली है और उसके अङ्गोंसे करोड़ों विद्युतोंकी-सी प्रभा छिटक रही है। इस प्रकार कुलकुण्डलिनीका ध्यान करके भावनात्मक कूर्च (कूँची)-के द्वारा उसे जगाकर उठाये और सुषुम्णा नाड़ीके मार्गसे क्रमशः छः चक्रोंका भेदन करनेवाली उस कुण्डलिनीको गुरुकी बतायी हुई विधिके अनुसार विद्वान् पुरुष ब्रह्मरन्ध्रतक ले

जाय और वहाँके अमृतमें निमग्न करके आत्माका चिन्तन करे। मानो आत्मा उसके प्रभापञ्चसे व्याप्त है। वह निर्मल, चिन्मय तथा देह आदिसे परे है। फिर उस कुण्डलिनीको अपने स्थानपर पहुँचाकर हृदयमें इष्टदेवका चिन्तन करे और मानसिक उपचारोंसे उनका पूजन करके निम्राङ्कित मन्त्रसे प्रार्थना करे—

त्रैलोक्यचैतन्यमयादिदेव

श्रीनाथ विष्णो भवदाज्ञयैव।

प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं

संसारयात्रामनुवर्तयिष्ये ॥

'आदिदेव ! लक्ष्मीकान्त ! विष्णो ! त्रिलोकीका चैतन्य आपका स्वरूप है। आपकी आज्ञासे ही प्रातःकाल उठकर आपका प्रिय कार्य करनेके लिये मैं संसारयात्राका अनुसरण करूँगा।'

ब्रह्मन् ! यदि इष्टदेव कोई दूसरा देवता हो तो पूर्वोक्त मन्त्रमें 'विष्णो' आदिके स्थानमें ऊहाद्वारा उसके वाचक शब्द या नामका प्रयोग कर लेना चाहिये। तत्पश्चात् सम्पूर्ण सिद्धिके लिये अजपा जप निवेदन करे। दिन-रातमें जीव 'इक्कीस हजार छः सौ' बार सदा अजपा नामक गायत्रीका जप करता है। इस अजपा मन्त्रके ऋषि हंस हैं, अव्यक्त गायत्री छन्द कहा गया है। परमहंस देवता हैं। आदि (हं) बीज और अन्त (सः) शक्ति है, तत्पश्चात् षडङ्गन्यास करे। सूर्य, सोम, निरञ्जन, निराभास, धर्म और ज्ञान—ये छः अङ्ग हैं। क्रमशः इनके पूर्वमें 'हंसः' और अन्तमें 'आत्मने' पद जोड़कर श्रेष्ठ साधक इनका छः अङ्गोंमें न्यास करे*। हकार सूर्यके समान तेजस्वी होकर शरीरसे बाहर निकलता है और सकार वैसे ही तेजस्वी रूपसे प्रवेश करता है। इस प्रकार हकार और सकारका ध्यान कहा गया है, इस तरह ध्यान करके बुद्धिमान् पुरुष वहि और अर्कमण्डलमें

* हंसः सूर्यात्मने हृदयाय नमः। हंस सोमात्मने शिरसे स्वाहा। हंसो निरञ्जनात्मने शिखायै वषट्। हंसो निराभासात्मने कवचाय हुम्। हंसो धर्मात्मने नेत्राभ्यां वौषट्। हंसो ज्ञानात्मने अस्त्राय फट्।

विभागपूर्वक जप अर्पण करे।

मूलाधारचक्रमें चार दलका कमल है, जो बन्धुकपुष्पके समान लाल है। उसके चारों दलोंमें क्रमशः 'व श ष स'—ये अक्षर अङ्कित हैं। उसमें अपनी शक्तिके साथ गणेशजी विराजमान हैं। वे अपने चारों हाथोंमें क्रमशः पाश, अंकुश, सुधापात्र तथा मोदक लेकर उल्लसित हैं। ऐसे वाक्पति गणेशजीको छः सौ जप अर्पण करे। स्वाधिष्ठान-चक्रमें छः दलोंका कमल है। वह चक्र मूँगेके समान रंगका है। उसके छः दलोंमें क्रमशः 'ब भ म य र ल' ये अक्षर अङ्कित हैं। उसमें कमलजन्मा ब्रह्माजी हंसारूढ़ होकर विराजमान हैं। उनके वामाङ्ग-भागमें उनकी ब्राह्मीशक्ति सुशोभित हैं। वे विद्याके अधिपति हैं। सूवा और अक्षमाला उनके हाथोंकी शोभा बढ़ाती हैं। ऐसे ब्रह्माजीको छः हजार जप निवेदन करे। मणिपूर चक्रमें दशदल कमल विद्यमान है। उसके प्रत्येक दलपर क्रमशः 'ड ढ ण त थ द ध न प फ' ये अक्षर अङ्कित हैं। उसकी प्रभा विद्युद्विलसित मेघके समान है। उसमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण करनेवाले भगवान् विष्णु लक्ष्मीसहित विराजमान हैं। उन्हें छः हजार जप अर्पण करे। अनाहत चक्रमें द्वादशदल कमल विद्यमान है। इसके प्रत्येक दलपर क्रमशः 'क ख ग घ ङ च छ ज झ जट ठ' ये अक्षर अङ्कित हैं। उसका वर्ण शुक्ल है। उसमें शूल, अभय, वर और अमृतकलश धारण करनेवाले वृषभारूढ़ भगवान् रुद्र विराज रहे हैं। उनके वामाङ्ग-भागमें उनकी शक्ति पार्वतीदेवी

विद्यमान हैं। वे विद्याके अधिपति हैं। विद्वान् पुरुष उन रुद्रदेवको छः हजार जप निवेदन करे। विशुद्ध चक्र षोडशदल कमलसे युक्त है। उसके प्रत्येक दलपर क्रमशः स्वरवर्ण (अ आ इ ई उ ऊ ऋ ऋ लृ लृ ए ऐ ओ औ अं अः) अङ्कित हैं। वह चक्र शुक्ल वर्णका है। उसमें महाज्योतिसे प्रकाशित होनेवाले इन्द्रियाधिपति ईश्वर विराजमान हैं, जो प्राणशक्तिसे युक्त हैं। उन्हें एक सहस्र जप अर्पण करे। आज्ञाचक्रमें दो दलोंवाला कमल है, उसके दलोंमें क्रमशः 'ह' और 'क्ष' अङ्कित हैं; उसमें पराशक्तिसे युक्त जगद्गुरु सदाशिव विराजमान हैं; उन्हें एक सहस्र जप अर्पण करे। सहस्रार-चक्रमें सहस्र दलोंसे युक्त महाकमल विद्यमान है, उसमें नाद-बिन्दुसहित समस्त मातृकावर्ण विराजमान हैं। उसमें स्थित वर और अभययुक्त हाथोंवाले परम आदिगुरुको एक सहस्र जप निवेदन करे। फिर चुल्लूमें जल लेकर इस प्रकार कहे— 'स्वभावतः होते रहनेवाले इक्कीस हजार छः सौ अजपा जपका पूर्वोक्तरूपसे विभागपूर्वक संकल्प करनेके कारण मोक्षदाता भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों।' इस अजपा गायत्रीके संकल्पमात्रसे मनुष्य बड़े-बड़े पापोंसे मुक्त हो जाता है। 'मैं ब्रह्म ही हूँ, संसारी जीव नहीं हूँ। नित्यमुक्त हूँ, शोक मेरा स्पर्श नहीं कर सकता। मैं सच्चिदानन्द-स्वरूप हूँ।' इस प्रकार अपने-आपके विषयमें चिन्तन करे। तदनन्तर दैहिक कृत्य और देवार्चन करे। उसका विधान और सदाचारका लक्षण मैं बताऊँगा। (पूर्व० ६५ अध्याय)

**शौचाचार, स्नान, संध्या-तर्पण, पूजागृहमें देवताओंका पूजन, केशव-कीर्त्यादि
मातृकान्यास, श्रीकण्ठमातृका, गणेशमातृका, कलामातृका आदि
न्यासोंका वर्णन**

सनत्कुमारजी कहते हैं—तदनन्तर बायीं या और इस प्रकार प्रार्थना करे—
दाहिनी जिस ओरकी साँस चलती हो, उसी समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमण्डले।
ओरका बायाँ अथवा दाहिना पैर पृथ्वीपर उतारे विष्णुपति नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥६६॥ १-२

‘पृथ्वी देवि! समुद्र तुम्हारी मेखला (कटिबन्ध) और पर्वत स्तनमण्डल हैं। विष्णुपति! तुम्हें नमस्कार है, मैंने जो तुम्हें चरणोंसे स्पर्श किया है, मेरे इस अपराधको क्षमा करो।’

इस प्रकार भूदेवीसे क्षमा-प्रार्थना करके विधिपूर्वक विचरण करे। तदनन्तर गाँवसे नैरृत्य कोणमें जाकर इस मन्त्रका उच्चारण करे—
गच्छन्तु ऋषयो देवाः पिशाचा ये च गुह्यकाः।

पितृभूतगणाः सर्वे करिष्ये मलमोचनम्॥ ३-४

‘यहाँ जो ऋषि, देवता, पिशाच, गुह्यक, पितर तथा भूतगण हों, वे चले जायँ, मैं यहाँ मल-त्याग करूँगा।’

ऐसा कहकर तीन बार ताली बजावे और सिरको वस्त्रसे आच्छादित करके मल-त्याग करे। रात हो तो दक्षिणकी ओर मुँह करके बैठे और दिनमें उत्तरकी ओर मुँह करके मलत्याग करे। तत्पश्चात् मिट्ठी और जलसे शुद्धि करे। लिङ्गमें एक बार, गुदामें तीन बार, बायें हाथमें दस बार, फिर दोनों हाथोंमें सात बार तथा पैरोंमें तीन बार मिट्ठी लगावे। इस प्रकार शौच-सम्पादन करके बारह बार जलसे कुल्ला करे। उसके बाद दाँतुनके लिये निम्राङ्कित मन्त्रसे वनस्पतिकी प्रार्थना करे—
आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च।

श्रियं प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते॥ ८

‘वनस्पते! तुम हमें आयु, बल, यश, तेज, संतान, पशु, धन, लक्ष्मी, प्रज्ञा (ज्ञानशक्ति) तथा मेधा (धारणशक्ति) दो।’

इस प्रकार प्रार्थना करके मन्त्रका साधक बारह अंगुलाकी दाँतुन लेकर एकाग्रचित्त हो उससे दाँत और मुखकी शुद्धि करे। तत्पश्चात् नदी आदिमें नहानेके लिये जाय, उस समय देवताके गुणोंका कीर्तन करता रहे। जलाशयमें जाकर उसको नमस्कार करके स्नानोपयोगी वस्तु वस्त्र आदिको तटपर रखकर मूल* (इष्ट) मन्त्रसे अभिमन्त्रित मिट्ठी

लेकर उसे कटिसे पैरतकके अङ्गोंमें लगावे और फिर जलाशयके जलसे उसे धो डाले। तदनन्तर पाँच बार जलसे पैरोंको धोकर जलके भीतर प्रवेश करे और नाभितकके जलमें पहुँचकर खड़ा हो जाय। उसके बाद जलाशयकी मिट्ठी लेकर बायें हाथकी कलाई, हथेली और उसके अग्रभागमें लगावे और अंगुलीसे जलाशयकी मिट्ठी लेकर मन्त्रज्ञ विद्वान् अस्त्र (फट्)-के उच्चारणद्वारा उसे अपने ऊपर घुमाकर छोड़ दे। फिर हथेलीकी मिट्ठीको छः अङ्गोंमें उनके मन्त्रोंद्वारा लगावे। तदनन्तर डुबकी लगाकर भलीभाँति उन अङ्गोंको धो डाले। यह जल-स्नान बताया गया है। इसके बाद सम्पूर्ण जगत्को अपने इष्टदेवका स्वरूप मानकर आन्तरिक स्नान करे। अनन्त सूर्यके समान तेजस्वी तथा अपने आभूषण और आयुधोंसे सम्पन्न मन्त्रमूर्ति भगवान्‌का चिन्तन करके यह भावना करे कि उनके चरणोदकसे प्रकट हुई दिव्य धारा ब्रह्मरन्ध्रसे मेरे शरीरमें प्रवेश कर रही है। फिर उस धारासे शरीरके भीतरका सारा मल भावनाद्वारा ही धो डाले। ऐसा करनेसे मन्त्रका साधक तत्काल रजोगुणसे रहित हो स्वच्छ स्फटिकके समान शुद्ध हो जाता है। तत्पश्चात् मन्त्रसाधक शास्त्रोक्तविधिसे स्नान करके एकाग्रचित्त हो मन्त्र-स्नान करे। उसका विधान बताया जाता है। पहले देश-कालका नाम लेकर संकल्प करे, फिर प्राणायाम और षडङ्ग-न्यास करके दोनों हाथोंसे मुष्टिकी मुद्रा बनाकर सूर्यमण्डलसे आते हुए तीर्थोंका आवाहन करे—
ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे।
तेन सत्येन मे देव देहि तीर्थं दिवाकर॥
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् संनिधिं कुरु॥

(ना० पूर्व० ६६। २५-२७)

‘सूर्यदेव! ब्रह्माण्डके भीतर जितने तीर्थ हैं, उन सबका आपकी किरणें स्पर्श करती हैं। दिवाकर!

* अपने इष्टदेवके अभीष्ट मन्त्रको ही यहाँ मूलमन्त्र कहा है।

इस सत्यके अनुसार मेरे लिये यहीं सब तीर्थ प्रदान कीजिये । गङ्गे, यमुने, गोदावरि, सरस्वति, नर्मदे, सिंधु, कावेरि ! आप इस जलमें निवास करें ।'

इस प्रकार जलमें सब तीर्थोंका आवाहन करके उन्हें सुधाबीज (वं)-से युक्त करे । फिर गोमुद्रासे उनका अमृतीकरण करके उन्हें कवचसे अवगुणित करे । फिर अस्त्रमुद्राद्वारा संरक्षण करके चक्रमुद्राका प्रदर्शन करे । तत्पश्चात् उस जलमें विद्वान् पुरुष अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाके मण्डलोंका चिन्तन करे । फिर सूर्यमन्त्र और अमृतबीजके द्वारा उस जलको अभिमन्त्रित करे । तदनन्तर मूल-मन्त्रसे ग्यारह बार अभिमन्त्रित करके उसके मध्यभागमें पूजा-यन्त्रकी भावना करे और हृदयसे देवताका आवाहन करके स्नान कराकर मानसिक उपचारसे उनकी पूजा करे । इष्टदेव सिंहासनपर विराजमान हैं, इस भावनासे उन्हें नमस्कार करके विद्वान् पुरुष उस जलको प्रणाम करे—

आधारः सर्वभूतानां विष्णोरत्तुलतेजसः ।
तद्वूपाश्च ततो जाता आपस्ताः प्रणमाम्यहम् ॥

(३२। ३३)

'जल सम्पूर्ण भूतोंका और अतुल तेजस्वी भगवान् विष्णुका आधार है । अतः वह विष्णुस्वरूप है; इसलिये मैं उसे प्रणाम करता हूँ ।'

इस प्रकार नमस्कार करके साधक अपने शरीरके सात छिद्रोंको बंद करके जलमें डुबकी लगावे और उसमें मूलमन्त्रका इष्टदेवके स्वरूपमें ध्यान करे । तीन बार डुबकी लगावे और ऊपर आवे । तत्पश्चात् दोनों हाथोंको घड़ेकी मुद्रामें रखकर उसके द्वारा सिरको सींचे ।

फिर श्रीशालग्रामशिलाका जल (भगवच्चरणमृत) पान करे । कभी इसके विरुद्ध आचरण न करे । यह शास्त्रका नियत विधान है । तदनन्तर मन्त्रका साधक अपने इष्टदेवका सूर्यमण्डलमें विसर्जन करके तटपर आवे और यत्नपूर्वक वस्त्र धोकर दो शुद्ध वस्त्र (धोती और अँगोछा) धारण करके विद्वान्

पुरुष संध्या आदि करे । रोगादिके कारण स्नानादिमें असमर्थ हो, वह वहाँ जलसे स्नान न करके अघमर्षण करे अथवा अशक्त मनुष्य भस्म या धूलसे स्नान करे । तदनन्तर शुभ आसनपर बैठकर संध्यादि कर्म करे । 'ॐ केशवाय नमः', 'ॐ नारायणाय नमः', 'ॐ माधवाय नमः' इन मन्त्रोंसे तीन बार जलका आचमन करके 'ॐ गोविन्दाय नमः', 'ॐ विष्णवे नमः'—इन मन्त्रोंका उच्चारण करके दोनों हाथ धो ले । फिर 'ॐ मधुसूदनाय नमः', 'ॐ त्रिविक्रमाय नमः' से दोनों ओष्ठोंका मार्जन करे । तत्पश्चात् 'ॐ वामनाय नमः', 'ॐ श्रीधराय नमः' से मुख और दोनों हाथोंका स्पर्श करे । 'ॐ हृषीकेशाय नमः', 'ॐ पद्मनाभाय नमः' से दोनों चरणोंका स्पर्श करे । 'ॐ दामोदराय नमः' से मूर्धा (मस्तक) का, 'ॐ संकर्षणाय नमः' से मुखका, 'ॐ वासुदेवाय नमः', 'ॐ प्रद्युम्नाय नमः' से क्रमशः दायीं-बायीं नासिकाका स्पर्श करे । 'ॐ अनिरुद्धाय नमः', 'ॐ पुरुषोत्तमाय नमः' से पूर्ववत् दोनों नेत्रोंका तथा 'ॐ अधोक्षजाय नमः', 'ॐ नृसिंहाय नमः' से दोनों कानोंका स्पर्श करे । 'ॐ अच्युताय नमः' से नाभिका, 'ॐ जनार्दनाय नमः' से वक्षःस्थलका तथा 'ॐ हरये नमः', 'ॐ विष्णवे नमः' से दोनों कंधोंका स्पर्श करे । यह वैष्णव आचमनकी विधि है । आदिमें प्रणव और अन्तमें चतुर्थीका एकवचन तथा नमः पद जोड़कर पूर्वोक्त केशव आदि नामोंद्वारा मुख आदिका स्पर्श करना चाहिये । मुख और नासिकाका स्पर्श तर्जनी अंगुलिसे करे । नेत्रों तथा कानोंका स्पर्श अनामिकाद्वारा करे तथा नाभिदेशका स्पर्श कनिष्ठा अंगुलिसे करे । अङ्गुष्ठका स्पर्श सभी अङ्गोंमें करना चाहिये । 'स्वाहा' पद अन्तमें जोड़कर चतुर्थ्यन्त आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्वका उच्चारण करके जो आचमन किया जाता है, उसे शैव आचमन कहा गया है । आदिमें क्रमशः दीर्घत्रय, अनुस्वार और ह अर्थात्—हाँ हीं हूँ जोड़कर स्वाहान्त आत्मतत्त्व विद्यातत्त्व

और शिवतत्त्व शब्दोंके उच्चारणपूर्वक किये हुए आचमनको तो शैव^१ कहते हैं और आदिमें क्रमशः 'ऐं, हीं, श्रीं' इस बीजके साथ स्वाहान्त उक्त नामोंका उच्चारण करके किये हुए आचमनको शाक्त^२ आचमन कहा गया है। ब्रह्मन्! वाग्बीज (ऐं), लज्जाबीज (हीं) और श्रीबीज (श्रीं)-का प्रारम्भमें प्रयोग करनेसे वह आचमन अभीष्ट अर्थको देनेवाला होता है।

तदनन्तर ललाटमें सुन्दर गदाकी-सी आकृतिवाला तिलक लगावे। हृदयमें नन्दक नामक खड्गकी और दोनों बाँहोंपर क्रमशः शङ्ख और चक्रकी आकृति बनावे। उत्तम बुद्धिवाला वैष्णव पुरुष क्रमशः मस्तक, कर्णमूल, पार्श्वभाग, पीठ, नाभि तथा ककुदमें भी शाङ्ग नामक धनुष तथा बाणका न्यास करे। इस प्रकार वैष्णव पुरुष तीर्थजनित मृत्तिका (गोपीचन्दन) आदिसे तिलक करे। अथवा शैवजन त्यागकमन्त्रसे अग्निहोत्रका भस्म लेकर 'अग्निरिति भस्म' इत्यादि मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात, वामदेव और ईशान—इन नामोंद्वारा क्रमशः ललाट, कंधे, उदर, भुजा और हृदयमें पाँच जगह त्रिपुण्ड्र लगावे। शक्तिके उपासकको त्रिकोणकी आकृतिका अथवा स्त्रियाँ जैसे बेंदी लगाती हैं, उस तरहका तिलक करना चाहिये। वैदिकी संध्या करनेके बाद मन्त्रका साधक विधिवत् आचमन करके तान्त्रिकी संध्या करे। पूर्ववत् जलमें तीर्थोंका आवाहन कर ले। तत्पश्चात् कुशासे तीन बार पृथ्वीपर जल छिड़के। फिर उसी जलसे सात बार अपने मस्तकपर अभिषेक करे। फिर प्राणायाम और षड्झन्यास करके बायें हाथमें जल लेकर उसे दाहिने हाथसे ढक ले। और मन्त्रज्ञ पुरुष आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वीके

बीजमन्त्रोंद्वारा^३ उसे अभिमन्त्रित करके तत्त्वमुद्रापूर्वक हाथसे चूते हुए जलविन्दुओंद्वारा मूलमन्त्रसे अपने मस्तकको सात बार सींचे, फिर शेष जलको मन्त्रका साधक बीजाक्षरोंसे अभिमन्त्रित करके नासिकाके समीप ले आवे। उस तेजोमय जलको भावनाद्वारा इडा नाड़ीसे भीतर खींचकर उसके अन्तरके सारे मलोंको धो डाले, फिर कृष्णवर्णमें परिणत हुए उस जलको पिङ्गला नाड़ीसे बाहर निकाले और अपने आगे वज्रमय प्रस्तरकी कल्पना करके अस्त्रमन्त्र (फट) का उच्चारण करते हुए उस जलको उसीपर दे मारे। वह सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला अघमर्षण कहा गया है। फिर मन्त्रवेत्ता पुरुष हाथ-पैर धोकर पूर्ववत् आचमन करके खड़ा हो ताँबेके पात्रमें पुष्ट-चन्दन आदि डालकर मूलान्त मन्त्रका उच्चारण करते हुए सूर्यमण्डलमें विराजमान इष्टदेवको अर्घ्य दे। इस प्रकार तीन बार अर्घ्य देकर रविमण्डलमें स्थित आराध्यदेवका ध्यान करे। तत्पश्चात् अपने-अपने कल्पमें बतायी हुई गायत्रीका एक सौ आठ या अट्ठाईस बार जप करे। जपके अन्तमें 'गुह्यातिगुह्यगोष्ठी त्वं' इत्यादि मन्त्रसे वह जप समर्पित करे, तदनन्तर गायत्रीका ध्यान करे।

फिर विधिज्ञ पुरुष देवताओं, ऋषियों तथा अपने पितरोंका तर्पण करके कल्पोक्त पद्धतिसे अपने इष्टदेवका भी तर्पण करे। तत्पश्चात् गुरुपङ्किका तर्पण करके अङ्गों, आयुधों और आवरणोंसहित विनतानन्दन गरुड़का 'साङ्गं सावरणं सायुधं वैनतेयं तर्पयामि' ऐसा कहकर तर्पण करे। इसके बाद नारद, पर्वत, जिष्णु, निशाठ, उद्धव, दारुक, विष्वक्सेन तथा शैलेयका वैष्णव पुरुष तर्पण करे। विप्रेन्द्र! इस प्रकार तर्पण करके विवस्वान् सूर्यको अर्घ्य दे पूजाघरमें आकर हाथ-पैर धोकर आचमन

१. हां आत्मतत्त्वाय स्वाहा। हीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा। हूं शिवतत्त्वाय स्वाहा। ये शैव आचमन-मन्त्र हैं।
२. ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा। हीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा। श्रीं शिवतत्त्वाय स्वाहा। ये शाक्त आचमन-मन्त्र हैं।
३. हं यं रं वं लं—ये क्रमशः आकाश आदि तत्त्वोंके बीज हैं।

करे। फिर अग्निहोत्रमें स्थित गार्हपत्य आदि अग्नियोंकी तृसिके लिये हवन करके यज्ञपूर्वक उनकी उपासना करके पूजाके स्थानमें आकर द्वारपूजा प्रारम्भ करे। द्वारकी ऊपरी शाखामें गणेशजीकी, दक्षिण भागमें महालक्ष्मीकी, वाम भागमें सरस्वतीकी, दक्षिणमें पुनः विघ्नराज गणेशकी, वाम भागमें क्षेत्रपालकी, दक्षिणमें गङ्गाकी, वाम भागमें यमुनाकी, दक्षिणमें धाताकी, वाम भागमें विधाताकी, दक्षिणमें शङ्खनिधिकी तथा वामभागमें पद्मनिधिकी पूजा करे। तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष तत्त्वल्पोक्त, द्वारपालोंकी पूजा करे। नन्द, सुनन्द, चण्ड, प्रचण्ड, प्रचल, बल, भद्र तथा सुभद्र ये वैष्णव द्वारपाल हैं। नन्दी, भृङ्गी, रिटि, स्कन्द, गणेश, उमामहेश्वर, नन्दीवृष्ट तथा महाकाल—ये शैव द्वारपाल हैं। ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी आदि जो आठ मातृका शक्तियाँ हैं, वे स्वयं ही द्वारपालिका हैं। इन सबके नामके आदि-अक्षरमें अनुस्वार लगाकर उसे नामके पहले बोलना चाहिये। नामके चतुर्थी विभक्त्यन्त रूपके बाद नमः लगाना चाहिये। यथा—‘नं नन्दाय नमः’ इत्यादि। इन्हीं नाममन्त्रोंसे इन सबकी पूजा करनी चाहिये।

वैष्णव-मातृका-न्यास

इसके बाद बुद्धिमान् पुरुष पवित्र हो मन और इन्द्रियोंके संयमपूर्वक आसनपर बैठकर आचमन करे और यज्ञपूर्वक स्वर्ग, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वीके विष्णोंका निवारण करनेके अनन्तर श्रेष्ठ वैष्णव पुरुष केशव-कीर्त्यादि मातृका-न्यास करे। कीर्तिसहित केशव, कान्तिसहित नारायण, तुष्टिके साथ माधव, पुष्टिके साथ गोविन्द, धृतिके साथ विष्णु, शान्तिके साथ मधुसूदन, क्रियाके साथ त्रिविक्रम, दयाके साथ वामन, मेधाके साथ श्रीधर, हषके साथ हषीकेश, पद्मनाभके साथ श्रद्धा,

दामोदरके साथ लज्जा, लक्ष्मीसहित वासुदेव, सरस्वतीसहित संकर्षण, प्रीतिके साथ प्रद्युम्न, रतिके साथ अनिरुद्ध, जयाके साथ चक्री, दुर्गाके साथ गदी, प्रभाके साथ शाङ्गी, सत्याके साथ खड़ी, चण्डाके साथ शङ्खी, वाणीके साथ हली, विलासिनीके साथ मुसली, विजयाके साथ शूली, विरजाके साथ पाशी, विश्वाके साथ अंकुशी, विनदाके साथ मुकुन्द, सुनन्दाके साथ नन्दज, स्मृतिके साथ नन्दी, वृद्धिके साथ नर, समृद्धिके साथ नरकजित, शुद्धिके साथ हरि, बुद्धिके साथ कृष्ण, भुक्तिके साथ सत्य, मुक्तिके साथ सात्वत, क्षमासहित सौरि, रमासहित सूर, उमासहित जनार्दन (शिव), क्लेदिनीसहित भूधर, क्लिन्नाके साथ विश्वमूर्ति, वसुधाके साथ वैकुण्ठ, वसुदाके साथ पुरुषोत्तम, पराके साथ बली, परायणाके साथ बलानुज, सूक्ष्माके साथ बाल, संध्याके साथ वृषहन्ता, प्रज्ञाके साथ वृष, प्रभाके साथ हंस, निशाके साथ वराह, धारके साथ विमल तथा विद्युत्के साथ नृसिंहका न्यास करे। इस केशवादि मातृका-न्यासके नारायण ऋषि, अमृताद्या गायत्री छन्द और विष्णु देवता हैं। भगवान् विष्णु चक्र आदि आयुधोंसे सुशोभित हैं, उन्होंने हाथोंमें कलश और दर्पण ले रखा है, वे श्रीहरि श्रीलक्ष्मीजीके साथ शोभा पा रहे हैं, उनकी अङ्गकान्ति विद्युत्के समान प्रकाशमान है और वे अनेक प्रकारके दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं; ऐसे भगवान् विष्णुका मैं भजन करता हूँ। इस प्रकार ध्यान करके शक्ति (ह्रीं), श्री (श्रीं) तथा काम (कलीं) बीजसे सम्पुटित ‘अ’ आदि एक-एक अक्षरका ललाट आदिमें न्यास करे। उसके साथ आदिमें प्रणव लगाकर श्रीविष्णु और उनकी शक्तिके चतुर्थन्त नाम बोलकर अन्तमें ‘नमः’ पद जोड़कर बोले।*

एक अक्षर ‘अ’ का ललाटमें, फिर एक

* उदाहरणके लिये एक वाक्ययोजना दी जाती है—‘ॐ ह्रीं श्रीं कलीं अं कलीं श्रीं ह्रीं केशवकीर्तिभ्यां नमः (ललाटे)’ ऐसा कहकर ललाटका स्पर्श करे। इसी प्रकार ‘ॐ ह्रीं श्रीं कलीं अं कलीं श्रीं ह्रीं नारायणकान्तिभ्यां नमः (मुखे)’ ऐसा कहकर मुखका स्पर्श करे। ललाट, मुख आदि जिन-जिन अङ्गोंमें मातृका वर्णोंका न्यास करना है,

अक्षर 'आ' का मुखमें, दो अक्षर 'इ' और 'ई' का क्रमशः दाहिने और बाँयें नेत्रमें और दो अक्षर 'उ', 'ऊ' का क्रमशः दाहिने-बायें कानमें न्यास करे। दो अक्षर 'ऋ', 'ऋ' का दायीं-बायीं नासिकामें, दो अक्षर 'लृ', 'लृ' का दायें-बायें कपोलमें, दो अक्षर 'ए', 'ऐ' का ऊपर-नीचेके ओष्ठमें, दो अक्षर 'ओ', 'औ' का ऊपर-नीचेकी दन्तपंक्तिमें, एक अक्षर 'अं' का जिहामूलमें तथा एक अक्षर 'अः' का ग्रीवामें न्यास करे। दाहिनी बाँहमें कर्वगका और बायीं बाँहमें चर्वगका न्यास करे। टवर्ग और तवर्गका दोनों पैरोंमें तथा 'प' और 'फ' का दोनों कुक्षियोंमें न्यास करे। पृष्ठवंशमें 'ब' का, नाभिमें 'भ' का और हृदयमें 'म' का न्यास करे। 'य' आदि सात अक्षरोंका शरीरकी सात धातुओंमें, 'ह' का प्राणमें तथा 'ळ' का आत्मामें न्यास करे। 'क्ष' का क्रोधमें न्यास करना चाहिये। इस प्रकार क्रमसे मातृका वर्णोंका न्यास करके मनुष्य भगवान् विष्णुकी पूजामें समर्थ होता है।

शैव-मातृका-न्यास

[भगवान् शिवके उपासकको केशव-कीर्त्यादि मातृका-न्यासकी भाँति श्रीकण्ठेशादि मातृका-न्यास करना चाहिये।] पूर्णोदरीके साथ श्रीकण्ठेशका, विरजाके साथ अनन्तेशका, शालमलीके साथ सूक्ष्मेशका, लोलाक्षीके साथ त्रिमूर्तीशका, वर्तुलाक्षीके साथ महेशका और दीर्घघोणाके साथ अर्धीशका न्यास करे*। दीर्घमुखीके साथ भारभूतीशका, गोमुखीके साथ तिथीशका, दीर्घजिह्वाके साथ स्थाणवीशका, कुण्डोदरीके साथ हरेशका, ऊर्ध्वकेशीके साथ द्विष्टीशका, विकृतास्याके साथ भौतिकेशका, ज्वालामुखीके साथ सद्योजातेशका, उल्कामुखीके

साथ अनुग्रहेशका, आस्थाके साथ अक्षूरका, विद्याके साथ महासेनका, महाकालीके साथ क्रोधीशका, सरस्वतीके साथ चण्डेशका, सिद्धगौरीके साथ पञ्चान्तकेशका, त्रैलोक्यविद्याके साथ शिवोत्तमेशका, मन्त्र-शक्तिके साथ एकरुद्रेशका, कमठीके साथ कूर्मेशका, भूतमाताके साथ एकनेत्रेशका, लम्बोदरीके साथ चतुर्वक्त्रेशका, द्राविणीके साथ अजेशका, नागरीके साथ सर्वेशका, खेचरीके साथ सोमेशका, मर्यादाके साथ लाङ्गूलीशका, दारुकेशके साथ रूपिणीका तथा वीरिणीके साथ अर्धनारीशका न्यास करना चाहिये। काकोदरीके साथ उमाकान्त (उमेश)-का और पूतनाके साथ आषाढ़ीशका न्यास करे। भद्रकालीके साथ दण्डीशका, योगिनीके साथ अत्रीशका, शङ्खिनीके साथ मीनेशका, तर्जनीके साथ मेषेशका, कालरात्रिके साथ लोहितेशका, कुब्जनीके साथ शिखीशका, कपर्दिनीके साथ छलगण्डेशका, वज्राके साथ द्विरण्डेशका, जयाके साथ महाबलेशका, सुमुखेश्वरीके साथ बलीशका, रेवतीके साथ भुजङ्गेशका, माध्वीके साथ पिनाकीशका, वारुणीके साथ खङ्गीशका, वायवीके साथ वकेशका, विदारणीके साथ श्वेतोरस्केशका, सहजाके साथ भृग्वीशका, लक्ष्मीके साथ लकुलीशका, व्यापिनीके साथ शिवेशका तथा महामायाके साथ संवर्तकेशका न्यास करे। यह श्रीकण्ठमातृका कही गयी है। जहाँ 'ईश' पद न कहा गया हो, वहाँ सर्वत्र उसकी योजना कर लेनी चाहिये। इस श्रीकण्ठमातृका-न्यासके दक्षिणामूर्ति ऋषि और गायत्री छन्द कहा गया है। अर्धनारीश्वर देवता है और सम्पूर्ण मनोरथोंकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग कहा गया है।

उनका निर्देश मूलमें किया जा रहा है। उन सबके लिये उपर्युक्त रीतिसे वाक्ययोजना करनी चाहिये। तन्में द्विवचन-विभक्ति तथा शक्तियोंका अन्तमें प्रयोग देखा जानेके कारण द्वन्द्वसमाप्त करके भी स्त्री-लिङ्गका पूर्वनिपात नहीं किया गया।

* उदाहरणके लिये वाक्यप्रयोग इस प्रकार है—हृ सौ अं श्रीकण्ठेशपूर्णोदरीभ्यां नमः (ललाटे)। हृ सौ अं अनन्तेशविरजाभ्यां नमः (मुखवृते) इत्यादि।

इसके हल् बीज और स्वर शक्तियाँ हैं। भृगु (स)-में स्थित आकाश (ह)-की छः दीर्घोंसे युक्त करके उसके द्वारा अङ्गन्यास करें। इसके बाद भगवान् शङ्करका इस प्रकार ध्यान करे। उनका श्रीविग्रह बन्धूक पुष्प एवं सुवर्णके समान है। वे अपने हाथोंमें वर, अक्षमाला, अंकुश और पाश धारण करते हैं। उनके मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट सुशोभित है। उनके तीन नेत्र हैं तथा सम्पूर्ण देवता उनके चरणोंकी वन्दना करते हैं।

गणपत्य-मातृका-न्यास

इस प्रकार शिवशक्तिका ध्यान करके अन्तमें चतुर्थी विभक्ति और नमः पद जोड़कर तथा आदिमें गणेशजीका अपना बीज लगाकर मातृकास्थलमें एक-एक मातृका वर्णके साथ शक्तिसहित गणेशजीका न्यास करे। हीके साथ विघ्नेश तथा श्रीके साथ विघ्नराजका न्यास करें। पुष्टिके साथ विनायक, शान्तिके साथ शिवोत्तम, स्वस्तिसहित विघ्रकृत् सरस्वतीसहित विघ्रहर्ता, स्वाहासहित गणनाथ, सुमेधासहित एकदन्त, कान्तिसहित द्विदन्त, कामिनीसहित गजमुख, मोहिनीसहित निरञ्जन, नटीसहित कपर्दी, पार्वतीसहित दीर्घजिह्वा, ज्वालिनीसहित शङ्ककर्ण, नन्दासहित वृषध्वज, सुरेशीसहित गणनायक, कामरूपिणीके साथ गजेन्द्र, उमाके साथ शूर्पकर्ण, तेजोवतीके साथ विरोचन, सतीके साथ लम्बोदर, विघ्नेशीके साथ महानन्द, सुरूपिणीसहित चतुर्मूर्ति कामदासहित सदाशिव, मदजिह्वासहित आमोद, भूतिसहित दुर्मुख, भौतिकीके साथ सुमुख, सिताके साथ प्रमोद, रमाके साथ एकपाद, महिषीके साथ द्विजिह्वा, जम्भिनीके साथ शूर, विकर्णके साथ वीर, भृकुटीसहित षण्मुख, लज्जाके साथ वरद, दीर्घघोणके

साथ वामदेवेश, धनुर्धरीके साथ वक्रतुण्ड, यामिनीके साथ द्विरण्ड, रात्रिसहित सेनानी, ग्रामणीसहित कामान्ध, शशिप्रभाके साथ मत्त, लोलनेत्राके साथ विमत्त, चञ्चलाके साथ मत्तवाह, दीसिके साथ जटी, सुभगाके साथ मुण्डी, दुर्भगाके साथ खड्गी, शिवाके साथ वरेण्य, भगाके साथ वृषकेतन, भगिनीके साथ भक्त-प्रिय, भोगिनीके साथ गणेश, सुभगाके साथ मेघनाद, कालरात्रिसहित व्यापी तथा कालिकाके साथ गणेशका अपने अङ्गोंमें न्यास करना चाहिये। इस प्रकार विघ्नेश-मातृकाका वर्णन किया गया है। गणेशमातृकाके गण ऋषि कहे गये हैं। निचूद् गायत्री छन्द है तथा शक्तिसहित गणेश्वर देवता हैं। छः दीर्घ स्वरोंसे युक्त गणेशबीज (गां गीं गूं गैं गौं गः) के द्वारा अङ्गन्यास करके उनका इस प्रकार ध्यान करे—गणेशजी अपने चारों भुजाओंमें क्रमशः पाश, अंकुर, अभय और वर धारण किये हुए हैं, उनकी पत्ती सिद्धि हाथमें कमल ले उनसे सटकर बैठी हैं, उनका शरीर रक्तवर्णका है तथा उनके तीन नेत्र हैं, ऐसे गणपतिका मैं भजन करता हूँ। इस प्रकार ध्यान करके स्वकीय बीजको पूर्वाक्षरके रूपमें रखकर उक्त मातृका-न्यास करना चाहिये।

कला-मातृका-न्यास

(अब कला-मातृका-न्यास बताया जाता है—) निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, इन्धिका, दीपिका, रोचिका, मोचिका, परा, सूक्ष्मा, असूक्ष्मा, अमृता, ज्ञानामृता, आप्यायिनी, व्यापिनी, व्योमरूपा, अनन्ता, सृष्टि, समृद्धिका, स्मृति, मेधा, क्रान्ति, लक्ष्मी, धृति, स्थिरा, स्थिति, सिद्धि, जरा, पालिनी, क्षान्ति, ईश्वरी, रति, कामिका, वरदा, हृदिनी, प्रीति, दीर्घा, तीक्ष्णा, रौद्रा, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा,

१. हृ सां हृदयाय नमः। हृ सीं शिरसे स्वाहा। हृ सूं शिखायै वषट्। हृ सैं कवचाय हुम्। हृ सौ नेत्रत्रयाय वौषट्।
हसः अस्त्राय फट्।

२. ग अं विघ्नेशहीभ्यां नमः (ललाटे), गं आं विघ्नराजश्रीभ्यां नमः (मुखवृत्ते) इत्यादि रूपसे वाक्ययोजना कर लेनी चाहिये।

क्रोधिनी, क्रियाकारी, मृत्यु, पीता, श्रेता, अरुणा, असिता और अनन्ता—इस प्रकार कलामातृका कही गयी है। भक्त पुरुष उन-उन मातृकाओंका न्यास करे। इस कलामातृकाके प्रजापति ऋषि कहे गये हैं। इसका छन्द गायत्री और देवता शारदा हैं। हस्व और दीर्घ स्वरके बीचमें प्रणव रखकर उसीके द्वारा षडङ्गन्यास करे (यथा—अं अं अं अं हृदयाय नमः, इं अं ईं शिरसे स्वाहा, उं अं ऊं शिखायै वषट्, एं अं एं कवचाय हुम्, ओं अं ओं नेत्रत्रयाय वौषट्, अं अं अः अस्त्राय फट्)। विद्वान् पुरुष मौतियोंके आभूषणोंसे विभूषित पञ्चमुखी शारदादेवीका भजन (ध्यान) करे। उनके तीन नेत्र हैं तथा वे अपने हाथोंमें पद्म, चक्र, गुण (त्रिशूल अथवा पाश) तथा एन

(मृगचर्म) धारण करती हैं। इस प्रकार ध्यान करके ॐपूर्वक चतुर्थ्यन्त कलायुक्त मातृकाका न्यास करे (यथा—अं अं निवृत्त्यै नमः ललाटे, अं अं प्रतिष्ठायै नमः मुखवृत्ते इत्यादि)। तदनन्तर मूलमन्त्रके छहों अङ्गोंका न्यास करना चाहिये। ‘हृदय’ आदि चतुर्थ्यन्त पदमें अङ्गन्यास-सम्बन्धी जातियोंका संयोग करके न्यास करे। ‘नमः’, ‘स्वाहा’, ‘वषट्’, ‘हुम्’, ‘वौषट्’ और ‘फट्’ ये छः जातियाँ कही गयी हैं (अर्थात् हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट्, कवचाय हुम्, नेत्रत्रयाय वौषट्, अस्त्राय फट्—इस प्रकार संयोजना करे)। तत्पश्चात् आयुध और आभूषणोंसहित इष्टदेवका ध्यान करके उनकी मूर्तिमें छः अङ्गोंका न्यास करनेके पश्चात् पूजन प्रारम्भ करे। (पूर्व० ६६ अध्याय)

देवपूजनकी विधि

सनत्कुमारजी कहते हैं—अब मैं साधकोंका अभीष्ट मनोरथ सिद्ध करनेवाली देवपूजाका वर्णन करता हूँ। अपने वाम भागमें त्रिकोण अथवा चतुर्ष्कोणकी रचना करके उसकी पूजा करे और अस्त्र-मन्त्रद्वारा उसपर जल छिड़के। तत्पश्चात् हृदयसे आधारशक्तिकी भावना करके उसमें अग्निमण्डलका पूजन करे। फिर अस्त्रबीजसे पात्र धोकर आधारस्थानमें चमस रखकर उसमें सूर्यमण्डलकी भावना करे। विलोम मातृका मूलका उच्चारण करते हुए उस पात्रको जलसे भरे। फिर उसमें चन्द्रमण्डलकी पूजा करके पूर्ववत् उसमें तीर्थोंका आवाहन करे। तदनन्तर धेनुमुद्रासे अमृतीकरण करके कवचसे उसको आच्छादित करे। फिर अस्त्रसे उसका संक्षालन करके उसके ऊपर आठ बार प्रणवका जप करे। यह मनुष्योंके लिये सर्वसिद्धिदायक सामान्य अर्थ बताया गया है। श्रेष्ठ साधक उस जलमेंसे किञ्चित् निकालकर उसको अपने आपर तथा सम्पूर्ण पूजन-सामग्रियोंपर पृथक्-पृथक् छिड़के। अपने वाम भागमें आगेकी ओर एक त्रिकोण मण्डल अङ्गृहि त करे। उस

त्रिकोणको षट्कोणसे आवृत करके उस सबको गोल रेखासे घेर दे, फिर सबको चतुष्कोण रेखासे आवृत करके अर्थ जलसे अभिषेक करे। तत्पश्चात् श्रेष्ठ साधक शङ्खमुद्रासे स्तम्भन करे। आग्नेय आदि चार कोणोंमें हृदय, सिर, शिखा और कवच (भुजमूल)—इन चार अङ्गोंकी पूजा करके मध्यभागमें नेत्रकी तथा दिशाओंमें अस्त्रकी (पुष्पाक्षत आदिसे) पूजा करे। फिर त्रिकोण मण्डलके मध्यमें स्थित आधारशक्तिका मूलखण्डत्रयसे पूजन करे। इस प्रकार विधिवत् पूजन करके अस्त्र (फट्)-के उच्चारणपूर्वक प्रक्षालित की हुई त्रिपादिका (तिरपाई) स्थापित करके निमाङ्गित मन्त्रसे उसकी पूजा करे। ‘मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने—देवतार्घ्यपात्रासनाय नमः’ आधारपूजनके लिये यह चौबीस अक्षरोंका मन्त्र है। तत्पश्चात् शङ्खको तत्सम्बन्धी मन्त्रद्वारा धोकर उसे स्थापित करनेके अनन्तर उसकी पूजा करे। शङ्खके स्थापनका मन्त्र इस प्रकार है, पहले तार (अं) है, फिर काम (क्लीं) है, उसके बाद ‘महा’ शब्द है, तत्पश्चात् ‘जलचराय’ है। फिर वर्म (हुम्), ‘फट्’

‘स्वाहा’ ‘पाञ्चजन्याय’ तथा हृदय (नमः पद) है। पूरा मन्त्र इस प्रकार समझना चाहिये—‘ॐ क्लीं महाजलचराय हुं फट् स्वाहा पाञ्चजन्याय नमः।’ इसके बाद ‘ॐ अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने…… देवार्थ्यपात्राय नमः।’ इस तैर्इस अक्षरवाले मन्त्रसे शङ्खकी पूजा करनी चाहिये। (इष्टदेवका नाम जोड़नेसे अक्षर-संख्या पूरी होती है। उस मन्त्रसे पूजन करनेके अनन्तर उसमें सूर्यकी बारह कलाओंका क्रमशः पूजन करे। तत्पश्चात् विलोमक्रमसे मूलमातृका वर्णोंका उच्चारण करते हुए शुद्ध जलसे शङ्खको भर दे और उसकी निम्राङ्कित मन्त्रसे पूजा

करे—‘ॐ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने देवार्थ्यमृताय नमः।’ अर्ध्यपूजनके लिये यही मन्त्र है। फिर उस जलमें चन्द्रमाकी सोलह कलाओंकी पूजा करे। तदनन्तर पहले बताये अनुसार ‘गङ्गे च यमुने चैव’ इत्यादि मन्त्रसे सब तीर्थोंका उसमें आवाहन करके धनुमुद्राद्वारा^३ उसका अमृतीकरण^४ करे और मत्स्यमुद्राद्वारा^५ उसे आच्छादित करे। फिर कवच (हुं बीज) द्वारा अवगुण्ठन^६ करके पुनः अस्त्र (फट्)-द्वारा उसकी रक्षा करे। तदनन्तर इष्टदेवका चिन्तन करके मुद्रा प्रदर्शन करे। शङ्ख^७, मुसल^८, चक्र^९, परमीकरण^{१०}, महामुद्रा^{११}, तथा योनिमुद्राका^{१२}, विद्वान्

१. धेनुमुद्राका लक्षण इस प्रकार है—

वामाङ्गुलीनां मध्येषु दक्षिणाङ्गुलिकास्तथा । संयोज्य तर्जनीं दक्षां मध्यमानामयोस्तथा ॥
दक्षमध्यमयोर्वामां तर्जनीं च नियोजयेत् । वामयानामया दक्षकनिष्ठां च नियोजयेत् ॥
दक्षयानामया वामां कनिष्ठां च नियोजयेत् । विहिताधोमुखी चैषा धेनुमुद्रा प्रकीर्तिता ॥

‘बायें हाथकी अंगुलियोंके बीचमें दाहिने हाथकी अंगुलियोंको संयुक्त करके दाहिनी तर्जनीको मध्यमाके बीचमें लगावे। दाहिने हाथकी मध्यमामें बायें हाथकी तर्जनीको मिलावे। फिर बायें हाथकी अनामिकासे दाहिने हाथकी कनिष्ठिका और दाहिने हाथकी अनामिकाके साथ बायें हाथकी कनिष्ठिकाको संयुक्त करे। फिर इन सबका मुख नीचेकी ओर करे—यही धेनुमुद्रा कही गयी है।’

२. अमृतीकरणकी विधि यह है—‘व’ इस अमृतबीजका उच्चारण करके उस धेनुमुद्राको दिखावे। ३. मत्स्यमुद्रा इस प्रकार है—बायें हाथके पृष्ठ भागपर दाहिने हाथकी हथेली रखे। दोनों अँगूठोंको फैलाये रखे। ४. बायें मुट्ठी इस प्रकार बाँध ले, जिससे तर्जनी अंगुली निकली रहे, इस प्रकारकी मुट्ठीको शङ्खके ऊपर घुमाना अवगुण्ठनी मुद्रा है। ५. शङ्खमुद्राका लक्षण इस प्रकार है—बायें अँगूठेको दाहिनी मुट्ठीसे पकड़ ले। मुट्ठी उत्तान करके अँगूठेको फैला दे। बायें हाथकी चारों अंगुलियोंको सटी हुई रखे और उन्हें फैलाकर दाहिने अँगूठेसे सटा दे। यह शङ्खकी मुद्रा ऐश्वर्य देनेवाली है। ६. मुसलमुद्रा—

मुष्टिं कृत्वा तु हस्ताभ्यां वामस्योपरि दक्षिणम् । कुर्यान्मुसलमुद्रेयं सर्वविघ्नविनाशिनी ॥

दोनों हाथोंकी मुट्ठी बाँधकर बायेंके ऊपर दाहिनी मुट्ठी रख दे। यह सब विघ्नोंका नाश करनेवाली मुसलमुद्रा कही गयी है।

७. चक्रमुद्रा—

हस्तौ च सम्मुखौ कृत्वा सुभुग्र सुप्रसारितौ । कनिष्ठाङ्गुष्ठको लग्नौ मुद्रैषा चक्रसंज्ञिका ॥

दोनों हाथोंको आमने-सामने करके उन्हें भलीभाँति फैलाकर मौड़ दे और दोनों कनिष्ठिकाओं तथा अँगूठोंको परस्पर सटा दे। यह चक्रमुद्रा है। ८. दोनों हाथोंकी अंगुलियोंको परस्पर सटाकर हाथोंको अलग रखे—यही परमीकरण मुद्रा है।

९. महामुद्रा—

अन्योऽन्यग्रथिताङ्गुष्ठा प्रसारितकराङ्गुली । महामुद्रेयमुदिता परमीकरणे बुधैः ॥

अँगूठोंको परस्पर ग्रथित करके दोनों हाथोंकी अंगुलियोंको फैला दे। विद्वानोंने इसीको परमीकरणमें महामुद्रा कहा है। १०. दोनों हाथोंको उत्तान रखते हुए दायें हाथकी अनामिकासे बायें हाथकी तर्जनीको और बायें हाथकी

पुरुष क्रमशः प्रदर्शन करावे। गारुडी^{११} और गालिनी^{१२}—ये दो मुद्राएँ मुख्य कही गयी हैं। गन्ध-पुष्प आदिसे वहाँ देवताका पूजन और स्मरण करे। आठ बार मूल मन्त्रका तथा आठ बार प्रणवका जप करे। शङ्खसे दक्षिण दिशाकी ओर प्रोक्षणीपात्र रखे। शङ्खका थोड़ा-सा जल प्रोक्षणीपात्रमें डालकर उससे अपने ऊपर तीन बार अभिषेक करे। उस समय क्रमशः इन तीन मन्त्रोंका उच्चारण करे—‘ॐ आत्मतत्त्वात्मने नमः, ॐ विद्यातत्त्वात्मने नमः, ॐ शिवतत्त्वात्मने नमः।’ विद्वान् पुरुष इन मन्त्रोंद्वारा अपने साथ ही उस मण्डलका भी विधिवत् प्रोक्षण करे और उसमें पुष्प तथा अक्षत भी बिखेरे अथवा मूलगायत्रीसे पूजाद्रव्योंका प्रोक्षण करे। फिर किसी आधार (चौकी)-पर पाद्य, अर्ध्य, आचमनीय तथा मधुपर्कके लिये अपने आगे अनेक पात्र विधिवत् रख ले। श्यामाक (सावाँ), दूर्वा, कमल, विष्णुक्रान्ता नामक ओषधि और जल—इनके मेलसे भगवान्‌के लिये पाद्य बनता है। फूल, अक्षत, जौ, कुशाग्र, तिल, सरसों, गन्ध तथा दूर्वादल, इनके द्वारा भगवान्‌के लिये अर्ध्य देनेकी विधि है। आचमनके लिये शुद्ध जलमें जायफल, कंकोल और लवज्ञ मिलाकर रखना चाहिये। मधु, घी और दहीके मेलसे मधुपर्क बनता है। अथवा एक पात्रमें पाद्य आदिकी व्यवस्था

करे। भगवान् शङ्खर और सूर्यदेवके पूजनमें शङ्खमय पात्र अच्छा नहीं माना गया है। श्वेत, कृष्ण, अरुण, पीत, श्याम, रक्त, शुक्ल, असित (काली), लाल वस्त्र धारण करनेवाली और हाथमें अभयकी मुद्रासे युक्त पीठ-शक्तियोंका ध्यान करना चाहिये। सुवर्ण आदिके पत्रपर लिखे हुए यन्त्रमें, शालग्राम-शिलामें, मणिमें अथवा विधिपूर्वक स्थापित की हुई प्रतिमामें इष्टदेवकी पूजा करनी चाहिये। घरमें प्रतिदिन पूजाके लिये वही प्रतिमा कल्याणदायिनी होती है जो स्वर्ण आदि धातुओंकी बनी हो और कम-से-कम अँगूठेके बराबर तथा अधिक-से-अधिक एक बित्तेकी हो। जो टेढ़ी हो, जली हुई हो, खण्डित हो, जिसका मस्तक या आँख फूटी हुई हो अथवा जिसे चाणडाल आदि अस्पृश्य मनुष्योंने छू दिया हो, वैसी प्रतिमाकी पूजा नहीं करनी चाहिये। अथवा समस्त शुभ लक्षणोंसे सुशोभित बाण आदि लिङ्गमें पूजा करे या मूलमन्त्रके उच्चारणपूर्वक मूर्तिका निर्माण करके इष्टदेवके शास्त्रोक्त स्वरूपका ध्यान करे। फिर उसमें देवताका परिवारसहित आवाहन करके पूजा करे। शालग्राम-शिलामें तथा पहले स्थापित की हुई देवप्रतिमामें आवाहन और विसर्जन नहीं किये जाते।

तदनन्तर पुष्पाङ्गलि लेकर इष्टदेवका ध्यान करते हुए इस मन्त्रका उच्चारण करे—

अनामिकासे दायें हाथकी तर्जनीको पकड़ ले और दोनों मध्यमाओं तथा कनिष्ठिकाओंको परस्पर सटी रखकर दोनों अङ्गुष्ठोंको तर्जनीके मूलसे मिलाये रखे—यही योनिमुद्रा है।

११. गरुडमुद्राका लक्षण इस प्रकार है—

सम्मुखौ तु करौ कृत्वा ग्रन्थयित्वा कनिष्ठिके। पुनश्चाधोमुखे कृत्वा तर्जन्यौ योजयेत्योः ॥
मध्यमानामिके द्वे तु पक्षाविव विचालयेत्। मुद्रैषा पक्षिराजस्य सर्वविश्वनिवारिणी ॥

(मन्त्रमहोदधि)

दोनों हाथोंको सम्मुख करके दोनों कनिष्ठिकाओंको परस्पर बद्ध कर दे और अधोमुख करके उनमें तर्जनियोंको मिला दे। फिर मध्यमा और अनामिकाओंको पाँखकी भाँति हिलावे। यह गरुडमुद्रा सब विश्वोंका निवारण करनेवाली है।

१२. कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ सकौ करयोरितरेतरम् । तर्जनीमध्यमानामाः संहता भुग्वर्जिताः ॥

दोनों हाथोंकी कनिष्ठिका और अँगूठे परस्पर सटे रहें और तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका अंगुलियाँ सीधी-सीधी रहकर परस्पर मिली रहें। यह गालिनीमुद्रा कही गयी है।

आत्मसंस्थमजं शुद्धं त्वामहं परमेश्वर।
 अरण्यामिव हव्यांशं मूर्तीवावाहयाम्यहम्॥
 तवेयं हि महामूर्तिस्तस्यां त्वां सर्वगं प्रभो।
 भक्तस्त्रेहसमाकृष्टं दीपवत्स्थापयाम्यहम्॥
 सर्वान्तर्यामिणे देव सर्वबीजमयं शुभम्।
 स्वात्मस्थाय परं शुद्धमासनं कल्पयाम्यहम्॥
 अनन्या तव देवेश मूर्तिशक्तिरियं प्रभो।
 सांनिध्यं कुरु तस्यां त्वं भक्तानुग्रहकारक॥
 अज्ञानादुत मत्तत्वाद् वैकल्यात्साधनस्य च।
 यद्यपूर्णं भवेत् कल्पं तथाप्यभिमुखो भव॥
 दृशा पीयूषवर्षिण्या पूरयन् यज्ञविष्टुरे।
 मूर्तौ वा यज्ञसम्पूर्तैँ स्थितो भव महेश्वर॥
 अभक्तवाङ्मनश्क्षुः श्रोत्रदूरायितद्युते ।
 स्वतेजः पञ्चरेणाशु वेष्टितो भव सर्वतः॥
 यस्य दर्शनमिच्छन्ति देवाः स्वाभीष्टसिद्धये।
 तस्मै ते परमेशाय स्वागतं स्वागतं च मे॥
 कृतार्थोऽनुगृहीतोऽस्मि सफलं जीवितं मम।
 आगतो देवदेवेशः सुखागतमिदं पुनः॥

(ना० पूर्व० ६७। ३७—४५)

परमेश्वर! आप अपने-आपमें स्थित, अजन्मा एवं शुद्ध-बुद्ध-स्वरूप हैं। जैसे अरणीमें अग्रि छिपी हुई है, उसी प्रकार इस मूर्तिमें आप गूढरूपसे व्याप्त हैं, मैं आपका आवाहन करता हूँ। प्रभो! यह आपकी महामूर्ति है, मैं इसके भीतर आप सर्वव्यापी परमात्माको, जो कि भक्तके प्रति स्नेहवश स्वयं खिंच आये हैं, दीपकी भाँति स्थापित करता हूँ। देव! अपने अन्तःकरणमें स्थित आप सर्वान्तर्यामी प्रभुके लिये मैं सर्वबीजमय, शुभ एवं शुद्ध आसन प्रस्तुत करता हूँ। देवेश! यह आपकी अनन्य मूर्ति-शक्ति है। भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले प्रभो! आप इसमें निवास कीजिये। अज्ञानसे, प्रमादसे अथवा साधनहीनताके कारण यदि मेरा यह अनुष्ठान अपूर्ण रह जाय तो भी आप अवश्य सम्मुख हों। महेश्वर! आप अपनी सुधावर्षिणी दृष्टिद्वारा सब त्रुटियोंको पूर्ण करते

हुए यज्ञकी पूर्णताके लिये इस यज्ञासनपर अथवा मूर्तिमें स्थित होइये। आपका प्रकाश या तेज अभक्त जनोंके मन, वचन, नेत्र और कानसे कोसों दूर है। भगवन्! आप सब ओर अपने तेजःपुञ्जसे शीघ्र आवृत हो जाइये। देवतालोग अपने अभीष्ट मनोरथकी सिद्धिके लिये सदा जिनका दर्शन चाहते हैं, उन्हीं आप परमेश्वरके लिये मेरा बारम्बार स्वागत है, स्वागत है। देवदेवेश प्रभु आ गये। मैं कृतार्थ हो गया। मुझपर बड़ी कृपा हुई। आज मेरा जीवन सफल हो गया। मैं पुनः इस शुभागमनके लिये प्रभुका स्वागत करता हूँ।

पाद्य

यद्दक्तिलेशसम्पर्कात् परमानन्दसम्भवः।
 तस्मै ते चरणाब्जाय पाद्यं शुद्धाय कल्प्यते॥ ४६॥
 जिनकी लेशमात्र भक्तिका सम्पर्क होनेसे परमानन्दका समुद्र उमड़ आता है, आपके उन शुद्ध चरण-कमलोंके लिये पाद्य प्रस्तुत किया जाता है।

अर्थ

तापत्रयहरं दिव्यं परमानन्दलक्षणम्।
 तापत्रयविनिर्मुक्तयै तवार्थं कल्पयाम्यहम्॥ ४८॥

देव! मैं तीन प्रकारके तापोंसे छुटकारा पानेके लिये आपकी सेवामें त्रितापहारी परमानन्द-स्वरूप दिव्य अर्थ अर्पण करता हूँ।

आचमनीय

वेदानामपि वेदाय देवानां देवतात्मने।
 आचामं कल्पयामीश शुद्धानां शुद्धिहेतवे॥ ४७॥

भगवन्! आप वेदोंके भी वेद और देवताओंके भी देवता हैं। शुद्ध पुरुषोंकी भी परम शुद्धिके हेतु हैं। मैं आपके लिये आचमनीय प्रस्तुत करता हूँ।

मधुपक्त

सर्वकालुष्यहीनाय परिपूर्णसुखात्मने।
 मधुपक्तमिदं देव कल्पयामि प्रसीद मे॥ ४९॥
 देव! आप सम्पूर्ण कलुषतासे रहित तथा

परिपूर्ण सुखस्वरूप हैं, मैं आपके लिये मधुपर्क
अर्पण करता हूँ। मुझपर प्रसन्न होइये।

पुनराचमनीय

उच्छिष्टेऽप्यशुचिर्वापि यस्य स्मरणमात्रतः ।
शुद्धिमाजोति तस्मै ते पुनराचमनीयकम् ॥५०॥

जिनके स्मरण करनेमात्रसे जूँठा या अपवित्र
मनुष्य भी शुद्धि प्राप्त कर लेता है, उन्हीं आप
परमेश्वरके लिये पुनः आचमनार्थ (जल) उपस्थित
करता हूँ।

स्नेह (तैल)

स्नेहं गृहाण स्नेहेन लोकनाथ महाशय ।
सर्वलोकेषु शुद्धात्मन् ददामि स्नेहमुत्तमम् ॥५१॥

जगदीश्वर! आपका अन्तःकरण विशाल है।
सम्पूर्ण लोकोंमें आप ही शुद्ध-बुद्ध आत्मा हैं, मैं
आपको यह उत्तम स्नेह (तैल) अर्पण करता हूँ।
आप इस स्नेहको स्नेहपूर्वक ग्रहण कीजिये।

स्नान

परमानन्दबोधाब्धिनिमग्ननिजमूर्तये ।
साङ्घोपाङ्गमिदं स्नानं कल्पयाम्यहमीश ते ॥५२॥

ईश! आपका निज स्वरूप तो निरन्तर
परमानन्दमय ज्ञानके अगाध महासागरमें निमग्न
रहता है, (आपके लिये बाह्य स्नानकी क्या
आवश्यकता है?) तथापि मैं आपके लिये यह
साङ्घोपाङ्ग स्नानकी व्यवस्था करता हूँ।

अभिषेक

सहस्रं वा शतं वापि यथाशक्त्यादरेण च ।
गन्धपुष्पादिकैरीश मनुना चाभिषिङ्गये ॥५३॥

ईश! मैं आदरपूर्वक यथाशक्ति गन्ध-पुष्प
आदिसे तथा मन्त्रद्वारा सहस्र अथवा सौ बार
आपका अभिषेक करता हूँ।

वस्त्र

मायाचित्रपटच्छन्ननिजगुह्योरुतेजसे ।
निरावरणविज्ञान वासस्ते कल्पयाम्यहम् ॥५४॥

निरावृतविज्ञानस्वरूप परमेश्वर! आपने मायारूप
विचित्र पटके द्वारा अपने महान् तेजको छिपा

रखा है। मैं आपके लिये वस्त्र अर्पण करता हूँ।
उत्तरीय

यमाश्रित्य महामाया जगत्सम्मोहिनी सदा ।
तस्मै ते परमेशाय कल्पयाम्युत्तरीयकम् ॥५५॥

जिनके आश्रित रहकर भगवती महामाया सदा
सम्पूर्ण जगत्को मोहित किया करती है, उन्हीं
आप परमेश्वरके लिये मैं उत्तरीय अर्पण करता हूँ।

दुर्गा देवी, भगवान् सूर्य तथा गणेशजीके
लिये लाल वस्त्र अर्पण करना चाहिये। भगवान्
विष्णुको पीत वस्त्र और भगवान् शिवको श्वेत
वस्त्र चढ़ाना चाहिये। तेल आदिसे दूषित फटे-
पुराने मलिन वस्त्रको त्याग दे।

यज्ञोपवीत

यस्य शक्तित्रयेणदं सम्प्रीतमखिलं जगत् ।
यज्ञसूत्राय तस्मै ते यज्ञसूत्रं प्रकल्पये ॥५७॥

जिनकी त्रिविध शक्तियोंसे यह सम्पूर्ण जगत्
सदा तृप्त रहता है, जो स्वयं ही यज्ञसूत्ररूप हैं,
उन्हीं आप प्रभुको मैं यज्ञसूत्र अर्पण करता हूँ।

भूषण

स्वभावसुन्दराङ्गाय नानाशक्त्याश्रयाय ते ।
भूषणानि विचित्राणि कल्पयाम्यमराचित् ॥५४॥

देवपूजित प्रभो! आपके श्रीअङ्ग स्वभावसे
ही परम सुन्दर हैं। आप नाना शक्तियोंके आश्रय
हैं, मैं आपको ये विचित्र आभूषण अर्पण करता हूँ।

गन्ध

परमानन्दसौरभ्यपरिपूर्णदिग्न्तरम् ।
गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वर ॥५९॥

परमेश्वर! जिसने अपनी परमानन्दमयी सुगन्धसे
सम्पूर्ण दिशाओंको भर दिया है, उस परम उत्तम
दिव्य गन्धको आप कृपापूर्वक स्वीकार करें।

पुष्प

तुरीयवनसभूतं नानागुणमनोहरम् ।
अमन्दसौरभं पुष्पं गृह्णतामिदमुत्तमम् ॥६०॥

प्रभो! तीनों अवस्थाओंसे परे तुरीयरूपी
वनमें प्रकट हुए इस परम उत्तम दिव्य पुष्पको

ग्रहण कीजिये। यह अनेक प्रकारके गुणोंके कारण अत्यन्त मनोहर है, इसकी सुगन्ध कभी मन्द नहीं होती।

केतकी, कुटज, कुन्द, बन्धूक (दुपहरिया), नागकेसर, जवा तथा मालती—ये फूल भगवान् शङ्करको नहीं चढ़ाने चाहिये। मातुलिङ्ग (विजौरा नीबू) और तगर कभी सूर्यको नहीं चढ़ावे। दूर्वा, आक और मदार—ये सब दुर्गाजीको अर्पण न करे तथा गणेश-पूजनमें तुलसीको सर्वथा त्याग दे। कमल, दौना, मरुआ, कुश, विष्णुक्रान्ता, पान, दुर्वा, अपामार्ग, अनार, आँवला और अगस्त्यके पत्रोंसे देवपूजा करनी चाहिये। केला, बेर, आँवला, इमली, बिजौरा, आम, अनार, जंबीर, जामुन और कटहल नामक वृक्षके फलोंसे विद्वान् पुरुष देवताकी पूजा करे। सूखे पत्तों, फूलों और फलोंसे कभी देवताका पूजन न करे। मुने! आँवला, खैर, बिल्व और तमालके पत्र यदि छिन्न-भिन्न भी हों तो विद्वान् पुरुष उन्हें दूषित नहीं कहते। कमल और आँवला तीन दिनोंतक शुद्ध रहता है। तुलसीदल और बिल्वपत्र—ये सदा शुद्ध होते हैं। पलाश और कासके फूलोंसे तथा तमाल, तुलसी, आँवला और दूर्वाके पत्तोंसे कभी जगदम्बा दुर्गाजीकी पूजा न करे। फूल, फल और पत्रको देवतापर अधोमुख करके न चढ़ावे। ब्रह्मन्! पत्र-पुष्ट आदि जिस रूपमें उत्पन्न हों, उसी रूपमें उन्हें देवतापर चढ़ाना चाहिये।

धूप

वनस्पतिरसं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम्।
आध्रेयं देवदेवेश धूपं भक्त्या गृहणमे॥७१॥

देवदेवेश! यह सूँधने योग्य धूप भक्तिपूर्वक आपकी सेवामें अर्पित हैं, इसे ग्रहण करें। यह वनस्पतिका सुगन्धयुक्त परम मनोहर दिव्य रस है।

दीप

सुप्रकाशं महादीपं सर्वदा तिमिरापहम्।
घृतवर्तिसमायुक्तं गृहणम् सत्कृतम्॥७२॥

भगवन्! यह घीकी बत्तीसे युक्त महान् दीप सत्कारपूर्वक आपकी सेवामें समर्पित है। यह उत्तम प्रकाशसे युक्त और सदा अन्धकार दूर करनेवाला है। आप इसे स्वीकार करें।

नैवेद्य

अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम्।
भक्त्या गृहणमे देव नैवेद्यं तुष्टिदं सदा॥७३॥

देव! यह छः रसोंसे संयुक्त चार प्रकारका स्वादिष्ट अन्न भक्तिपूर्वक नैवेद्यके रूपमें समर्पित है, यह सदा संतोष प्रदान करनेवाला है। आप इसे ग्रहण करें।

ताम्बूल

नागवल्लीदलं श्रेष्ठं पूगखादिरचूर्णयुक्तं।
कर्पूरादिसुगन्धाढ्यं यद्दत्तं तद् गृहणमे॥७४॥

प्रभो! यह उत्तम पान सुपारी, कथा और चूनासे संयुक्त है, इसमें कपूर आदि सुगन्धित वस्तु डाली गयी है; यह जो आपकी सेवामें अर्पित है, इसे मुझसे ग्रहण करें।

तत्पश्चात् पुष्पाञ्जलि दे और आवरण पूजा करे। जिस दिशाकी ओर मुँह करके पूजन करे उसीको पूर्व दिशा समझे और उससे भिन्न दसों दिशाओंका निश्चय करे। कमलके केशरोंमें अग्निकोण आदिसे आरम्भ करके हृदय आदि अङ्गोंकी पूजा करे। अपने आगे नेत्रकी ओर सब दिशाओंमें अस्त्रकी अङ्ग-मन्त्रोंद्वारा क्रमशः पूजा करे। क्रमशः शुक्ल, श्वेत, सित, श्याम, कृष्ण तथा रक्त वर्णवाली अङ्गशक्तियोंका अपनी-अपनी दिशाओंमें ध्यान करना चाहिये। उन सबके हाथमें वर और अभयकी मुद्रा सुशोभित है। ‘अमुक आवरणके अन्तर्वर्ती देवताओंकी पूजा करता हूँ’ ऐसा कहे। तत्पश्चात् अलंकार, अङ्ग, परिचारक, वाहन तथा आयुधोंसहित समस्त देवताओंकी पूजा करके यह कहे ‘उपर्युक्त सब देवता पूजित तथा तर्पित होकर वरदायक हों’। मूलमन्त्रके अन्तमें निमाङ्कित वाक्यका उच्चारण करके इष्टदेवको पूजा समर्पित

करे—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यममुकावरणार्चनम् ॥ ८१-८२ ॥

‘शरणागतवत्सल ! मुझे अभीष्टसिद्धि प्रदान कीजिये । मैं आपको भक्तिपूर्वक अमुक आवरणकी पूजा समर्पित करता हूँ । (अमुकके स्थानपर ‘प्रथम’ या ‘द्वितीय’ आदि पद बोलना चाहिये) ।’

ऐसा कहकर इष्टदेवके मस्तकपर पुष्पाङ्गलि बिखेरे । तदनन्तर कल्पोक्त आवरणोंकी क्रमशः पूजा करनी चाहिये । आयुध और वाहनोंसहित इन्द्र आदि ही आवरण देवता हैं । उनका अपनी-अपनी दिशाओंमें पूजन करे । इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, ईशान, ब्रह्मा तथा नागराज अनन्त—ये दस देवता अथवा दिक्पाल प्रथम आवरणके देवता हैं । ऐरावत, भेड़, भैंसा, प्रेत, तिमि (मगर), मृग, अश्व, वृषभ, हंस और कच्छप—ये विद्वानोंद्वारा इन्द्रादि देवताओंके वाहन माने गये हैं, जो द्वितीय आवरणमें पूजित होते हैं । वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा, त्रिशूल, कमल और चक्र—ये क्रमशः इन्द्रादिके आयुध हैं (जो तृतीय आवरणमें पूजित होते हैं) ।

इस प्रकार आवरणपूजा समाप्त करके भगवान्‌की आरती करे । फिर शङ्खका जल चारों ओर छिड़कर ऊपर बाँह उठाये हुए भगवान्‌का नाम लेकर नृत्य करे और दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़कर साष्टाङ्ग प्रणाम करे । उसके बाद उठकर अपने इष्टदेवकी प्रार्थना करे । प्रार्थनाके पश्चात् दक्षिण भागमें वेदी बनाकर उसका संस्कार करे । मूलमन्त्रसे ईक्षण, अस्त्र (फट)-द्वारा प्रोक्षण और कुशोंसे ताड़न (मार्जन) करके कवच (हुम्) के द्वारा पुनः वेदीका अभिषेक करे । उसके बाद वेदीकी पूजा करके उसपर अग्निकी स्थापना करे । फिर अग्निको प्रज्वलित करके उसमें इष्टदेवका ध्यान करते हुए आहुति दे । समस्त महाव्याहतियोंसे चार बार धीकी आहुति देकर उत्तम साधक भात,

तिल अथवा घृतयुक्त खीरद्वारा पचीस आहुति करे । फिर व्याहतिसे होम करके गन्ध आदिके द्वारा पुनः इष्टदेवकी पूजा करे । भगवान्‌की मूर्तिमें अग्निके लीन होनेकी भावना करे । उसके बाद निम्राङ्कित प्रार्थना पढ़कर अग्निका विसर्जन करे— भो भो वहे महाशक्ते सर्वकर्मप्रसाधक ।

कर्मान्तरेऽपि सम्प्राप्ते सात्रिष्यं कुरु सादरम् ॥ ९३ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी शक्ति बहुत बड़ी है । आप सम्पूर्ण कर्मोंकी सिद्धि करानेवाले हैं । कोई दूसरा कार्य प्राप्त होनेपर भी आप यहाँ सादर पथारें ।

इस प्रकार विसर्जन करके अग्निदेवताके लिये आचमनार्थ जल दे । फिर बचे हुए हविष्यसे इष्टदेवको, पूर्वोक्त पार्षदोंको भी गन्ध, पुष्प और अक्षतसहित बलि दे । इसके बाद सब दिशाओंमें योगिनी आदिको बलि अर्पण करे ।

ये रौद्रा रौद्रकर्मणो रौद्रस्थाननिवासिनः ।
योगिन्यो ह्यग्रस्तपाश्च गणानामधिपाश्च ये ॥
विष्वभूतास्तथा चान्ये दिविविदिक्षु समाश्रिताः ।
सर्वे ते प्रीतमनसः प्रतिगृह्णन्विमं बलिम् ॥

(९५—९७)

जो भयंकर हैं, जिनके कर्म भयंकर हैं, जो भयंकर स्थानोंमें निवास करते हैं, जो उग्र रूपवाली योगिनियाँ हैं, जो गणोंके स्वामी तथा विष्वस्वरूप हैं और प्रत्येक दिशा तथा विदिशामें स्थित हैं, वे सब प्रसन्नचित्त होकर यह बलि ग्रहण करें ।

इस प्रकार आठों दिशाओंमें बलि अर्पण करके पुनः भूतबलि दे । तत्पश्चात् धेनुमुद्राद्वारा जलका अमृतीकरण करके इष्टदेवताके हाथमें पुनः आचमनीयके लिये जल दे । फिर मूर्तिमें स्थित देवताका विसर्जन करके पुनः उस मूर्तिमें ही उनको प्रतिष्ठित करे । तत्पश्चात् भगवत्प्रसादभोजी पार्षदको नैवेद्य दे । महादेवजीके ‘चण्डेश’ भगवान् विष्णुके ‘विष्वक्सेन’ सूर्यके ‘चण्डांशु’ गणेशजीके ‘वक्रतुण्ड’ और भगवती दुर्गाकी ‘उच्छिष्ट

चाण्डाली'—ये सब उच्छिष्ठभोजी कहे गये हैं।

तदनन्तर मूलमन्त्रके ऋषि आदिका स्मरण करके मूलसे ही षडङ्ग-न्यास करे और यथाशक्ति मन्त्रका जप करके देवताको अर्पित करे।

गुह्यातिगुह्यगोमा त्वं गृहणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात्त्वयि स्थिता ॥ १०२ ॥

'देव ! आप गुह्यसे अतिगुह्य वस्तुकी भी रक्षा करनेवाले हैं। आप मेरे द्वारा किये गये इस जपको ग्रहण करें। आपके प्रसादसे आपके भीतर रहनेवाली सिद्धि मुझे प्राप्त हो।'

इसके बाद पराढ़मुख अर्घ्य देकर फूलोंसे पूजा करे। पूजनके पश्चात् प्रणाम करना चाहिये। दोनों हाथोंसे, दोनों पैरोंसे, दोनों घुटनोंसे, छातीसे, मस्तकसे, नेत्रोंसे, मनसे और वाणीसे जो नमस्कार किया जाता है उसे 'अष्टाङ्ग प्रणाम' कहा गया है। दोनों बाहुओंसे, घुटनोंसे, छातीसे, मस्तकसे जो प्रणाम किया जाता है, वह 'पञ्चाङ्ग प्रणाम' है। पूजामें ये दोनों अष्टाङ्ग और पञ्चाङ्ग प्रणाम श्रेष्ठ माने गये हैं। मन्त्रका साधक दण्डवत्-प्रणाम करके भगवान्‌की परिक्रमा करे। भगवान् विष्णुकी चार बार, भगवान् शङ्करकी आधी बार, भगवती दुर्गाकी एक बार, सूर्यकी सात बार और गणेशजीकी तीन बार परिक्रमा करनी चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्रोपासक भक्तिपूर्वक स्तोत्र-पाठ करे। इसके बाद इस प्रकार कहे—

'ॐ इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा हस्ताभ्यां पदभ्यामुदरेण शिश्नेन यत्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा। मां मदीयं च सकलं विष्णवे ते समर्पये ॐ तत्सत्।'

यह विद्वानोंने 'ब्रह्मार्पण मन्त्र' कहा है। इसके

आदिमें प्रणव है, उसके बाद बयासी अक्षरोंका यह मन्त्र है, इसीसे भगवान्‌को आत्म-समर्पण करना चाहिये। इसके बाद नीचे लिखे अनुसार क्षमा-प्रार्थना करे—

अज्ञानाद्वा प्रमादाद्व वैकल्यात् साधनस्य च।
यन्यूनमतिरिक्तं वा तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि॥
द्रव्यहीनं क्रियाहीनं मन्त्रहीनं मयान्यथा।
कृतं यत्तत् क्षमस्वेश कृपया त्वं दयानिधे॥
यन्मया क्रियते कर्म जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु।
तत्सर्वं तावकी पूजा भूयाद् भूत्यै च मे प्रभो॥
भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवावलम्बनम्।
त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं प्रभो॥
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम।
तस्मात् कारुण्यभावेन क्षमस्व परमेश्वर॥
अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया।
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व जगतां पते॥
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्।
पूजां चैव न जानामि त्वं गतिः परमेश्वर॥

(ना० पू० ६७। ११०—११७)

'भगवन् ! अज्ञानसे, प्रमादसे तथा साधनकी कमीसे मेरे द्वारा जो न्यूनता या अधिकताका दोष बन गया हो, उसे आप क्षमा करेंगे। ईश्वर ! दयानिधे ! मैंने जो द्रव्यहीन, क्रियाहीन तथा मन्त्रहीन विधिविपरीत कर्म किया है, उसे आप कृपापूर्वक क्षमा करें। प्रभो ! मैंने जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति-अवस्थाओंमें जो कर्म किया है, वह सब आपकी पूजारूप हो जाय और मेरे लिये कल्याणकारी हो। धरतीपर जो लड़खड़ाकर गिरते हैं, उनको सहारा देनेवाली भी धरती ही है, उसी प्रकार आपके प्रति अपराध करनेवाले मनुष्योंके लिये भी आप ही शरणदाता हैं, परमेश्वर ! आपके

* इसका भावार्थ इस प्रकार है—'इससे पहले प्राण, बुद्धि, देहधर्मके अधिकारसे जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओंमें मनसे, वाणीसे, दोनों हाथोंसे, चरणोंसे, उदरसे, लिङ्गसे मैंने जो कुछ सोचा है, जो बात कही है तथा जो कर्म किया है, वह ब्रह्मार्पण हो, स्वाहा। मैं अपनेको और अपने सर्वस्वको आप श्रीविष्णुकी सेवामें समर्पित करता हूँ। ॐ तत्सत्।'

सिवा दूसरा कोई शरण नहीं है। आप ही मेरे शरणदाता हैं। अतः करुणापूर्वक मेरी त्रुटियोंको क्षमा करें। जगत्पते! मेरे द्वारा रात-दिन सहस्रों अपराध बनते हैं। अतः 'यह मेरा दास है।' ऐसा समझकर क्षमा करें। परमेश्वर! मैं आवाहन करना नहीं जानता, विसर्जन भी नहीं जानता और पूजा करना भी अच्छी तरह नहीं जानता, अब आप ही मेरी गति हैं—सहारे हैं।'

इस प्रकार प्रार्थना करके मन्त्रका साधक मूलमन्त्र पढ़कर विसर्जनके लिये नीचे लिखे श्लोकका पाठ करे और पुष्टाञ्जलि दे—
गच्छ गच्छ परं स्थानं जगदीश जगन्मय।

यन्न ब्रह्मादयो देवा जानन्ति च सदाशिवः ॥ ३१८ ॥

'जगदीश! जगन्मय! आप अपने उस परम धामको पधारिये, जिसे ब्रह्मा आदि देवता तथा भगवान् शिव भी नहीं जानते हैं।'

इस प्रकार पुष्टाञ्जलि देकर संहार-मुद्राके द्वारा भगवान्को उनके अङ्गभूत पार्षदोंसहित सुषुम्णा नाडीके मार्गसे अपने हृदयकमलमें स्थापित करके पुष्ट सूँघकर विद्वान् पुरुष भगवान्का विसर्जन करे। दो शङ्ख, दो चक्रशिला (गोमतीचक्र), दो शिवलिङ्ग, दो गणेशमूर्ति दो सूर्यप्रतिमा और दुर्गाजीकी तीन प्रतिमाओंका पूजन एक घरमें नहीं करना चाहिये; अन्यथा दुःखकी प्राप्ति होती है। इसके बाद निम्राङ्कित मन्त्र पढ़कर भगवान्का चरणामृत पान करे—

अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम्।
सर्वपापक्षयकरं विष्णुपादोदकं शुभम् ॥ १२१-१२२ ॥

'भगवान् विष्णुका शुभ चरणामृत अकालमृत्युका अपहरण, सम्पूर्ण व्याधियोंका नाश तथा समस्त पापोंका संहार करनेवाला है।'

भिन्न-भिन्न देवताओंके भक्तोंको चाहिये कि

वे अपने आराध्यदेवको निवेदित किये हुए नैवेद्य-प्रसादको ग्रहण करें। भगवान् शिवको निवेदित निर्मल्य—पत्र, पुष्ट, फल और जल ग्रहण करने योग्य नहीं है, किंतु शालग्राम-शिलाका स्पर्श होनेसे वह सब पवित्र (ग्राह्य) हो जाता है।

पूजाके पाँच प्रकार

नारद! सबने पाँच प्रकारकी पूजा बतायी है—आतुरी, सौतिकी, त्रासी, साधनाभाविनी तथा दौर्बोधी। इनके लक्षणोंका मुझसे क्रमशः वर्णन सुनो—रोग आदिसे युक्त मनुष्य न स्नान करे, न जप करे और न पूजन ही करे। आराध्यदेवकी पूजा, प्रतिमा अथवा सूर्यमण्डलका दर्शन एवं प्रणाम करके मन्त्र-स्मरणपूर्वक उनके लिये पुष्टाञ्जलि दे। फिर जब रोग निवृत्त हो जाय तो स्नान और नमस्कार करके गुरुकी पूजा करे तथा उनसे प्रार्थना करे—'जगन्नाथ! जगत्पूज्य! दयानिधे! आपके प्रसादसे मुझे पूजा छोड़नेका दोष न लगे।' तत्पश्चात् यथाशक्ति ब्राह्मणोंका भी पूजन करके उन्हें दक्षिणा आदिसे संतुष्ट करे और उनसे आशीर्वाद लेकर पूर्ववत् भगवान्की पूजा करे। यह 'आतुरी पूजा' कही गयी है। अब सौतिकी पूजा बतायी जाती है। सूतक दो प्रकारका कहा गया है—जातसूतक और मृतसूतक। दोनों ही सूतकोंमें एकाग्रचित्त हो मानसी संध्या करके मनसे ही भगवान्का पूजन और मनसे ही मन्त्रका जप करे। फिर सूतक बीत जानेपर पूर्ववत् गुरु और ब्राह्मणोंका पूजन करके उनसे आशीर्वाद लेकर सदाकी भाँति पूजाका क्रम प्रारम्भ कर दे*। यह 'सौतिकी पूजा' कही गयी। अब त्रासी पूजा बतायी जाती है। दुष्टोंसे त्रासको प्राप्त हुआ मनुष्य यथाप्राप्त उपचारोंसे अथवा मानसिक उपचारोंसे भगवान्की पूजा करे। यह 'त्रासी पूजा' कही

* तत्र स्नात्वा मानसी तु कृत्वा संध्यांसमाहितः। मनसैव यजेद् देवं मनसैव जपेन्मनुम् ॥

निवृत्ते सूतके प्राग्वत् सम्पूज्य च गुरुद्विजान्। तेभ्यशाशिषमादाय ततो नित्यक्रमं चरेत् ॥

गयी है। पूजा-साधन-सामग्री जुटानेकी शक्ति न होनेपर यथाप्राप्त पत्र, पुष्टि और फलका संग्रह करके उन्हींके द्वारा या मानसोपचारसे भगवान्‌का पूजन करे। यह 'साधनाभाविनी पूजा' कही गयी है। नारद! अब दौर्बोधी पूजाका परिचय सुनो— स्त्री, वृद्ध, बालक और मूर्ख मनुष्य अपने स्वल्प ज्ञानके अनुसार जिस किसी क्रमसे जो भी पूजा करते हैं, उसे 'दौर्बोधी पूजा' कहते हैं। इस प्रकार साधकको जिस किसी तरह भी सम्भव हो, देवपूजा करनी चाहिये। देवपूजाके बाद

बलिवैश्वदेव आदि करके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराये। तत्पश्चात् भगवान्‌को अर्पित किया हुआ प्रसाद स्वयं स्वजनोंके साथ भोजन करे। फिर आचमन एवं मुख-शुद्धि करके कुछ देर विश्राम करे। फिर स्वजनोंके साथ बैठकर पुराण तथा इतिहास सुने। जो सब कल्पों (सम्पूर्ण पूजा-विधियों)-के सम्पादनमें समर्थ होकर भी अनुकल्प (पीछे बताये हुए अपूर्ण विधान)-का अनुष्ठान करता है, उस उपासकको सम्पूर्ण फलकी प्राप्ति नहीं होती है। (पूर्व० ६७ अध्याय)

श्रीमहाविष्णुसम्बन्धी अष्टाक्षर, द्वादशाक्षर आदि विविध मन्त्रोंके अनुष्ठानकी विधि

सनत्कुमारजी कहते हैं—नारद! अब मैं महाविष्णुके मन्त्रोंका वर्णन करता हूँ, जो लोकमें अत्यन्त दुर्लभ हैं। जिन्हें पाकर मनुष्य शीघ्र ही अपने अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त कर लेते हैं। जिनके उच्चारणमात्रसे ही राशि-राशि पाप नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मा आदि भी जिन मन्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करके ही संसारकी सृष्टिमें समर्थ होते हैं। प्रणव और नमःपूर्वक डे विभक्त्यन्त 'नारायण' पद हो तो 'ॐ नमो नारायणाय' यह अष्टाक्षर मन्त्र होता है। साध्य नारायण इसके ऋषि हैं, गायत्री छन्द है, अविनाशी भगवान् विष्णु देवता हैं, ॐ बीज है, नमः शक्ति है तथा सम्पूर्ण मनोरथोंकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। इसका पञ्चाङ्ग-न्यास इस प्रकार है— कुञ्जोल्काय हृदयाय नमः, महोल्काय शिरसे स्वाहा, वीरोल्काय शिखायै वषट्, अत्युल्काय कवचाय हुं, सहस्रोल्काय अस्त्राय फट्। इस प्रकार पञ्चाङ्गकी कल्पना करनी चाहिये। फिर मन्त्रके छः वर्णोंसे षड्ङ्ग-न्यास करके शेष दो मन्त्राक्षरोंका कुक्षित तथा पृष्ठभागमें न्यास करे। इसके बाद सुदर्शन-मन्त्रसे दिग्बन्ध करना चाहिये। 'ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्' यह बारह अक्षरोंका मन्त्र 'सुदर्शन-मन्त्र' कहा गया है।

अब मैं विभूतिपञ्चर नामक दशावृत्तिमय न्यासका वर्णन करता हूँ। मूल मन्त्रके अक्षरोंका अपने शरीरके मूलाधार हृदय, मुख, दोनों भुजा तथा दोनों चरणोंके मूलभाग तथा नासिकामें न्यास करे। यह प्रथम आवृत्ति कही गयी है। कण्ठ, नाभि, हृदय, दोनों स्तन, दोनों पार्श्वभाग तथा पृष्ठभागमें पुनः मन्त्राक्षरोंका न्यास करे। यह द्वितीय आवृत्ति बतायी गयी है। मूर्धा, मुख, दोनों नेत्र, दोनों श्रवण तथा नासिका-छिद्रोंमें मन्त्राक्षरोंका न्यास करे। यह तृतीय आवृत्ति है। दोनों भुजाओं और दोनों पैरोंकी सटी हुई अंगुलियोंमें चौथी आवृत्तिका न्यास करे। धातु, प्राण और हृदयमें पाँचवीं आवृत्तिका न्यास करे। सिर, नेत्र, मुख और हृदय, कुक्षि, ऊरु, जड़ा तथा दोनों पैरोंमें विद्वान् पुरुष एक-एक करके क्रमशः मन्त्र-वर्णोंका न्यास करे। (यह छठी, सातवीं, आठवीं आवृत्ति है) हृदय, कंधा, ऊरु तथा चरणोंमें मन्त्रके चार वर्णोंका न्यास करे। शेष वर्णोंका चक्र, शङ्ख, गदा और कमलकी मुद्रा बनाकर उनमें न्यास करे (यह नवम, दशम आवृत्ति है)। यह सर्वश्रेष्ठ न्यास विभूति-पञ्चर नामसे विख्यात है। मूलके एक-एक अक्षरको अनुस्वारसे युक्त करके उसके दोनों ओर प्रणवका सम्पुट लगाकर

न्यास करे अथवा आदिमें प्रणव और अन्तमें नमः लगाकर मन्त्राक्षरोंका न्यास करे। ऐसा दूसरे विद्वानोंका कथन है।

तत्पश्चात् बारह आदित्योंसहित द्वादश मूर्तियोंका न्यास करे। ये बारह मूर्तियाँ आदिमें द्वादशाक्षरके एक-एक मन्त्रसे युक्त होती हैं और इनके साथ बारह आदित्योंका संयोग होता है। यह अष्टाक्षर-मन्त्र अष्टप्रकृतिरूप बताया गया है। इनके साथ चार^१ आत्माका योग होनेसे द्वादशाक्षर होता है। ललाट, कुक्षि, हृदय, कण्ठ, दक्षिण पार्श्व, दक्षिण अंस, गल दक्षिणभाग, वाम पार्श्व, वाम अंस, गल वामभाग, पृष्ठभाग तथा कुकुद—इन बारह अङ्गोंमें मन्त्रसाधक क्रमशः बारह मूर्तियोंका न्यास करे। केशवका धाताके साथ ललाटमें न्यास करके नारायणका अर्यमाके साथ कुक्षिमें, माधवका मित्रके साथ हृदयमें तथा गोविन्दका वरुणके साथ कण्ठकूपमें न्यास करे। विष्णुका अंशुके साथ, मधुसूदनका भगके साथ, त्रिविक्रमका विवस्वानके साथ, वामनका इन्द्रके साथ, श्रीधरका पूषाके साथ और हृषीकेशका पर्जन्यके साथ न्यास करे। पद्मनाभका त्वष्टके साथ तथा दामोदरका विष्णुके साथ न्यास करे^२। तत्पश्चात् द्वादशाक्षर-

मन्त्रका सम्पूर्ण सिरमें न्यास करे। इसके बाद विद्वान् पुरुष किरीट मन्त्रके द्वारा व्यापकन्यास करे। किरीट मन्त्र प्रणवके अतिरिक्त पैंसठ अक्षरका बताया गया है—‘ॐ किरीटकेयूरहारमकर-कुण्डलशङ्खचक्रगदाम्भोजहस्तपीताम्बरधर-श्रीवत्साङ्गितवक्षःस्थलश्रीभूमिसहितस्वात्पञ्चोति-र्मयदीपकराय सहस्रादित्यतेजसे नमः।’ इस प्रकार न्यासविधि करके सर्वव्यापी भगवान् नारायणका ध्यान करे।

उद्यत्कोट्यर्कसदृशं शङ्खं चक्रं गदाम्बुजम्।
दधतं च करैर्भूमिश्रीभ्यां पार्श्वद्वयाङ्गितम्॥
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम्।
हारकेयूरवलयाङ्गदं पीताम्बरं स्मरेत्॥

(ना० पूर्व० त० ७०। ३२-३३)

जिनकी दिव्य कान्ति उदय-कालके कोटि-कोटि सूर्योंके सदृश है, जो अपने चार भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा और कमल धारण करते हैं, भूदेवी तथा श्रीदेवी जिनके उभय पार्श्वकी शोभा बढ़ा रही हैं, जिनका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नसे सुशोभित है, जो अपने गलेमें चमकीली कौस्तुभमणि धारण करते हैं और हार, केयूर, वलय तथा अंगद आदि दिव्य आभूषण जिनके श्रीअङ्गोंमें

१. आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा तथा ज्ञानात्मा—ये चार आत्मा हैं।

२. यह मूर्तिपञ्चर-न्यास कहलाता है। इसका प्रयोग इस प्रकार है—

ललाटे—३० अम् केशवाय धात्रे नमः।

कुक्षौ—३० नम् आम् नारायणाय अर्यम्णे नमः।

हृदि—३० मोम् इम् माधवाय मित्राय नमः।

कण्ठकूपे—३० भम् इम् गोविन्दाय वरुणाय नमः।

दक्षिणपार्श्वे—३० गम् उम् विष्णवे अंशवे नमः।

दक्षिणांसे—३० वम् ऊम् मधुसूदनाय भगाय नमः।

गलदक्षिणभागे—३० तेम् एम् त्रिविक्रमाय विवस्वते नमः।

वामपार्श्वे—३० वाम् ऐम् वामनाय इन्द्राय नमः।

वामांसे—३० सुम् औम् श्रीधराय पूष्णे नमः।

गलवामभागे—३० देम् औम् हृषीकेशाय पर्जन्याय नमः।

पृष्ठे—३० वाम् अम् पद्मनाभाय त्वष्ट्रे नमः।

कुकुदि—३० यम् अः दामोदराय विष्णवे नमः।



पड़कर धन्य हो रहे हैं, उन पीताम्बरधारी भगवान् विष्णुका चिन्तन करना चाहिये।

इन्द्रियोंको वशमें रखकर मन्त्रमें जितने वर्ण हैं, उतने लाख मन्त्रका विधिवत् जप करे। प्रथम लाख मन्त्रके जपसे निश्चय ही आत्मशुद्धि होती है। दो लाख जप पूर्ण होनेपर साधकको मन्त्र-शुद्धि प्राप्त होती है। तीन लाखके जपसे साधक स्वर्गलोक प्राप्त कर लेता है। चार लाखके जपसे मनुष्य भगवान् विष्णुके समीप जाता है। पाँच लाखके जपसे निर्मल ज्ञान प्राप्त होता है। छठे लाखके जपसे मन्त्र-साधककी बुद्धि भगवान् विष्णुमें स्थिर हो जाती है। सात लाखके जपसे मन्त्रोपासक श्रीविष्णुका सारूप्य प्राप्त कर लेता है। आठ लाखका जप पूर्ण कर लेनेपर मन्त्र-जप करनेवाला पुरुष निर्वाण (परम शान्ति एवं मोक्ष)- को प्राप्त होता है। इस प्रकार जप करके विद्वान् पुरुष मधुराक्त कमलोंद्वारा मन्त्रसंस्कृत अग्निमें दशांश होम करे। मण्डूकसे लेकर परतत्त्वपर्यन्त सबका पीठपर यत्पूर्वक पूजन करे। विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्ली, सत्या, ईशाना तथा नर्वी अनुग्रहा—ये नौ पीठशक्तियाँ

हैं। (इन सबका पूजन करना चाहिये।) इसके बाद 'ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपीठाय नमः' यह छत्तीस अक्षरका पीठमन्त्र है, इससे भगवान् को आसन देना चाहिये। मूलमन्त्रसे मूर्ति-निर्माण कराकर उसमें भगवान् का आवाहन करके पूजा करे। पहले कमलके केसरोंमें मन्त्रसम्बन्धी छः अङ्गोंका पूजन करना चाहिये। इसके बाद अष्टदल कमलके पूर्व आदि दलोंमें क्रमशः वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्धका और आग्नेय आदि कोणों क्रमशः उनकी शक्तियोंका पूजन करे। उनके नाम इस प्रकार हैं—शान्ति, श्री, रति तथा सरस्वती। इनकी क्रमशः पूजा करनी चाहिये। वासुदेवकी अङ्गकान्ति सुवर्णके समान है। संकर्षण पीत वर्णके हैं। प्रद्युम्न तमालके समान श्याम और अनिरुद्ध इन्द्रनील मणिके सदृश हैं। ये सब-के-सब पीताम्बर धारण करते हैं। इनके चार भुजाएँ हैं। ये शङ्ख, चक्र, गदा और कमल धारण करनेवाले हैं। शान्तिका वर्ण श्वेत, श्रीका वर्ण सुवर्ण-गौर, सरस्वतीका रंग गोदुग्धके समान उज्ज्वल तथा रतिका वर्ण दूर्वादलके समान श्याम है। इस प्रकार ये सब शक्तियाँ हैं। कमलदलोंके अग्रभागमें चक्र, शङ्ख, गदा, कमल, कौस्तुभमणि, मुसल, खड्ग और वनमालाका क्रमशः पूजन करे। चक्रका रंग लाल, शङ्खका रंग चन्द्रमाके समान श्वेत, गदाका पीला, कमलका सुवर्णके समान, कौस्तुभका श्याम, मुसलका काला, तलवारका श्वेत और वनमालाका उज्ज्वल है। इनके बाह्यभागमें भगवान् के सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हुए कुंकुम वर्णवाले पक्षिराज गरुड़का पूजन करे। तत्पश्चात् क्रमशः दक्षिण पार्श्वमें शङ्खनिधि और वाम पार्श्वमें पद्मनिधिकी पूजा करे। इनका वर्ण क्रमशः मोती और माणिक्यके समान है। पश्चिममें ध्वजकी पूजा करे। अग्निकोणमें रक्तवर्णके विघ्न (गणेश)-का,

नैऋत्य कोणमें श्याम वर्णवाले आर्यका, वायव्यकोणमें श्यामवर्ण दुर्गाका तथा ईशान कोणमें पीतवर्णके सेनानीका पूजन करना चाहिये। इनके बाह्यभागमें विद्वान् पुरुष इन्द्र आदि लोकपालोंका उनके आयुधोंसहित पूजन करे। जो इस प्रकार आवरणोंसहित अविनाशी भगवान् विष्णुका पूजन करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तमें भगवान् विष्णुके धामको जाता है। खेत, धान्य और सुवर्णकी प्रासिके लिये धरणीदेवीका चिन्तन करे। उनकी कान्ति दूर्वादलके समान श्याम है और वे अपने हाथोंमें धानकी बाल लिये रहती हैं। देवाधिदेव भगवान्‌के दक्षिणभागमें पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली वीणा-पुस्तकधारिणी सरस्वतीदेवीका चिन्तन करे। वे क्षीरसागरके फेनपुङ्ककी भाँति उज्ज्वल दो वस्त्र धारण करती हैं। जो सरस्वतीदेवीके साथ परात्पर भगवान् विष्णुका ध्यान करता है, वह वेद और वेदाङ्गोंका तत्त्वज्ञ तथा सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ होता है।

जो प्रतिदिन प्रातःकाल पच्चीस बार (ॐ नमो नारायण) इस अष्टाक्षर मन्त्रका जप करके जल पीता है, वह सब पापोंसे मुक्त, ज्ञानवान् तथा नीरोग होता है। चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके समय उपवासपूर्वक ब्राह्मी घृतका स्पर्श करके उक्त मन्त्रका आठ हजार जप करनेके पश्चात् ग्रहण शुद्ध होनेपर श्रेष्ठ साधक उस घृतको पीले। ऐसा करनेसे वह मेधा (धारणशक्ति), कवित्वशक्ति तथा वाक्सिद्धि प्राप्त कर लेता है। यह नारायणमन्त्र सब मन्त्रोंमें उत्तम-से-उत्तम है। नारद! यह सम्पूर्ण सिद्धियोंका घर है; अतः मैंने तुम्हें इसका उपदेश किया है। 'नारायणाय' पदके अन्तमें 'विद्वहे' पदका उच्चारण करे। फिर 'डे' विभक्त्यन्त 'वासुदेव' पद (वासुदेवाय)-का उच्चारण करे, उसके बाद 'धीमहि' यह पद बोले। अन्तमें 'तत्त्वे विष्णुः प्रचोदयात्' इन

अक्षरोंका उच्चारण करे। यह (ॐ नारायणाय विद्वहे वासुदेवाय धीमहि तत्त्वे विष्णुः प्रचोदयात्) विष्णुगायत्री बतायी गयी है, जो सब पापोंका नाश करनेवाली है।

तार (ॐ), हृदय (नमः) भगवत् शब्दका चतुर्थी विभक्तिमें एकवचनान्त रूप (भगवते) तथा 'वासुदेवाय' यह द्वादशाक्षर (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) महामन्त्र कहा गया है, जो भोग और मोक्ष देनेवाला है। स्त्री और शूद्रोंको बिना प्रणवके यह मन्त्र जपना चाहिये और द्विजातियोंके लिये प्रणवसहित इसके जपका विधान है। इस मन्त्रके प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द, वासुदेव देवता, ॐ बीज और नमः शक्ति है। इस मन्त्रके एक, दो, चार और पाँच अक्षरों तथा सम्पूर्ण मन्त्रद्वारा पञ्चाङ्ग-न्यास करना चाहिये।

यहाँ भी पूर्वोक्तरूपसे ही ध्यान करना चाहिये। इस मन्त्रके बारह लाख जपका विधान है। धीसे सने हुए तिलसे जपके दशांशका हवन करना चाहिये। पूर्वोक्त पीठपर मूलमन्त्रसे मूर्तिकी कल्पना करके मन्त्रसाधक उस मूर्तिमें देवेश्वर वासुदेवका आवाहन और पूजन करे। पहले अङ्गोंकी पूजा करके वासुदेव आदि व्यूहोंकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर शान्ति आदि शक्तियोंका पूजन करना उचित है। वासुदेव आदिका पूर्व आदि दिशाओंमें और शान्ति आदि शक्तियोंका अग्नि आदि कोणोंमें पूजन करना चाहिये। तृतीय आवरणमें केशवादि द्वादश मूर्तियोंकी पूजा बतायी गयी है। चतुर्थ और पञ्चम आवरणमें इन्द्रादि दिक्षपालों और उनके आयुधोंकी पूजा करे। इनकी पूजाका स्थान भूपुर है। इस प्रकार पाँच आवरणोंसहित अविनाशी भगवान् विष्णुकी पूजा करके मनुष्य सम्पूर्ण मनोरथोंको पाता और अन्तमें भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है।

भगवान् श्रीराम, सीता, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न-सम्बन्धी विविध मन्त्रोंके अनुष्ठानकी संक्षिप्त विधि

सनत्कुमारजी कहते हैं—नारद ! अब भगवान् श्रीरामके मन्त्र बताये जाते हैं, जो सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं और जिनकी उपासनासे मनुष्य भवसागरके पार हो जाते हैं। सब उत्तम मन्त्रोंमें वैष्णव-मन्त्र श्रेष्ठ बताया जाता है। गणेश, सूर्य, दुर्गा और शिव-सम्बन्धी मन्त्रोंकी अपेक्षा वैष्णव-मन्त्र शीघ्र अभीष्ट सिद्ध करनेवाला है। वैष्णव-मन्त्रोंमें भी राम-मन्त्रोंके फल अधिक हैं। गणपति आदि मन्त्रोंकी अपेक्षा राममन्त्र कोटि-कोटि गुने अधिक महत्व रखते हैं। विष्णुशश्या (आ) के ऊपर विराजमान अग्नि (र)-का मस्तक यदि चन्द्रमा (अनुस्वार)-से विभूषित हो और उसके आगे 'रामाय नमः'—ये दो पद हों तो यह (रामाय नमः) मन्त्र महान् पापोंकी राशिका नाश करनेवाला है। श्रीरामसम्बन्धी सम्पूर्ण मन्त्रोंमें यह षडक्षर मन्त्र अत्यन्त श्रेष्ठ है। जानकर और बिना जाने किये हुए महापातक एवं उपपातक सब इस मन्त्रके उच्चारणमात्रसे तत्काल नष्ट हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है। इस मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, श्रीराम देवता, रां बीज और नमः शक्ति है। सम्पूर्ण मनोरथोंकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। छः दीर्घस्वरोंसे युक्त बीजमन्त्रद्वारा षडङ्गन्यास करे। फिर पीठन्यास आदि करके हृदयमें रघुनाथजीका इस प्रकार ध्यान करे—

कालाम्भोधरकान्तं च वीरासनसमास्थितम्।
ज्ञानमुद्रां दक्षहस्ते दधतं जानुनीतरम्॥
सरोरुहकरां सीतां विद्युदाभां च पार्श्वगाम्।
पश्यन्तीं रामवक्त्राब्जं विविधाकल्पभूषिताम्॥

(७३। १०—१२)

'भगवान् श्रीरामकी अङ्गकान्ति मेघकी काली घटाके समान श्याम है। वे वीरासन लगाकर बैठे हैं। दाहिने हाथमें ज्ञानमुद्रा धारण करके उन्होंने अपने बायें हाथको बायें घुटनेपर रख छोड़ा है।



उनके वामपार्श्वमें विद्युत्के समान कान्तिमती और नाना प्रकारके वस्त्रभूषणोंसे विभूषित सीतादेवी विराजमान हैं। उनके हाथमें कमल है और वे अपने प्राणवल्लभ श्रीरामचन्द्रजीका मुखारविन्द निहार रही हैं।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक छः लाख जप करे और कमलोंद्वारा प्रज्वलित अग्निमें दशांश होम करे। तत्पश्चात् ब्राह्मण-भोजन करावे। मूलमन्त्रसे इष्टदेवकी मूर्ति बनाकर उसमें भगवान्का आवाहन और प्रतिष्ठा करके साधक विमलादि शक्तियोंसे संयुक्त वैष्णवपीठपर उनकी पूजा करे। भगवान् श्रीरामके वामभागमें बैठी हुई सीतादेवीकी उन्हींके मन्त्रसे पूजा करनी चाहिये। 'श्रीसीतायै स्वाहा' यह जानकी-मन्त्र है। भगवान् श्रीरामके अग्रभागमें शार्ङ्गधनुषकी पूजा करके दोनों पार्श्वभागोंमें बाणोंकी अर्चना करे। केसरोंमें छः अङ्गोंकी पूजा करके दलोंमें हनुमान् आदिकी अर्चना करे। हनुमान्, सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, अङ्गद, शत्रुघ्न तथा जाम्बवान्—इनका क्रमशः पूजन करना

चाहिये। हनुमानजी भगवान्‌के आगे पुस्तक लेकर बाँच रहे हैं। श्रीरामके दोनों पार्श्वमें भरत और शत्रुघ्न चँवर लेकर खड़े हैं। लक्ष्मणजी पीछे खड़े होकर दोनों हाथोंसे भगवान्‌के ऊपर छत्र लगाये हुए हैं। इस प्रकार ध्यानपूर्वक उन सबकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर अष्टदलोंके अग्रभागमें सृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रपाल (अथवा राष्ट्रवर्धन), अकोप, धर्मपाल तथा सुमन्त्रकी पूजा करके उनके बाह्यभागमें इन्द्र आदि देवताओंका आयुधोंसहित पूजन करे। इस प्रकार भगवान् श्रीरामकी आराधना करके मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। घृतास शतपर्वीसे आहुति करनेवाला पुरुष दीर्घायु तथा नीरोग होता है। लाल कमलोंके होमसे मनोवाञ्छित धन प्राप्त होता है। पलाशके फूलोंसे हवन करके मनुष्य मेधावी होता है। जो प्रतिदिन प्रातःकाल पूर्वोक्त षडक्षरमन्त्रसे अभिमन्त्रित जल पीता है, वह एक वर्षमें कविसम्राट् हो जाता है। श्रीराममन्त्रसे अभिमन्त्रित अन्न भोजन करे। इससे बड़े-बड़े रोग शान्त हो जाते हैं। रोगके लिये बतायी हुई ओषधिका उक्त मन्त्रद्वारा हवन करनेसे मनुष्य क्षणभरमें रोगमुक्त हो जाता है। प्रतिदिन दूध पीकर नदीके तटपर या गोशालामें एक लाख जप करे और घृतयुक्त खीरसे आहुति करे तो वह मनुष्य विद्यानिधि होता है। जिसका आधिपत्य (प्रभुत्व) नष्ट हो गया है, ऐसा मनुष्य यदि शाकाहारी होकर जलके भीतर एक लाख जप करे और बेलके फूलोंकी दशांश आहुति दे तो उसी समय वह अपनी खोयी हुई प्रभुता पुनः प्राप्त कर लेता है। इसमें संशय नहीं है। गङ्गातटके समीप उपवासपूर्वक रहकर मनुष्य यदि एक लाख जप करे और त्रिमधुयुक्त कमलों अथवा बेलके फूलोंसे दशांश आहुति करे तो राज्यलक्ष्मी प्राप्त कर लेता है। मार्गशीर्षमासमें कन्द-मूल-फलके आहारपर रहकर जलमें खड़ा हो एक लाख जप करे और प्रज्वलित अग्निमें खीरसे

दशांश होम करे तो उस मनुष्यको भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके समान पुत्र एवं पौत्र प्राप्त होता है। इस मन्त्रराजके और भी बहुत-से प्रयोग हैं। पहले षट्कोण बनावे। उसके बाह्यभागमें अष्टदल कमल अङ्कित करे। उसके भी बाह्यभागमें द्वादशदल कमल लिखे। छः कोणोंमें विद्वान् पुरुष मन्त्रके छः अक्षरोंका उल्लेख करे। अष्टदल कमलमें भी प्रणवसम्पुटित उक्त मन्त्रके आठ अक्षरोंका उल्लेख करे। द्वादशदल कमलमें कामबीज (कर्ली) लिखे। मध्यभागमें मन्त्रसे आवृत नामका उल्लेख करे। बाह्यभागमें सुदर्शन मन्त्रसे और दिशाओंमें युग्मबीज (रां श्रीं)-से यन्त्रको आवृत करे। उसका भूपुर वज्रसे सुशोभित हो। कोण कन्दर्प, अंकुश, पाश और भूमिसे सुशोभित हो। यह यन्त्रराज माना गया है। भोजपत्रपर अष्टगन्धसे ऊपर बताये अनुसार यन्त्र लिखकर छः कोणोंके ऊपर दलोंका आवेष्टन रहे। अष्टदल कमलके केसरोंमें विद्वान् पुरुष युग्म बीजसे आवृत दो-दो स्वरोंका उल्लेख करे। यन्त्रके बाह्यभागमें मातृकावर्णोंका उल्लेख करे। साथ ही प्राण-प्रतिष्ठाका मन्त्र भी लिखे। मन्त्रोपासक किसी शुभ दिनको कण्ठमें, दाहिनी भुजामें अथवा मस्तकपर इस यन्त्रको धारण करे। इससे वह सम्पूर्ण पातकोंसे मुक्त हो जाता है। स्व बीज (रां), काम (कर्ली), सत्य (हीं), वाक् (ऐं), लक्ष्मी (श्रीं), तार (तँ) इन छः प्रकारके बीजोंसे पृथक्-पृथक् जुड़नेपर पाँच वर्णोंका 'रामाय नमः' मन्त्र छः भेदोंसे युक्त षडक्षर होता है। (यथा—'रां रामाय नमः, कर्ली रामाय नमः, हीं रामाय नमः' इत्यादि) यह छः प्रकारका षडक्षर-मन्त्र धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों फलोंको देनेवाला है। इन छहोंके क्रमशः ब्रह्मा, सम्मोहन, सत्य, दक्षिणामूर्ति, अगस्त्य तथा श्रीशिव—ये ऋषि बताये गये हैं। इनका छन्द गायत्री है, देवता श्रीरामचन्द्रजी हैं, आदिमें लगे हुए रां, कर्ली आदि बीज हैं और अन्तिम नमः पद शक्ति है। मन्त्रके छः अक्षरोंसे षडङ्ग-

न्यास करना चाहिये। अथवा छः दीर्घ स्वरोंसे युक्त बीजाक्षरोंद्वारा न्यास करे। मन्त्रके अक्षरोंका पूर्ववत् न्यास करना चाहिये।

ध्यान

ध्यायेत्कल्पतरोमूले सुवर्णमयमण्डपे।
पुष्पकाख्यविमानान्तःसिंहासनपरिच्छदे ॥
पद्मे वसुदले देवमिन्द्रनीलसमप्रभम्।
बीरासनसमासीनं ज्ञानमुद्गोपशोभितम् ॥
वामोरुन्यस्ततद्वस्तं सीतालक्ष्मणसेवितम् ॥
रत्नाकल्पं विभुं ध्यात्वा वर्णलक्षं जपेन्मनुम् ॥
यद्वा स्मारादिमन्त्राणां जयाभं च हरिं स्मरेत् ॥

(५९—६२)

भगवान्का इस प्रकार ध्यान करे। कल्पवृक्षके नीचे एक सुवर्णका विशाल मण्डप बना हुआ है। उसके भीतर पुष्पक विमान है, उस विमानमें एक दिव्य सिंहासन बिछा हुआ है। उसपर अष्टदल कमलका आसन है, जिसके ऊपर इन्द्रनील मणिके समान श्याम कान्तिवाले भगवान् श्रीरामचन्द्र वीरासनसे बैठे हुए हैं। उनका दाहिना हाथ ज्ञानमुद्गासे सुशोभित है और बायें हाथको उन्होंने बायीं जाँघपर रख छोड़ा है। भगवती सीता तथा सेवाव्रती लक्ष्मण उनकी सेवामें जुटे हुए हैं। वे सर्वव्यापी भगवान् रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हैं। इस प्रकार ध्यान करके छः अक्षरोंकी संख्याके अनुसार छः लाख मन्त्र जप करे अथवा कलीं आदिसे युक्त मन्त्रोंके साधनमें जयाभ श्रीहरिका चिन्तन करे।

पूजन तथा लौकिक प्रयोग सब पूर्वोक्त षडक्षर-मन्त्रके ही समान करने चाहिये। 'ॐ रामचन्द्राय नमः', 'ॐ रामभद्राय नमः' ये दो अष्टाक्षर मन्त्र हैं। इनके अन्तमें भी 'ॐ' जोड़ दिया जाय तो ये नवाक्षर हो जाते हैं। इनका सब पूजनादि कर्म मन्त्रोपासक षडक्षर-मन्त्रकी ही भाँति करे। 'हुं जानकीवल्लभाय स्वाहा' यह दस अक्षरोंवाला महामन्त्र है। इसके वसिष्ठ ऋषि, स्वराट् छन्द, सीतापति देवता, हुं बीज तथा स्वाहा शक्ति है (इन सबका यथास्थान न्यास करना चाहिये)। कलीं बीजसे क्रमशः षडङ्गन्यास करे। मन्त्रके दस अक्षरोंका क्रमशः मस्तक, ललाट, भ्रूमध्य, तालु, कण्ठ, हृदय, नाभि, ऊरु, जानु और चरण—इन दस अङ्गोंमें न्यास करे।

ध्यान

अयोध्यानगरे रत्नचित्रसौवर्णमण्डपे।
मन्दारपुष्पैराबद्धविताने तोरणान्विते ॥
सिंहासनसमासीनं पुष्पकोपरि राघवम्।
रक्षोभिर्हरिभिर्देवैः सुविमानगतैः शुभैः ॥



संस्तूयमानं मुनिभिः प्रहैश्च परिसेवितम् ।
सीतालंकृतवामाङ्गं लक्ष्मणोनोपशोभितम् ॥
श्यामं प्रसन्नवदनं सर्वाभरणभूषितम् ।

(६८—७१)



दिव्य अयोध्या-नगरमें रत्नोंसे चित्रित एक सुवर्णमय मण्डप है, जिसमें मन्दारके फूलोंसे चँदोवा बनाया गया है। उसमें तोरण लगे हुए हैं,

उसके भीतर पुष्टक विमानपर एक दिव्य सिंहासनके ऊपर राघवेन्द्र श्रीराम बैठे हुए हैं। उस सुन्दर विमानमें एकत्र हो शुभस्वरूप देवता, वानर, राक्षस और विनीत महर्षिगण भगवान्‌की स्तुति और परिचर्या करते हैं। श्रीराघवेन्द्रके वाम भागमें भगवती सीता विराजमान हो उस वामाङ्गकी शोभा बढ़ाती है। भगवान्‌का दाहिना भाग लक्ष्मणजीसे सुशोभित है, श्रीरघुनाथजीकी कान्ति श्याम है, उनका मुख प्रसन्न है तथा वे समस्त आभूषणोंसे विभूषित हैं।

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक एकाग्रचित्त हो दस लाख जप करे। कमल-पुष्पोंद्वारा दशांश होम और पूजन षडक्षर-मन्त्रके समान है। 'रामाय धनुष्पाणये स्वाहा।' यह दशाक्षर मन्त्र है। इसके ब्रह्मा ऋषि हैं, विराट् छन्द है तथा राक्षसमर्दन श्रीरामचन्द्रजी देवता कहे गये हैं। मन्त्रका आदि अक्षर अर्थात् 'रं' यह बीज है और स्वाहा शक्ति है। बीजके द्वारा षडङ्ग-न्यास करे। वर्णन्यास, ध्यान, पुरश्वरण तथा पूजन आदि कार्य दशाक्षर-मन्त्रके लिये पहले बताये अनुसार करे। इसके जपमें धनुष-बाण धारण करनेवाले भगवान् श्रीरामका ध्यान करना चाहिये। तार (३०)-के पश्चात् 'नमो भगवते रामचन्द्राय' अथवा 'रामभद्राय' ये दो प्रकारके द्वादशाक्षर-मन्त्र हैं। इनके ऋषि और ध्यान आदि पूर्ववत् हैं। श्रीपूर्वक, जयपूर्वक तथा जय-जयपूर्वक 'राम' नाम हो^१। यह (श्रीराम जय राम जय जय राम) तेरह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ब्रह्मा ऋषि, विराट् छन्द तथा पाप-राशिका नाश करनेवाले भगवान् श्रीराम देवता कहे गये हैं। इसके तीन पदोंकी दो-दो आवृत्ति करके षडङ्ग-न्यास करे^२। ध्यान-पूजन आदि सब कार्य दशाक्षर मन्त्रके समान करे।

१. श्रीपूर्व जयपूर्व च तदद्विधा रामनाम च ॥ ७६ ॥

त्रयोदशाक्षरो मन्त्रो मुनिर्ब्रह्मा विराट् स्मृतम् । छन्दस्तु देवता प्रोक्तो रामः पापौघनाशनः ॥ ७७ ॥

२. यथा—'श्रीराम' हृदयाय नमः । 'श्रीराम' शिरसे स्वाहा । 'जय राम' शिखायै वषट् । 'जय राम' कवचाय

'ॐ नमो भगवते रामाय महापुरुषाय नमः' यह अठारह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके विश्वामित्र ऋषि, धृति छन्द, श्रीराम देवता, ॐ बीज और 'नमः' शक्ति है। मन्त्रके एक, दो, चार, तीन, छः और दो अक्षरोंवाले पदोंद्वारा एकाग्रचित्त हो षड्ङ्ग-न्यास करे।

साथ पुष्पक-विमानमें सिंहासनपर बैठे हैं। उनका मस्तक जटाओंके मुकुटसे सुशोभित है। उनका वर्ण श्याम है और उन्होंने धनुष-बाण धारण कर रखा है। उनकी विजयके उपलक्षमें निशान, भेरी, पटह, शङ्ख और तुरही आदिकी ध्वनियोंके साथ-साथ नृत्य आरम्भ हो गया है। चारों ओर जय-



ध्यान

निःशाणभेरीपटहशङ्खतुर्यादिनिःस्वनैः ॥
प्रवृत्तनृत्ये परितो जयमङ्गलभाषिते ।
चन्दनागुरुकस्तूरीकर्पूरादिसुवासिते ॥
सिंहासने समासीनं पुष्पकोपरि राघवम् ।
सौभित्रिसीतासहितं जटामुकुटशोभितम् ॥
चापबाणधरं श्यामं ससुग्रीवविभीषणम् ।
हत्वा रावणमायान्तं कृतत्रैलोक्यरक्षणम् ॥

भगवान् राघवेन्द्र रावणको मारकर त्रिलोकीकी रक्षा करके लौट रहे हैं। वे सीता और लक्ष्मणके

जयकार तथा मङ्गल-पाठ हो रहा है। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कपूर आदिकी मधुर गन्ध छा रही है।

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक मन्त्रकी अक्षर-संख्याके अनुसार अठारह लाख जप करे और घृतमिश्रित खीरकी दशांश आहुति करके पूर्ववत् पूजन करे।

ॐ रां श्रीं रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम।
दशास्त्यान्तक मां रक्ष देहि मे परमां श्रियम् ॥*

यह पैंतीस अक्षरोंका मन्त्र है। बीजाक्षरोंसे

हुम्। 'जय जय राम' नेत्राभ्यां वौषट्। 'जय जय राम' अस्त्राय फट्। पुराणमें इसका प्रमापक मूल श्लोक इस प्रकार है—

षड्ङ्गानि प्रकुर्वीत द्विरावृत्या पदत्रयैः ।

* श्रीरामतापनीयोपनिषद्में यही मन्त्र इस प्रकार है—

रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम। भो दशास्त्यान्तकास्माकं रक्षां देहि श्रियं च ते ॥

विलग होनेपर बत्तीस अक्षरोंका मन्त्र होता है। यह अभीष्ट फल देनेवाला है। इसके विश्वामित्र ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, रामभद्र देवता, रां बीज और श्रीं शक्ति है। मन्त्रके चार पादोंके आदिमें तीनों बीज लगाकर उन पादों तथा सम्पूर्ण मन्त्रके द्वारा मन्त्रज्ञ पुरुष पञ्चाङ्ग-न्यास करके मन्त्रके एक-एक अक्षरका क्रमशः समस्त अङ्गोंमें न्यास करे। इसके ध्यान और पूजन आदि सब कार्य पूर्ववत् करे। इस मन्त्रका पुरश्चरण तीन लाखका है। इसमें खीरसे हवन करनेका विधान है। पीतवर्णवाले श्रीरामका ध्यान करके एकाग्रचित्त हो एक लाख जप करे, फिर कमलके फूलोंसे दशांश हवन करके मनुष्य धन पाकर अत्यन्त धनवान् हो जाता है।

'ॐ ह्रीं श्रीं श्रीं दाशरथाय नमः' यह ग्यारह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ऋषि आदि तथा पूजन आदि पूर्ववत् हैं। 'त्रैलोक्यनाथाय नमः' यह आठ अक्षरोंका मन्त्र है। इसके भी न्यास, ध्यान और पूजन आदि सब कार्य पूर्ववत् हैं। 'रामाय नमः' यह पञ्चाक्षर-मन्त्र है। इसके ऋषि, ध्यान और पूजन आदि सब कार्य षडक्षर-मन्त्रकी ही भाँति होते हैं। 'रामचन्द्राय स्वाहा', 'रामभद्राय स्वाहा'—ये दो मन्त्र कहे गये हैं। इसके ऋषि और पूजन आदि पूर्ववत् हैं। अग्नि (र) शेष (आ)-से युक्त हो और उसका मस्तक चन्द्रमा (-)-से विभूषित हो तो वह रघुनाथजीका एकाक्षर-मन्त्र (रां) है। जो द्वितीय कल्पवृक्षके समान है। इसके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द और श्रीराम देवता हैं। छः दीर्घ स्वरोंसे युक्त मन्त्रद्वारा षडङ्ग-न्यास करे।

सरयूतीरमन्दारवेदिकापङ्कजासने ॥
श्यामं वीरासनासीनं ज्ञानमुद्रोपशोभितम्।
वामोरुन्यस्ततद्वस्तं सीतालक्ष्मणसंयुतम्॥
अवेक्षमाणमात्मानं मन्मथाभिततेजसम्।
शुद्धस्फटिकसंकाशं केवलं मोक्षकाइक्षया॥
चिन्तयेत् परमात्मानमृतुलक्ष्मं जपेन्मनुम्।

(१०५—१०८)



'सरयूके तटपर मन्दार (कल्पवृक्ष)-के नीचे एक वेदिका बनी हुई है और उसके ऊपर एक कमलका आसन बिछा हुआ है। जिसपर श्यामवर्णवाले भगवान् श्रीराम वीरासनसे बैठे हैं।

उनका दाहिना हाथ ज्ञानमुद्रासे सुशोभित है। उन्होंने अपने बायें ऊरुपर बायाँ हाथ रख छोड़ा है। उनके वामभागमें सीता और दाहिने भागमें लक्ष्मणजी हैं। भगवान् श्रीरामका अमित तेज कामदेवसे भी अत्यधिक सुन्दर है। वे शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल तथा अद्वितीय आत्माका ध्यानद्वारा साक्षात्कार कर रहे हैं। ऐसे परमात्मा श्रीरामका केवल मोक्षकी इच्छासे चिन्तन करे और छः लाख मन्त्रका जप करे।'

इसके होम और नित्य-पूजन आदि सब कार्य षडक्षर-मन्त्रकी ही भाँति हैं। वहि (र), शेष (आ)-के आसनपर विराजमान हो और उसके बाद भान्त (म) हो तो केवल दो अक्षरका मन्त्र (राम) होता है। इसके ऋषि, ध्यान और पूजन आदि सब कार्य एकाक्षर मन्त्रकी ही भाँति जानने चाहिये। तार (ॐ), माया (ह्रीं), रमा (श्रीं), अनङ्ग (कर्लीं), अस्त्र (फट्) तथा स्व बीज (रां) इनके साथ पृथक्-पृथक् जुड़ा हुआ द्व्यक्षर मन्त्र (राम) छः भेदोंसे युक्त त्र्यक्षर मन्त्रराज होता है। यह सम्पूर्ण अभीष्ट पदार्थोंको देनेवाला है। द्व्यक्षर मन्त्रके अन्तमें 'चन्द्र' और 'भद्र' शब्द जोड़ा जाय तो दो प्रकारका चतुरक्षर मन्त्र होता है। इन सबके ऋषि, ध्यान और पूजन आदि एकाक्षरमन्त्रमें बताये अनुसार हैं। तार (ॐ), चतुर्थ्यन्त राम शब्द (रामाय), वर्म (हुं), अस्त्र (फट्), वहिवल्लभा (स्वाहा)—यह (ॐ रामाय हुं फट् स्वाहा) आठ अक्षरोंका महामन्त्र है। इसके ऋषि और पूजन आदि षडक्षर-मन्त्रके समान हैं। 'तार (ॐ) हृत् (नमः) ब्रह्मण्यसेव्याय रामायाकुण्ठतेजसे। उत्तमश्लोकधुर्याय स्व (न्य) भृगु (स.) कामिका (त) दण्डार्पिताइद्यये।' यह ('ॐ नमः ब्रह्मण्यसेव्याय रामायाकुण्ठतेजसे। उत्तमश्लोक-धुर्याय न्यस्तदण्डार्पिताइद्यये') तैतीस अक्षरोंका मन्त्र कहा गया है। इसके शुक्र ऋषि, अनुष्टुप्छन्द और श्रीराम देवता हैं। इस मन्त्रके चारों पादों

तथा सम्पूर्ण मन्त्रसे पञ्चाङ्ग-न्यास करना चाहिये। शेष सब कार्य षडक्षर-मन्त्रकी भाँति करे। जो साधक मन्त्र सिद्ध कर लेता है, उसे भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं। उसके सब पापोंका नाश हो जाता है। 'दाशरथाय विद्यहे। सीतावल्लभाय धीमहि। तन्नो रामः प्रचोदयात्।' यह राम-गायत्री कही गयी है, जो सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाली है।

पद्मा (श्रीं) डे विभक्त्यन्त सीता शब्द (सीतायै) और अन्तमें ठद्वय (स्वाहा)—यह (श्री सीतायै स्वाहा) षडक्षर सीता-मन्त्र है। इसके वाल्मीकि ऋषि, गायत्री छन्द, भगवती सीता देवता, श्रीं बीज तथा 'स्वाहा' शक्ति है। छः दीर्घस्वरोंसे युक्त बीजाक्षरद्वारा षडङ्ग-न्यास करे। ततो ध्यायेन्महादेवीं सीतां त्रैलोक्यपूजिताम्। तस्माटकवर्णाभां पद्मयुग्मं करद्यये॥ सद्रलभूषणस्फूर्जदिव्यदेहां शुभात्मिकाम्। नानावस्त्रां शशिमुखीं पद्माक्षीं मुदितान्तराम्॥ पश्यन्तीं राघवं पुण्यं शश्यायां षडगुणेश्वरीम्।

(ना० पूर्व० १३३—१३५)

'तदनन्तर त्रिभुवनपूजित महादेवी सीताका ध्यान करे। तपाये हुए सुवर्णके समान उनकी कान्ति है। उनके दोनों हाथोंमें दो कमलपुष्प शोभा पा रहे हैं। उनका दिव्य-शरीर उत्तम रत्नमय आभूषणोंसे प्रकाशित हो रहा है। वे मङ्गलमयी सीता भाँति-भाँतिके वस्त्रोंसे सुशोभित हैं। उनका मुख चन्द्रमाको लज्जित कर रहा है। नेत्र कमलोंकी शोभा धारण करते हैं। अन्तःकरण आनन्दसे उल्लसित है। वे ऐश्वर्य आदि छः गुणोंकी अधीश्वरी हैं और शश्यापर अपने प्राणवल्लभ पुष्पमय श्रीराघवेन्द्रको अनुरागपूर्ण दृष्टिसे निहार रही हैं।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक छः लाख मन्त्रका जप करे और खिले हुए कमलोंद्वारा दशांश आहुति दे। पूर्वोक्त पीठपर उनकी पूजा करनी चाहिये। मूलमन्त्रसे मूर्ति निर्माण करके उसमें

जनकनन्दिनी किशोरीजीका आवाहन और स्थापन करे। फिर विधिवत् पूजन करके उनके दक्षिणभागमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी अर्चना करे। तत्पश्चात् अग्रभागमें हनुमान्‌जीकी और पृष्ठभागमें लक्ष्मीजीकी पूजा करके छः कोणोंमें हृदयादि अङ्गोंका पूजन करे। फिर आठ दलोंमें मुख्य मन्त्रियोंका, उनके बाह्यभागमें इन्द्र आदि लोकेश्वरोंका और उनके भी बाह्यभागमें वत्र आदि आयुधोंका पूजन करके मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियोंका स्वामी हो जाता है। अधिक कहनेसे क्या लाभ? श्रीकिशोरीजीकी आराधनासे मनुष्य सौभाग्य, पुत्र-पौत्र, परम सुख, धन-धान्य तथा मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

इन्दु (—अनुस्वार), युक्त शक्र (ल) तथा 'लक्ष्मणाय नमः' यह (लं लक्ष्मणाय नमः) सात अक्षरोंका मन्त्र है। इसके अगस्त्य ऋषि, गायत्री छन्द, महावीर लक्ष्मण देवता, 'लं' बीज और 'नमः' शक्ति है। छः दीर्घ स्वरोंसे युक्त बीजद्वारा षडङ्ग-न्यास करे।

ध्यान

द्विभुजं स्वर्णरुचिरतनुं पद्मनिभेक्षणम्।
धनुर्बाणकरं रामं सेवासंसक्तमानसम्॥ १४४॥

'जिनके दो भुजाएँ हैं, जिनकी अङ्गकान्ति सुवर्णके समान सुन्दर है। नेत्र कमलदलके सदृश हैं। हाथोंमें धनुष-बाण हैं तथा श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें जिनका मन सदा संलग्न रहता है (उन श्रीलक्ष्मणजीकी मैं आराधना करता हूँ)।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक सात लाख जप करे और मधुसे सींची हुई खीरसे आहुति देकर श्रीरामपीठपर श्रीलक्ष्मणजीका पूजन करे। श्रीरामजीकी ही भाँति श्रीलक्ष्मणजीका भी पूजन किया जाता है। यदि श्रीरामचन्द्रजीके पूजनका सम्पूर्ण फल प्राप्त करनेकी निश्चित इच्छा हो तो यत्पूर्वक श्रीलक्ष्मणजीका आदरसहित पूजन करना चाहिये। श्रीरामचन्द्रजीके बहुत-से भिन्न-भिन्न मन्त्र

हैं, जो सिद्धि देनेवाले हैं। अतः उनके साधकोंको सदा श्रीलक्ष्मणजीकी शुभ आराधना करनी चाहिये। मुक्तिकी इच्छावाले मनुष्यको एकाग्रचित्त होकर आलस्यरहित हो लक्ष्मणजीके मन्त्रका एक हजार आठ या एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। जो नित्य एकान्तमें बैठकर लक्ष्मणजीके मन्त्रका जप करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। यह लक्ष्मण-मन्त्र जयप्रधान है। राज्यकी प्रासिका एकमात्र साधन है। जो नित्यकर्म करके शुद्ध भावसे तीनों समय लक्ष्मणजीके मन्त्रका जप करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है। जो विधिपूर्वक मन्त्रकी दीक्षा लेकर सद्गुणोंसे युक्त और पापरहित हो अपने आचारका नियमपूर्वक पालन करता, मनको वशमें रखता और घरमें रहते हुए भी जितेन्द्रिय होता है, इहलोकके भोगोंकी इच्छा न रखकर निष्कामभावसे भगवान् लक्ष्मणका पूजन करता है, वह समस्त पुण्य-पापके समुदायको दग्ध करके शुद्धचित्त हो पुनरागमनके चक्करमें न पड़कर सनातनपदको प्राप्त होता है। सकाम भाववाला पुरुष मनोवाञ्छित वस्तुओंको पाकर और मनके अनुरूप भोगोंका उपभोग करके दीर्घ कालतक पूर्वजन्मोंकी स्मृतिसे युक्त रहकर भगवान् विष्णुके परम धाममें जाता है। निद्रा (भ), चन्द्र (अनुस्वार)-से युक्त हो और उसके बाद 'भरताय नमः' ये दो पद हों तो सात अक्षरका मन्त्र होता है। इस 'भं भरताय नमः' मन्त्रके ऋषि और पूजन आदि पूर्ववत् हैं। वक (श), इन्दु (अनुसार)-से युक्त हो उसके बाद डे विभक्त्यन्त शत्रुघ्न शब्द हो और अन्तमें हृदय (नमः) हो तो 'शं शत्रुघ्नाय नमः' यह सात अक्षरोंका शत्रुघ्न मन्त्र होता है, जो सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि प्रदान करनेवाला है। (ना० पूर्व० अध्याय ७३)

विविध मन्त्रोद्घारा श्रीहनुमान्‌जीकी उपासना, दीपदानविधि और कामनाशक भूतविद्रावण-मन्त्रोंका वर्णन

सनत्कुमारजी कहते हैं—विप्रवर! अब हनुमान्‌जीके मन्त्रोंका वर्णन किया जाता है, जो समस्त अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाले हैं और जिनकी आराधना करके मनुष्य हनुमान्‌जीके ही समान आचरणवाले हो जाते हैं। मनुस्वर (औ) तथा इन्दु (अनुस्वार)-से युक्त गगन (ह) अर्थात् 'हौं' यह प्रथम बीज है। ह स् फ् र और अनुस्वार ये भग (ए)-से युक्त हों अर्थात् 'हस्फँ' यह दूसरा बीज है। ख् फ् र ये भग (ए) और इन्दु (अनुस्वार)-से युक्त हों अर्थात् 'ख्फँ' यह तीसरा बीज कहा गया है। वियत् (ह), भृगु (स्), अग्नि (र), मनु (औ) और इन्दु (अनुस्वार) इन सबका संयुक्त रूप 'हस्तौं' यह चौथा बीज है। भग (ए) और चन्द्र (अनुस्वार)-से युक्त वियत् (ह) भृगु (स्) ख् फ् तथा अग्नि (र) हों अर्थात् 'हस्खँ' यह पाँचवाँ बीज है। मनु (औ) और इन्दु (अनुस्वार)-से युक्त ह स् अर्थात् 'ह सौं' यह छठा बीज है। तदनन्तर डे विभक्त्यन्त हनुमत् शब्द (हनुमते) और अन्तमें हृदय (नमः) यह (हौं हस्फँ ख्फँ हस्तौं हस्खँ हसौं हनुमते नमः) बारह अक्षरोंवाला महामन्त्रराज कहा गया है। इस मन्त्रके श्रीरामचन्द्रजी ऋषि हैं और जगती छन्द कहा गया है। इसके देवता हनुमान्‌जी हैं। 'हसौं' बीज है, 'हस्फँ' शक्ति है। छः बीजोंसे षडङ्ग-न्यास करना चाहिये। मस्तक, ललाट, दोनों नेत्र, मुख, कण्ठ, दोनों बाहु, हृदय, कुक्षि, नाभि, लिङ्ग, दोनों जानु, दोनों चरण इनमें क्रमशः मन्त्रके बारह अक्षरोंका न्यास करे। छः बीज और दो पद इन आठोंका क्रमशः मस्तक, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, ऊरु, जङ्घा और चरणोंमें न्यास करे। तदनन्तर अङ्गनीनन्दन कपीश्वर हनुमान्‌जीका इस प्रकार ध्यान करे—

उद्यत्कोट्यर्कसंकाशं जगत्प्रक्षोभकारकम्।
श्रीरामाङ्गिध्याननिष्ठं सुग्रीवप्रमुखार्चितम्॥

वित्रासयन्तं नादेन राक्षसान् मारुतिं भजेत्।

(९-१०)

उदयकालीन करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी हनुमान्‌जी सम्पूर्ण जगत्‌को क्षोभमें डालनेकी शक्ति रखते हैं, सुग्रीव आदि प्रमुख वानर वीर उनका समादर करते हैं। वे राघवेन्द्र श्रीरामके चरणारविन्दोंके चिन्तनमें निरन्तर संलग्न हैं और अपने सिंहनादसे सम्पूर्ण राक्षसोंको भयभीत कर रहे हैं। ऐसे पवनकुमार हनुमान्‌जीका भजन करना चाहिये।

इस प्रकार ध्यान करके जितेन्द्रिय पुरुष बारह हजार मन्त्र-जप करे। फिर दही, दूध और धी मिलाये हुए धानकी दशांश आहुति दे। पूर्वोक्त वैष्णवपीठपर मूलमन्त्रसे मूर्तिकी कल्पना करके उसमें हनुमान्‌जीका आवाहन-स्थापनपूर्वक पाद्यादि उपचारोंसे पूजन करे। केसरोंमें हृदयादि अङ्गोंकी पूजा करके अष्टदल कमलके आठ दलोंमें हनुमान्‌जीके निम्नाङ्कित आठ नामोंकी पूजा करे—रामभक्त, महातेजा, कपिराज, महाबल, द्रौणाद्रिहारक, मेरुपीठार्चनकारक, दक्षिणाशाभास्कर तथा सर्वविद्विनाशक। (रामभक्ताय नमः, महातेजसे नमः, कपिराजाय नमः, महाबलाय नमः, द्रौणाद्रिहारकाय नमः, मेरुपीठार्चनकारकाय नमः, दक्षिणाशाभास्कराय नमः, सर्वविद्विनाशकाय नमः) इस प्रकार नामोंकी पूजा करके दलोंके अग्रभागमें क्रमशः सुग्रीव, अङ्गद, नील, जाम्बवान्, नल, सुषेण, द्विविद तथा मैन्दकी पूजा करे। तत्पश्चात् लोकपालों तथा उनके वज्र आदि आयुधोंकी पूजा करे। ऐसा करनेसे मन्त्र सिद्ध हो जाता है। जो मानव लगातार दस दिनोंतक रातमें नौ सौ मन्त्र-जप करता है, उसके राजभय और शत्रुभय नष्ट हो जाते हैं। एक सौ आठ बार मन्त्रसे अभिमन्त्रित किया हुआ जल विषका नाश करनेवाला होता



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

है। भूत, अपस्मार (मिरगी) और कृत्या (मारण आदिके प्रयोग)-से ज्वर उत्पन्न हो तो उक्त मन्त्रसे अभिमन्त्रित भस्म अथवा जलसे क्रोधपूर्वक ज्वरग्रस्त पुरुषपर प्रहार करे। ऐसा करनेपर वह मनुष्य तीन दिनमें ज्वरसे छूट जाता और सुख पाता है। हनुमान्‌जीके उक्त मन्त्रसे अभिमन्त्रित औषध या जल खा-पीकर मनुष्य सब रोगोंको मार भगाता और तत्क्षण सुखी हो जाता है। उक्त मन्त्रसे अभिमन्त्रित भस्मको अपने अङ्गोंमें लगाकर अथवा उससे अभिमन्त्रित जलको पीकर जो मन्त्रोपासक युद्धके लिये जाता है, वह शस्त्रोंके समुदायसे पीड़ित नहीं होता। किसी शस्त्रसे कटकर घाव हुआ हो या फोड़ा फूटकर बहता हो, लूता (मकरी) रोग फूटा हो, तीन बार मन्त्र जपकर अभिमन्त्रित किये हुए भस्मसे उनपर स्पर्श कराते ही वे सभी घाव सूख जाते हैं, इसमें संशय नहीं है। ईशान कोणमें स्थित करंज नामक वृक्षकी जड़को ले आकर उसके द्वारा हनुमान्‌जीकी अँगूठे बराबर प्रतिमा बनावे; फिर उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करके सिन्दूर आदिसे उसकी पूजा करे। तत्पश्चात् उस प्रतिमाका मुख घरकी ओर करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक उसे दरवाजेपर गाड़ दे। उससे ग्रह, अभिचार, रोग, अग्नि, विष, चोर तथा राजा आदिके उपद्रव कभी उस घरमें नहीं आते और वह घर दीर्घकालतक प्रतिदिन धन-पुत्र आदिसे अभ्युदयको प्राप्त होता रहता है।

विशुद्ध अन्तःकरणवाला पुरुष अष्टमी या चतुर्दशीको मंगलवार या रविवारके दिन किसी तख्तेपर तैलयुक्त उड़दके बेसनसे हनुमान्‌जीकी सुन्दर तथा समस्त शुभ लक्षणोंसे सुशोभित एक प्रतिमा बनावे। वाम भागमें तेलका और दाहिने भागमें धीका दीपक जलाकर रखे। फिर मन्त्रज्ञ पुरुष मूलमन्त्रसे उक्त प्रतिमामें हनुमान्‌जीका आवाहन करे। आवाहनके पश्चात् प्राणप्रतिष्ठा करके उन्हें पाद्य, अर्ध्य आदि अर्पण करे। लाल चन्दन, लाल फूल तथा सिन्दूर आदिसे उनकी पूजा करे। धूप

और दीप देकर नैवेद्य निवेदन करे। मन्त्रवेत्ता उपासक मूलमन्त्रसे पूआ, भात, साग, मिठाई, बड़े, पकौड़ी आदि भोज्य पदार्थोंको घृतसहित समर्पित करके फिर सत्ताईस पानके पत्तोंको तीन-तीन आवृत्ति मोड़कर उनके भीतर सुपारी आदि रखकर मुख-शुद्धिके लिये मूलमन्त्रसे ही अर्पण करे। मन्त्रज्ञसाधक इस प्रकार भलीभाँति पूजा करके एक हजार मन्त्रका जप करे। तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष कपूरकी आरती करके नाना प्रकारसे हनुमान्‌जीकी स्तुति करे और अपना अभीष्ट मनोरथ उनसे निवेदन करके विधिपूर्वक उनका विसर्जन करे। इसके बाद नैवेद्य लगाये हुए अनन्दद्वारा सात ब्राह्मणोंको भोजन करावे और चढ़ाये हुए पानके पत्ते उन्हींको बाँटकर दे दे। विद्वान् पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार उन ब्राह्मणोंको दक्षिणा भी देकर विदा करे। तत्पश्चात् इष्ट बन्धुजनोंके साथ स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। उस दिन पृथ्वीपर शयन और ब्रह्मचर्यका पालन करे। जो मानव इस प्रकार आराधना करता है, वह कपीश्वर हनुमान्‌जीके प्रसादसे शीघ्र ही सम्पूर्ण कामनाओंको अवश्य प्राप्त कर लेता है।

भूमिपर हनुमान्‌जीका चित्र अङ्कित करे और उनके अग्रभागमें मन्त्रका उल्लेख करे। साथ ही साध्यवस्तु या व्यक्तिका द्वितीयान्त नाम लिखकर उसके आगे 'विमोचय विमोचय' लिखे, लिखकर उसे बायें हाथसे मिटा दे, उसके बाद फिर लिखे। इस प्रकार एक सौ आठ बार लिख-लिखकर उसे पुनः मिटावे। ऐसा करनेपर महान् कारागारसे वह शीघ्र मुक्त हो जाता है। ज्वरमें दूर्वा, गुरुचि, दही, दूध अथवा घृतसे होम करे। शूल रोग होनेपर करंज या वातारि (एरंड)-की समिधाओंको तैलमें डुबोकर उनके द्वारा होम करे अथवा शेफालिका (सिंदुवार)-की तैलसिक्त समिधाओंसे प्रयत्नपूर्वक होम करना चाहिये। सौभाग्यसिद्धिके लिये चन्दन, कपूर, रोचना, इलाइची और लवंगकी आहुति दे।